शब्दों के पींजरे में

मूल लेखक
असीम रॉय

रूपान्तरकार
हंसकुमार तिवारी



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

उन्हें
जो पींजरे में रहने को राज़ी नहीं

एक अनावश्यकता जो आवश्यक हुई

प्रस्तावना अनिवार्य नहीं हुआ करती, पाठक तो प्रायः इन पृष्ठों को बिना आँख तक दिये उलट दिया करते हैं, मानो उनके और कथारम्भ के बीच कुछ अवाछनीय आ गया हो, किन्तु कोई-कोई प्रकरण ऐसे होते हैं जहाँ यह व्यवधान आवश्यक ही नहीं अभीष्ट हो उठता है। ऐसा ही प्रसंग यहाँ उपस्थित है। पाठक को स्वयं बाद में प्रतीति होगी कि इसके सहारे वह रचना की वास्तविक स्पन्दनाओं तक पहुँच सका, पैठ सका।

क्योंकि यह रचना एक उपन्यास तो है, पर इसका उद्देश्य एक रम्य कथा-सृष्टि कर देना मात्र नहीं है, न ही किसी आधुनिक अमूर्तवादी सिद्धान्त को ललित रूप देकर सामने ला देना है, इसका एकमात्र उद्देश्य है एक मानवीय जीवनगत स्थिति के वस्तुसत्य से साक्षात्कार कराना। यह वस्तुसत्य न कल्पनाप्रसूत है, न ही सुने-जाने में से बटोरा हुआ। यह सर्वथा जिया हुआ है, भोगा हुआ। अपने सुदीर्घ पत्रकार और राजनीतिगत जीवन मे सभी कहीं तो मानव प्राणी की इस दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था का आखेट हुआ मैंने पाया है कि मुँह बोले शब्दों और उनकी अर्थशक्ति के बीच एक खाई निरन्तर बढ़ती आयी है।

कैसे-कैसे उदात्त और महाशयी, प्रभावी और आस्थामुखर शब्दों के पुंज पल-घड़ी कानों में पड़ा करते हैं! अर्थ और भाव की दृष्टि से कितने सशक्त और सप्राण हैं वे! मानो एक-एक उनमें से सिद्ध मन्त्र हो! किन्तु फलित रूप में क्या हाथ आता है ऐसे किसी भी शब्द से? वे शब्द हैं, शब्द! अर्थ विहीन, शक्ति-शून्य। स्वयं अपने में भले ओते हों वे, पर ठीक उसी तरह जैसे शून्य आकाश में यहाँ-वहाँ पंख फड़फड़ाते हुए निर्भाव पक्षी। धरती के थे वे: उनमें यहीं थे, यहीं के लिए; अब तो उनकी छाया भी दूर ही दूर ऊपर से उतराती निकल जाती है। धर्म और राजनीति, नैतिकता और विवेक: इन क्षेत्रों को छोड़ भी दें; सचाई तो यह है कि पागल प्रेमी तक अपवाद नहीं रह गये। कब क्या कहा, और कब क्या कह उठेंगे: इसका न बोध रह गया न चिन्ताभाव।

क्या समझा जाये ऐसे में जीवन को, जीवन के व्यवस्था रूपों को, मानव के अपने भविष्य को ? बहुत चाहता हूँ, कि एक विनम्र लेखक के नाते कुछ तो सुझाव सामने रख सकूं। मेरा ही नहीं, सबका प्रश्न है यह : कि कैसे बड़े-बड़े शब्दों के बने चले आये शक्तिशाली पींजरों को तोड़ें और, वास्तविकता को पहचानकर, अपने और सबके प्रति सत्य को ग्रहण करें।

इस दिशा में यह उपन्यास एक विनम्र प्रयास है। बांग्ला में प्रकाशित हुआ यह, तब प्रमुख समीक्षकों ने ही नहीं, सुधी एवं विवेकी पाठकों ने भी इसे भरपूर स्वागत-मान दिया। हिन्दी पाठक जगत् तो बहुत व्यापक है, फिर भी इस रचना का प्राप्य इसे मिलेगा, मुझे विश्वास है।

२४ जुलाई, १९८० —*असीम रॉय*

१. कोठीघाट
२. लक्ष्मीपुर
३. स्यालदा
४. पार्क स्ट्रीट

कोठीघाट

एक

उपले-थुपी पूरी दीवार की मुंडेर के ठीक ऊपर टिंग-टिंग करते हरसिंगार की कई डालें। उससे सटा सात जनम से अनपुता पीला-काला-सफ़ेद पड़ा दुतल्ला मकान और उसके पास खुले नाले को पार करते ही मुहल्ले के क्लब का मैदान। मैदान यानी घास-उजड़ी बस इत्ती-सी जमीन कि वहाँ बैडमिण्टन खेलकर जवानी को टिकाये रखने की जी-तोड़ कोशिश कर ली जाती है। उसके बाद दो-तीन शिवालों के बीच प्लाइवुड का कारखाना और लकड़ी के चट्टों के पास से गंगा नहाकर लौटती बूढ़े-बूढ़ियों की 'जय बाबा' की भटकती हुई आर्तध्वनि, जो उस कारखाने की घर्घर में डूब-डूब जाती है।

बीस साल पहले भी जो लोग इधर आये हैं या जिन्होंने दो-एक रात ही यहाँ बितायी है, उनके लिए इस स्थान का परिवर्तन प्रायः पी. सी. सरकार का इन्द्रजाल ही समझिए। बेशक बरानगर के माने ही गली है। कुछ सम्पन्न भद्र जनों ने म्युनिसिपैलिटी के मामा-चाचाओं के सहारे अपने मकानों की चौहद्दी को बढ़ाते-बढ़ाते रास्ते को और भी टेढ़ा-मेढ़ा और सँकरा कर दिया है। लेकिन ज़माना रास्ते या नये मकानों में तो नहीं, मिजाज से पलटा है।

क्योंकि यह गंगा वह गंगा नहीं है। बरानगर से सटी हुई जो गंगा बह रही है, वह तब जरा पच्छिम-मुँही थी। वहाँ एक समय रामकृष्ण ने अपनी जगज्जननी का ध्यान किया था। वही ध्यान कलकत्ते के अनेक-अनेक धनी-निर्धनों को खींच लाया था। बाबुओं के वाग्-विलास के इस स्थान को इस गंगा ने एक आध्यात्मिक महत्व दिया है। उस समय अनगिनत पापी-तापियों के लिए पूत-सलिला भागीरथी एक आक्षरिक सत्य थी। लेकिन आज तो जनसंख्या के दबाव से नल के पानी का प्रेशर कम हो जाने के कारण आयी पानी की कमी ही मुख्यतया गंगा-स्नान का कारण है। आस-पास जो पोखर थे उन्हें पाटकर मकान खड़े करवा लिये गये हैं, थोड़े-से जो बचे वे स्थानीय नगरपालिका के लिए मैला-स्थान हैं : ऊपर तक कूड़े-कतवार से भरे हुए। चापाकलों के सामने लम्बी-लम्बी कतारें। इसलिए लाचार गंगा-स्नान। बीच-बीच में किसी पकी उम्र के कण्ठ से

'मां तारा' या 'जय शम्भू' की पुकार निकल उठती है। लेकिन उस आवाज़ की कोई प्रतिध्वनि नहीं होती। और-और चीख़-पुकारों में वह खो रहती है।

उस पार वेलूड़ मठ का शिखर : कारख़ानों की चिमनियों से उठते हुए धुएँ से ढँका। ज्वार में मरी भैंस बहती आती है। कौए आ-आकर लाश पर बैठते और उड़ते हैं, पानी में चमड़ी कड़ी हो जाने से चोंच मारने की सुविधा नहीं पाते। भाटे के समय पुराने दिनों के बड़े-बड़े घाटों की टूटी सीढ़ियां कीचड़ में दांत निपोरे रहती हैं। पानी पर कल-कारख़ानों का तेल तैरता रहता है।

यह गंगा मानो 'स्टेट्समेन' अख़बार की गंगा हो : "द सिल्टिंग ऑव द हुगली-बेड इज़ ए मैटर ऑव ग्रेट कन्सर्न फ़ॉर द पोर्ट ऑथॅरिटीज़।" या तो फिर बँगला अख़बारों की जीती-जागती चेतावनी हो : "यह बात भुलाने से नहीं चलेगा कि गंगा के भविष्य से ही कलकत्ता महानगरी का भविष्य जुड़ा हुआ है।" एक जीवन्त ठेठ आज का प्रश्न, एक निरन्तर बहती हुई पीड़ादायक जिज्ञासा है यह गंगा। महत्त्व की जो शक्तिमत्ता है, प्राण देनेवाली जो संजीवनी है, वह इस गंगा से बहुत दूर है, जैसा कि अपसृत है हमारे जीवन से बहुत कुछ।

और सवेरा होते ही वरानगर के बाज़ार में चाय की दुकानों पर युवकगण अख़बारों पर टूट पड़ते हैं। बड़ी अधीर ललक के साथ, और कोई सस्ती-सी सिगरेट सुलगाकर, उसकी हेडलाइनों, विशेष प्रतिनिधि द्वारा दिये गये समाचारों या सम्पादकीय पर झुक जाते हैं। बीच-बीच में रास्ते के दूसरी ओर देखने लगते हैं : जहां गोश्त की दुकान में तुरत का खाल-उतारा पाठा झुलाया हुआ है, पंजर और रानों से गरम-गरम भाफ उठती होती है।

पहले जिस प्रकार लोग रामायण-महाभारत पढ़ते रहते थे और मोदी की दुकान में जो दृश्य देखकर मंगलकामी सीधे-सादे वाजिदवली कह उठे थे, 'यही भारतवर्ष है'—वरानगर बाज़ार में कम से कम वह तो बिलकुल नहीं। भारतवर्ष यह है या नहीं, कहना कठिन है; लेकिन अख़बार पर तो समूचा बंगाल ही करुण भाव से टूट पड़ता है।

और सांझ के बाद, युवक पिता दुर्गापूजा पर ख़रीदे गये नीले फ्रॉक में सजी अपनी नन्हीं-मुन्नी का हाथ थामे जैसे ही ज़रा घूमने निकला कि बत्तीस नम्बर की बस समूचे रास्ते को छेंककर ऊपर आ धमकी। मुन्नी पिता का हाथ छोड़, छन्नीवाले बेलून को जी-जान से पकड़े हुए, फ़ुटपाथविहीन उस सँकरे रास्ते से उछलकर दवा की एक दुकान के बरामदे में जाकर जान बचाती है। इसी का नाम है सान्ध्य-भ्रमण।

बीच-बीच में अवश्य टिन की चाय-दुकान के पास जो नयी पुती चहार-

दीवारी थी उसकी फाँक से पक्की बिल्डिंग के प्रांगण में बोगनविलिया के मचान के नीचे खड़ी झकाझक ऐम्बेसेडर कार और चौकन्ने अल्सेशियन नज़र आ जाते हैं। पास ही मन्दिर से सटी प्लाइवुड फ़ैक्टरी या संगमर्मर की मूर्ति से शोभित लॉन के ऊपर विशाल मोटर-गैरेज, रंग-उखड़े बोनेट के ठीक ऊपर मानो नाचती हुई सुन्दरी। मोज़ेइक के विशाल सिंहद्वार के अन्दर ही कोयले के पहाड़ के सामने ऊँचे-ऊँचे सींगवाले दो बैल और वही टिन के पीले टुकड़े पर लाल स्याही से लिखा 'रामसिंह कोल डिपो' या कभी जतन से पाले गये बॉट्ल-पामों की पाँत के पास यौवनमदमस्त कारखाने का साइन-बोर्ड।

सिर्फ गरमी के दिनों, जब नदी पर रह-रहकर हवा बहती है, पानी आवाज़ करता है, उस पार की चिमनियों में धुआँ होने पर भी हवा आसमान को निधुआँ रखती है और बेलूड़ मन्दिर के सिर पर तारे उगते हैं, घाट के बड़े-बड़े पीपल और बरगद हलके-हलके डोलते हैं, तो लगता है, नहीं, यह गंगा अन्त-अन्त तक बच जायेगी। इसकी प्राण-शक्ति की क्षमता में फिर से आस्था होगी। फिर रामकृष्ण-वर्णित जगज्जननी हो या मार्क्स-कीर्तित साम्यवाद हो, किसी एक प्राणदायिनी शक्ति में विश्वास लेकर मनुष्य फिर से आत्मविश्वास पायेगा। मन्दिर से इस प्रकार सटकर प्लाइवुड का कारखाना नहीं खड़ा होगा और इस तरह टूटकर लोग अखबार नहीं पढ़ेंगे।

दो

कोठीघाट में जो लोग नहाने आते हैं उनमें केदार मुखर्जी सबसे पुराने आदमी हैं। विशाल मूँछ, जो बंगालियों के चेहरे पर से कभी की गायब हो चुकी है, उनके मुँह पर आज भी सोहती है। प्रायः पूरी खोपड़ी ही गंजी, परन्तु नीचे की तरफ गोलाकार थी सफ़ेद रंग के रेशमी बालों की बहार। घाट पर बैठकर नातिन को नहलाया और कहा, "बस, अब शेष।"

तभी रिपुजी तारिणी, जिसकी बाजार में मांस की दुकान के पास ही साइकिल की दुकान है, टप्प से पूछ उठा, "सचमुच सब शेष दादाजी?"

"हाँ सब। अब यह देह गंगाजल में जाये।" नहलाकर सरसों का तेल लगाते-लगाते केदार मुखर्जी ने कहा।

नलिनी नाम का जो छोकरा किसी वामपन्थी पार्टी का स्थानीय अगुआ है,

वह नीम की दातुन कर रहा था। दातुन को कीचड़ में फेंककर बोला, "दुर्, बन्धन शेष होता है भला! असंख्य बन्धनों बीच....क्या तो कहा है रवि बाबू ने ?" उसकी बात हवा में खो गयी।

"दुर् साला, यह भी कोई नदी है! इससे हमारे नल का पानी हजार गुना अच्छा!" दीपक नाम का छोकरा, जो पूरे परिवार सहित उठकर पिछले साल यहाँ आ गया है, बोला।

"तो फिर अपने भवानीपुर ही चले क्यों नहीं जाते भैया ? किसी ने तुम्हें बाँधकर तो रखा नहीं है यहाँ!" नलिनी ने कहा।

"चाचा बेलियाघाटा में सी. आइ. टी. रोड पर मकान खरीद रहे हैं।"

"एक जमाने से सुन रहा हूँ।"

नलिनी की बात से दीपक उखड़ गया, "मैं कोई गप मार रहा हूँ ?" और उसके बाद हेजलीनवाली शीशी से सरसों का तेल हथेली पर ढालते हुए बोला, "स्साला, दाम है! सुनकर आँख उलट जाती है! साढ़े आठ हजार रुपया कट्ठा!"

बहुत-बहुत पहले बरानगर में जो गीत खूब चलता था, केदार मुखर्जी ने वही शुरू किया :

श्यामा के चरणों के नभ में मन की जो पतंग उड़ती थी,
बुरी बयार कलुष की आई, गोता खा वह हाय, गिर पड़ी।
हुआ रुदन माया का भारी, उसको ढोने की लाचारी,
दारा-सुत की डोरी में वह फँसा, गले में फाँस लग गयी।

केदार मुखर्जी के साथ एक कमण्डलु भी है। उसमें जल भरकर गमछा पहने नातिन का हाथ पकड़कर जब वह 'फँसा, गले में फाँस लग गयी' भाँजते हुए सूरज की ओर मुँह करके घाट पर उठ रहे थे, तो नलिनी चिल्ला उठा, "बोगस-बोगस! उमर-भर पाट के दफ़्तर में काम करके पैसे बनाये, अब श्यामा संगीत! दुर्!" नलिनी गंगा में कूद गया।

तारिणी दातुन कर चुका। बोला, "दादाजी जो कहते हैं, विश्वास करके कहते हैं और दूसरे लोग...." कहते हुए दातुन की काठी फेंककर उसने शून्य में नलिनी का अनुसरण किया।

बाक़ी रह गया दीपक। वह घाट के एक ओर जो पलकों तक कोयले की कालिख में रँगे-पुते दो अ-बंगाली मजदूर सर्वांग में कपड़ा धोने का साबुन मलने में जुटे थे, उनकी ओर बड़ी विद्वेष-भरी नजर से ताकता रहा। देवेन घोष रोड भवानीपुर के अपने तीस वर्षों के डेरे-डण्डे को उठाकर बरानगर आ जाना दीपक को अभी भी मानते नहीं बना है। जिस युक्ति से इस प्रदेश के बाहरी बाशिन्दे

ऊँचे किराये के झापड़ द्वारा कलकत्ते के आदिवासिन्दों को लगातार वरानगर या दूसरे किसी नगर की ओर ढकेले दे रहे हैं, उसी 'वीरभोग्या वसुन्धरा' की युक्ति ने उसके मन की गुराहट को और बढ़ा दिया है। उसे अभी भी लगता है कि तरकीब से मकानमालिक को दबा पाने से या पुलिस को ठीक से मुट्ठी में कर सकने से भवानीपुर में ही उन लोगों का कोई हीला हो जाता। भवानीपुर में उनके मुहल्ले के केबिन में अब चाय की महफिल टूट रही है और वह आवारागर्द-सा गन्दी शहरतली के गन्दे पानी में उतर रहा है—इस कल्पना मात्र से उसका मुखड़ा पानी-भरे थमथम करते मेघ-सा हो उठा। उसके दिव्यचक्षुओं में भवानी-पुर की वह उजड़ी-पुजड़ी गढ़े-गर्त-भरी देवेन घोष रोड उस समय सिनेमा के चिकने निर्जन रास्ते में परिवर्तित हो गयी और सामने बहती गंगा का गन्दा जल एक अपरिचित अवांछित अस्तित्व-जैसा फैला रह गया।

अब ज्वार आया। ज्वार में नहाते सुविधा रहती है। इसीलिए तांती बाबू सबके अन्त में आते हैं। इस लम्बे इकहरे बदनवाले आदमी का आदिवास था चन्दननगर। कुछ दिनों से यहाँ अपनी बेटी के घर आ गये हैं। हैज़े में एकाएक हुई जामाता की मौत तांती बाबू को वरानगर खींच लायी है। घर में इन्होंने करघा भी बिठाया है।

तांती बाबू को देखकर दीपक की आँखों में आँसू-से भर आये। यह तो है यहाँ की 'कोम्पेनी'; यह तो है यहाँ का 'काल्चर'! वह उदास-सा इस चिन्ता को मन में हिला-डुलाकर देखने लगा। 'कम्पनी या कल्चर' से ठीक क्या बोध होता है, इसकी निश्चित धारणा न होते हुए भी। ऐसी स्थिति में लोग प्रायः जैसा आक्षेप करते हैं, वह भी वैसे ही आक्षेप से अपने चित्त को विक्षिप्त करने लगा।

"अभी तक उतरे नहीं हैं जल में?" तांती बाबू के इस प्रश्न से दीपक ने भँवें सिकोड़ीं। वह इस समय सिनेमा के प्रसंगों की आलोचना करने के मूड में था। मगर यह मुमकिन था यहाँ? सिनेमा के प्रसंग : अर्थात् सिने-तारिकाओं की तरह-तरह की अदाओं के चित्रोंवाली जो कई पत्रिकाएँ निकली हैं, जिनमें श्रीमती अमुक किस वेष में रात को सोने जाती हैं या श्रीमती अमुक सिर्फ़ भेंट की मछली की फ़ाइ खाकर देह को कैसा ठीक रखती हैं, इस प्रकार की भीतरी बातें छापती हैं, यह आलोचना इस समय बेहद जमती। और, सिर्फ़ फ़िल्म ही क्यों, सभी तरह की आलोचना जमती : वह सुचित्रा सेन हो चाहे कोई नया रूसी स्पूतनिक। दीपक ने अधजली सिगरेट पानी में फेंक दी।

"अबकी दुर्गापूजा पर कपड़े की बिक्री कैसी रही?" अचानक ही दीपक का यह प्रश्न कर्कश लगा।

छाती पर रोएँ बहुत होने से दुबला बदन और भी लोमस लगता। दीपक को लग रहा था कि अच्छे कपड़े पहन लेने पर शक्ल-सूरत अच्छी हो सकेगी।

"कहीं आपको जैसे देखा है, सर। बालीगंज में रहते हैं क्या?"

"नहीं। बोसपाड़ा लेन, बागबाज़ार में।"

"ओ, तो शायद मार्टिन बर्न में। मेरे एक भाई उस दफ्तर में ..."

"कॉलेज में मास्टरी करता हूँ।"

"ओ!" दीपक चुसक गया।

"ताऊजी के यहाँ आया हूँ, यों ही घूमने।"

"किनके यहाँ?" दीपक की जिज्ञासा खूब मुलायम, कहीं गँवईपना न ज़ाहिर हो पड़े।

"प्रबोधसेन के यहाँ।"

"प्रबोधसेन के यहाँ!" दीपक के गले से अस्फुट आवाज़ निकली। यह भी क्या ताँती बाबू की तरह झाँसा मार रहा है? शायद। नहीं तो कोठीघाट की काँदो में मिनिस्टर का भतीजा भला क्यों नहाने आये? दीपक विमर्श भाव से पानी में उतरा।

निर्मल ने ज्वार में शरीर को डाल दिया। जाड़ा-जाड़ा-सा लग रहा था। वह भाव पानी में उतरने के पहले पल ही जाता रहा। एक स्टीमर दोनों ओर दो गधा-बोट बाँधे उस किनारे के बहुत पास से धुआँ उगलते हुए निकल गया। सर्दी के शुरू की मीठी धूप में पानी काटते हुए अब वह बढ़ा। दूसरी तरफ़ मन्दिर, कारखानों की चिमनियाँ, और घाट की सीढ़ियाँ। कहीं-कहीं अभी भी टिकी हुई हरियाली का आभास।

उस ओर देख-देखकर निर्मल को धुंधला-सा कुछ ऐसा लगा, जैसे यह गंगा शायद वही गंगा है—वही श्रीम-वर्णित कथामृत की गंगा, जब स्टीमर पर रामकृष्ण को लेकर केशवसेन नदी पर घूम रहे हैं और भक्तगण चारों ओर से घेरे हुए मन्त्रमुग्ध हैं; जब घोड़ागाड़ी पर सवार हो-होकर कलकत्ते के सभी सम्पन्न ब्राह्म-हिन्दू दक्षिणेश्वर आते थे; स्टार थियेटर में गिरीश घोष विनोदिनी के साथ निताई का नाटक करते, विद्यासागर एकाकी होकर जीवित थे, ब्राह्म लोग धर्म की व्याख्या में एक नये भाव के उन्मेष से उत्साहित हो रहे थे और बंकिम घोड़े पर चढ़कर डिप्टीगीरी कर रहे थे और उपन्यास लिख रहे थे—संक्षेप में, जीवन के उद्देश्य के लिए जब कुछ लोग उछल-कूद करते थे। स्वल्प विस्तृत होते हुए भी मन-प्राण के उस ज्वार से इस गन्दे पानी का उच्छ्वास क्या तुलनीय नहीं?

वास्तव में निर्मल के चरित्र की त्रुटि यही है, उसके ताऊ बताते हैं कि इसीलिए उसका कुछ हुआ भी नहीं। घटना को घटना मानकर स्वच्छ और हलके मन

से बहुत हटके अपनी राह चलने के जिस दर्शन को उसके ताऊ ने अंगीकार किया है, वह उनके भतीजे की पहुँच से परे है। निर्मल के चरित्र की इस तात्त्विक झोंक के बारे में उसके ताऊ ने किसी घनिष्ठ आत्मीय को कहा था, "आइ वण्डर व्हाइ ही इज सो सीरियस। व्हाई मस्ट ही टेक थिंग्स सो सीरियसली? इन बूढ़े ढंग-ढेलों से देश का क्या बनेगा?"

"आपके अपने ताऊजी हैं?" अँगोछे से अपने लम्बे-लम्बे बालों को झाड़ते हुए दीपक पूछ ही बैठा।

"अपने नहीं।"

दीपक फिर भी उसे सन्देह की ही दृष्टि से देखता रहा। एक बार वह बुद-बुदाया, "यह गया का मकान है। इस ओर गया के और भी तीन-चार मकान थे। अब तो सभी बिक गये।"

गया का जिक्र असांगिक होते भी दीपक इस प्रकार उस युवक को अपने वसिलत की सूचना जताना चाह रहा था। शायद तब मन्त्री के भतीजे की बगल में खड़ा होना उसके लिए सहज हो जाये।

"कब तक रहोगे?"

"कुछेक दिन और। सोचता हूँ छुट्टी यहीं बिताऊँ।"

"यहाँ? यहाँ तो कोई एसोसिएशन नहीं, कुछ भी तो नहीं।"

"मगर कलकत्ते में धूल और धुआँ इतना है कि अधिकांश लोगों को ही फैरिन्जाइटिस है। मुझे भी टॉन्सिल्स की शिकायत है।"

"सब मिला लीजिए," दीपक ने फिर एक अन्तरंगता-सी महसूस की। कहा, "आज के विज्ञान के युग में इन पुराने संस्कारों को सहेजकर रखना भी ठीक नहीं।"

"मैं आपकी तरह सब विज्ञान नहीं मानता," निर्मल पानी में कूद पड़ा। अपने ही अप्रासंगिक निष्कर्ष से मुक्त होने के लिए वह ज्वार में काफी दूर बढ़ गया। कुछ देर चित्त पड़कर आसमान की ओर ताकता रहा। दूर वाली ब्रिज पर एक छुट-पुट बादल, एक ओर कारखाने की चिमनी, मन्दिर का शिखर। चित्त लेटकर कहीं सामने से पानी नहीं दिखाई देता। वह पानी जो चारों ओर से उसे घेरे हुए है। वास्तव घटना तो एक ही, देखो चाहे जो जैसे—कोई औंधे पड़े, कोई चित्त लेटकर। उसके ताऊ और वह भी इस वास्तविकता को दो तरह से देख रहे हैं। कौन-सा देखना ठीक है, ईश्वर जाने!

निर्मल इधर घाट पर आ गया।

तीन

दूसरे दिन सवेरे कोठीघाट के स्नानार्थियों में एक आलोड़न जैसा। बात छेड़ने के पहले दीपक ने सोचा था, इस आलोड़न का नायक वही होगा। कोठीघाट में प्रबोधसेन के भतीजे के आविर्भाव-जैसी घटना सुनाकर वह सबको अवाक् कर देगा। लेकिन केदार मुखर्जी ने गुड़ गोबर कर दिया, "प्रबोधसेन का कौन भतीजा?" पीठ में तेल थोपते हुए यह बात उन्होंने ऐसे निर्विकार भाव से कही कि नलिनी-तारिणी और अन्य दो-तीन जनों की नजर उन्ही पर गयी।

"वे दो भाई दो तरह के हैं। छोटा सुबोधचन्द्र। वॉर में गया। आइ एम् एस् हुआ। यह पहले विश्वयुद्ध की कह रहा हूँ। नाइनटीन फोर्टीन की। उसके बाद वहाँ से लौटकर एक साहब की नाक पर घूंसा मारा। घनघोर स्वदेशी बन गया। नौकरी चली गयी। और वह सेंत में इलाज कर-करके डूब गया। लेकिन हाँ, सुना, लड़का तैयार हो गया है। शायद इंजीनियर-विजीनियर—"

"कॉलिज में मास्टर है।" दीपक झट से बोल उठा।

"वैसा कुछ होगा। सुना है, सुबोधचन्द्र के पास कुछ खास हुआ ही नहीं। पर होने से भी क्या और न होने से ही क्या! सभी तो उजाड़। गिरस्ती माने ही तो उजाड़ भैया!"

"बड़ा जाड़ा लगता है।" मुखर्जी की पाँच साल की पोती ने चिल्लाकर कहा।

"तुझे नहाने की जरूरत नही। चाँदी में जरा-सा पानी डाल दूँगा।"

केदार मुखर्जी के संसार-प्रसंग में रामकृष्ण-वाणी की बार-बार पुनरावृत्ति और साथ ही इस वैषयिक जगत् के बारे में कुतूहल ने उन्हें अन्य स्नानार्थियों से स्वतन्त्र कर रखा है। बात छिड़ते ही रामकृष्ण को दोहराते हैं, 'राजा जनक—यह-वह दोनों कुल बचाकर दूध का कटोरा पिया था।' वह जैसे नित्य सवेरे ही पूजा पर बैठते हैं, गंगा नहाते हैं; वैसे ही प्रसिद्ध लोगों के लेटेस्ट किस्से उनके नखदर्पण में रहते हैं। विधान राय और नलिनी सरकार का व्यक्तिगत जीवन ही नहीं, तमाम मन्त्रियों, विरोधी दल के नेताओं, उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारी और बिजिनेस हाउसों के बड़े साहब—सभी को उन्होंने अपने कलेजे में खींच लिया है।

"आप तो दादाजी अखबार के चीफ़ रिपोर्टर होते तो खूब फबता।" 'च' में तारिणी अँगरेज़ी 'एस्' का उच्चारण ले आया।

"सुबोधचन्द्र के बड़े भाई प्रबोधचन्द्र ने वकालत में खूब नाम किया। उनका घर केष्टो-नगर में है, मेरे ननिहाल से सटा हुआ। मुसलमान खेतिहर कहा करते, 'ऊपर अल्लाह है, नीचे प्रबोधसेन!' खून किया और उनके पास दौड़े। प्रबोधचन्द्र ने वकालत जोरों की चलायी। साहब-सूबों में पैठ थी, और, गान्धीजी कलकत्ता आते कि दौड़े हुए उनसे मिलने जाते।"

"राजा जनक—यह-वह दोनों कुल बचाकर दूध का कटोरा पिया था।" दीपक चिल्ला उठा।

"उसी से तरक़्क़ी की। नहीं तो कौन पूछता ? ज़िले में और भी बहुतेरे इलमदार लोग थे। भूरि-भूरि क़ैद की सजा भोगी है लोगों ने। लेकिन सभी इकबग्गे। प्रबोधसेन उस कोटि के नहीं। वह दोनों ओर सँभालते हैं।"

"दो नावों पर पाँव रखने से ही चलता है," नलिनी ने गम्भीरता से कहा।

"हाँ भैया, दुनिया में इसी ढंग से चलना पड़ता है।"

"मैं नहीं मानता।" नलिनी ने गरदन हिलायी। "जीना हो तो प्रबोधसेन क्यों बनने जाऊँ ? मेरे जो अपने विश्वास हैं उन्हें जहन्नुम में डाल दूँ ? अपने विश्वासों के लिए तो मरना पड़े, वह भी अच्छा।"

तारिणी ने उत्तेजित होकर कहा, "जिसके मान-सम्मान नहीं, उसे जीने से क्या लाभ ?"

"किसने कहा कि प्रबोधसेन का मान-सम्मान नहीं ? तुमसे-मुझसे कहीं अधिक सम्मान है उनका।"

"वैसे सम्मान पर...." तारिणी के मुँह से बड़ी भद्दी भाषा निकली।

केदार मुखर्जी ने हाथ उठाकर कहा, "क्यों बेकार में दिमाग़ गर्म करते हो ? मैंने तुम लोगों से कहीं ज्यादा देखा है। बचपन से अँगरेजों का अमल देखा, फिर कांग्रेस का अमल देखा, लड़ाई-अकाल देखा, बँटवारा देखा, रिफ़्यूजियों के जुलूसों का 'नहीं चलेगा, नहीं चलेगा' देखा—सभी कुछ तो देखा। भइया, हाथ बस एक ही बात लगी। जिन्होंने दोनों कुल रखे, वे ही खड़े हुए हैं। बाक़ी सब डूब गये।"

नलिनी अपने कारखाने की यूनियन का सह-सचिव है। ट्राइब्युनल में मालिक से लड़कर मजदूरों की माँग वसूली है। शायद इसीलिए उसका आत्म-विश्वास अधिक है। वह सिर टेढ़ा करके बोला, "हम लोगों ने बहुत कम समय में आप लोगों से बहुत ज्यादा देखा है। अपनी जनक राजावाली थ्योरी यहाँ मत लगाइए। कारखाने में बहुत जनक राजा देखे हैं। स्ट्राइक होते ही दलाल बन

जाते हैं।"

केदार मुखर्जी ने पोती का सिर धोया। वह फिर चीखी, "बड़ा जाड़ा लग रहा है।" *उसका सिर पोंछकर वह ऊपर आ गये। उसके बाद धीरे-धीरे बोले, "अरे बाबा, जिसका जो विश्वास। मेरी बात माननी ही होगी, ऐसी क़सम दी है क्या मैंने किसी को ?"

उनके चले जाने के बाद घाट का वातावरण थमा-थमा-सा लगने लगा। शुरू जाड़े की धूप कदोर पानी में चिकचिक कर रही थी। गल्-गल् धुआं उगलते हुए एक स्टीमर दोनों बग़ल में दो फ्लैट लिये धीरे-धीरे बढ़ रहा था। एकाएक फट्-फट् करती नीले रंग की एक चालबाज़ मोटरबोट निकल गयी। उसकी लहरों से बीच गंगा में स्थिर दो-तीन मछेरा-नाव हिलने लगीं। लेकिन जानें कैसी तो ताल कट गयी। इस मीठी धूप में सामने की चिर-चीन्ही वह सदा नयी गंगा का दृश्य भी उस बेताल अवस्था को टाल नहीं सका।

"आज लेकिन खूब जमा था," दीपक ने उत्साह दिखाया।

"दुर्, नाहक़ ही दादाजी को उखाड़ दिया," बदन पोंछते-पोंछते नलिनी बोला।

चार

नहा-पोंछकर वह गंगा किनारे ताऊजी के हाल ही में खरीदे हुए बाग़-महल के फाटक में दाखिल हुआ कि दरबान ने बताया, "भवेन बाबू ऊपर आये बैठे हैं।"

गराज में उसके चूल्हे पर दाल उबलने लगी थी। अगर डालडा का छौंक देने से पहले इन सरल भलेमानुस भइया जी से बात करने का जी हो आया रग्घू का। इसी प्रसंग में अभी-अभी भवेन बाबू से भी उसकी बात हो रही थी। भवेन से उसने साफ़ ही कहा, "मैंने अपने लड़के को भी कॉलेज का मास्टर बनने को कहा है। आख़िर बाल-बच्चों को आदमी तो बनाना है! मास्टर बन जायेगा तो खायेगा क्या ?"

रग्घू दरबान तो महज़ नाम का है। असल में कारबार सूद का है। बरा-नगर आना होगा, यह सुनकर रुपये के शोक से पहले तो उसका जी निराश हुआ। लेकिन जिन सारे गुणों के होने से आदमी बड़ा होता है, यानी अध्यव-साय, काम में मुस्तैदी, वह उसके चरित्र में काफ़ी मात्रा में होने से इस अनचीन्हे

परिवेश में भी उसने जमा लिया है। बाजार के बाबू, दुकानों के कर्मचारी, गंगा पार के कारखाने के किरानी, मेकैनिक—सब उसके पास कड़े नूद की गिरह में बँधे हैं।

खैनी मलते हुए वह निर्मल के पास आकर बोला, "बड़े सा'ब से कहकर मेरा एक काम करा देना होगा—एक पिट्रोल पम्प। और मेरे लड़के के लिए एक टैक्सी का परमिट। मामूली-सी बात।"

"तुम्हारा लड़का तो अच्छा पढ़-लिख रहा है, उसे परमिट की क्या जरूरत ?" निर्मल ने खीजकर कहा।

"लिखा-पढ़ा तो क्या घर-गिरस्ती नहीं करेगा ? चार साल पहले उसका ब्याह किया। दो लड़का हुआ। लिख-पढ़कर क्या फ़ायदा ?"

और, तब धूप में बेत की एक कुरसी निकालकर रग्घू ने दाल उतारी।

"आप एक काम करिए, सिनेमा लाइन में जाइए। बड़ा पैसा है।"

"सिनेमा में मुझे नहीं लेगा। वहाँ गाना गाना होगा। नाचना होगा।"

"वह सब सीख लीजिएगा। और अगर वह न बन पड़े तो फ़िलिम की स्टोरी लिखिए। हमारे मुलुक में भारी-भारी राइटर है, कितना शानदार, सब फ़िलिम लाइन में चला गया।....आपका पिता, छोटा बाबू, बहुत बड़ा आदमी है, बहुत शुद्ध है : जैसे गंगा मैया का पानी। लेकिन गंगा-पानी अभी थोड़ा कमजोर हो गया है। लोग कल का पानी पीता है।"

निर्मल ने ग़ौर किया है, आजकल सभी भाषाओं में अख़बारों की संख्या बढ़ जाने से लोग पहले से बहुत चालाक हो गये हैं। वे बहुत बातें बहुत तरह से कह सकते हैं। और, दरबान से लेकर प्रधान मन्त्री तक, इस देश के सभी पर तो भूत सवार हो गया है। बातों के ये भूत रोज सवेरे अख़बारों के पन्नों पर नाचते हैं, सभाओं में हाथ-पाँव उठाकर नाचते हैं। शिक्षा-संस्थानों, सरकारी दफ़्तरों, स्टॉक एक्सचेंज, जन-कल्याण संस्थाओं, मुहल्ले के रेस्तराँ में जो दिखता है, वह है बातों से ज़िन्दगी के हर मसले का फ़ौरन हल।

और, गंगा के किनारे एकान्त गराज में दोनों जून रसोई बनाकर, फूलों के पौधे निराकर, शुरू से आख़ीर तक 'सन्मार्ग' अख़बार पढ़कर रग्घू के पेट में भी बहुत-सी बातें जमती हैं। फिर बड़े बाबू आ रहे हैं। पेट्रोल पम्प या कम से कम टैक्सी के परमिट का प्रसंग बड़े बाबू के आगे कैसे छेड़ेगा, कल सारी रात वह यही सोचता रहा। क्योंकि रग्घू को यक़ीन है, ठीक निशाने से यदि बात छेड़ सके या किसी से कहला सके, तो आधा क़िला फ़तह। उसके बाद हो सकता है साल-डेढ़ साल इन्तज़ार करना पड़े। सो वह कर लेगा।

उस धुन के पक्के, चौड़े जबड़े, मोटे कन्धेवाले आदमी की कठोर हँसी से

भारी हुए मुह की ओर ताकते हुए निर्मल बोला, "तुम बल्कि भवेन बाबू के जरिए कहलाओ।"

निर्मल के ऊपर चले जाते ही रघू ने सिर हिलाया। निर्मल के लिए थोड़ी माया भी हो आयी। सच तो यह कि वह इन भइयाजी से बहुत ज्यादा कमाता है। कभी-कभी तो सोचता है, यदि मैं भइयाजी से आधा भी लिखा-पढ़ा होता तो क्या क्रान्ति नहीं कर देता। बाजार घूम-घूमकर रघू ने देखा है कि बम्बई के जो अच्छे-अच्छे रेडीमेड शर्ट-बुशशर्ट आते हैं या बच्चों-बच्चों के जो तरह-तरह के पहनावे चल पड़े हैं, उन सबकी यहाँ एक भी अच्छी दुकान नहीं है। रास्ते के मोड़ पर वह एक बड़ी-सी दुकान खोलेगा। बाहर नियॉन बत्ती जलेगी, अखबारों में इश्तहार छपायेगा, टाईवाले अँगरेजी बोलते कर्मचारी हाथ बढ़ा-बढ़ाकर औरतों को माल दिखायेंगे। या फिर साम्राज्य-विस्तार की तरह पंजाबी लोग जैसे कलकत्ते में रोज-रोज नये रेस्तराँ खोलते जा रहे हैं, वह भी यहाँ एक वैसा ही शुरू कर देगा। रघू गंगा की तरफ देखने लगा। गजब की कोमल, सपनों से भरी, लगभग गर्भवती नारी-सी वह दृष्टि! उधर ही देखते हुए रघू ने चावल चढ़ा दिये।

पाँच

निर्मल ने अवाक् होकर देखा, ऊपर के कमरे का दरवाजा भिड़ा हुआ था। उसे ठेलते ही भवेन सान्याल के आर्तगले की आवाज हुई, "खोलिए मत, खोलिए मत—बस एक मिनिट।"

भिड़े हुए दरवाजे के उस पार से कील ठोकने की आवाज। जरा देर चुपचाप। उसके बाद भवेन ने मानो परदा उठने की सीटी दी, "आ जाइए।"

घुसते ही निर्मल को नजर आयी, ताऊजी की एक बहुत बड़ी तसवीर, छाती तक की। जितने भारी-भरकम आदमी हैं उससे कहीं ज्यादा गरम गुलबन्द में दिख रहे थे। आँख-मुँह पर की गयी री-टचिंग के कारण जरूरत से ज्यादा 'व्ही. आई. पी. लुक'। निर्मल को लगा, ताऊजी ने मुसकराने की कोशिश नहीं ही की होती तो अच्छा रहता। तब और भी स्वाभाविक होता। नेहरू की नकल करके शायद बटन में गुलाब खोसा गया है। ताऊजी के बारे में उसकी

अपनी कुछ खास बड़ी धारणा नहीं, लेकिन ऐसे दाम्भिक असामाजिक ढंग से उन्हें उदित होते निर्मल ने कम ही देखा है।

मुग्ध दृष्टि से उधर देखकर भवेन ने निर्मल की ओर मुँह घुमाया। "अच्छी नहीं हुई है? मैंने ही बनवा दी है। कॉलेज स्ट्रीट में चटर्जी ब्रदर्स।....आप लोग चारों ओर कहते फिर रहे हैं, बंगाली डूब रहा है। मगर मैं यह क़तई नहीं मानता। देखिए न। छोटी-सी दुकान तसवीर की। कैसा निपुण काम! अशोक मित्तिर ने सेंसस रिपोर्ट में वाहियात कुछ नहीं कहा है साहब। वजा है, बंगाली की नज़र प्रिसिशन वर्क की तरफ़ ज़्यादा है।"

निर्मल ख़ूब जानता है कि भवेन ने वह रिपोर्ट नहीं पढ़ी है। यहाँ तक कि अख़बारों में जो थोड़ा-सा सार-संक्षेप निकला है, उसे भी ठीक से पढ़ा है या नहीं, सन्देह है। लेकिन बोल एक्सपर्ट की चाल से रहा है।

"उस कमरे में जाइए। वहाँ भी देख आइए।" भवेन ने कहा।

सोने के कमरे में चारपाई के ठीक ऊपर 'चलचित्र' जैसे विराट् चित्र में आजानुलम्बित माल्य से भूषित ताऊजी हँस रहे हैं। उनके अभिनन्दन के लिए चारों ओर ज़िले के कार्यकर्ताओं की भीड़। बग़ल में एक स्थानीय कपड़े की दुकानवाला आँखें बन्द किये हँस रहा है। यह चित्र शायद किसी बँगला अख़बार में निकला था।

दूसरी चारपाई के पास स्थानीय स्कूल की ओर से दिया गया मान-पत्र। पक्के चौखटे में जड़ा हुआ। खड़े होकर निर्मल ने कुछेक पंक्तियाँ पढ़ डालीं:

'हे देव, हमारी छोटी-सी पल्ली में उदित होकर आपने उज्ज्वल ज्योतिष्क की तरह सारे देश को अपनी प्रतिभा की किरण से उद्भासित किया है। आपकी कर्मेपणा के वर्णाढ्य विकास से दिशाएँ विकीर्ण हुई हैं।' ज़रा साँस लेकर निर्मल ने आगे पढ़ा, 'पूरे देश में जो नवीन कर्मयज्ञ आरम्भ हुआ है, आप उसके होता हैं; हे गुणनिधि, आपकी अतुलनीय उदारता, अनन्य साधारण मनीषा, अपार देश-प्रेम, अनिर्वचनीय चरित्रमाधुर्य से हम सब मुग्ध हैं। हे ज्ञानतपस्वी!....'

हठात् हँसी की दमक से निर्मल की आँखें धुँधला आयीं। "यह ज़रा...." किसी तरह से हँसी को दबाते हुए कहा।

"एक्ज़ेक्टली! मैं भी वही सोच रहा हूँ। आपके ताऊजी भी ज़रूर कहेंगे, "यह क्या किया भवेन?....आप जानते हैं, आइ हेट फ़्लैटरी।"

उत्तेजना के दबाव से भवेन सहसा चुप हो गया, फिर जैसे फट-सा पड़ा, "देश के लिए साहब मैंने भी सफ़र किया है। देश को मैं भी प्यार करता हूँ। वह कॉन्शसनेस मुझमें है। और चूँकि वह है, इसीलिए मुझमें कोई इन्फ़ीरियॅरिटी कॉम्प्लेक्स नहीं है।....आप कहेंगे, यह बैड टेस्ट है। मैं भी ठीक वही कहता हूँ।

आपके ताऊजी भी यही कहते हैं। मगर बात क्या है, पॉलिटिक्स इज़ अ डर्टी गेम। सभी पॉलिटिक्स—गांधी पॉलिटिक्स, कांग्रेस पॉलिटिक्स, कम्युनिस्ट पॉलिटिक्स। हर मियाँ को देख चुका हूँ निर्मल बाबू। हर जगह एक ही बात। कौन कितना दिखावा कर सकता है। नेहरू के नाम पर सब पागल रहे। मोतीलाल के बेटे न होने पर देखता मैं नेहरू कैसे नेहरू होते!"

"फिर भी, सामंजस्य नाम की एक चीज़ होती है। और दिखावा तो ज्यादा दिन टिकता नहीं," बाल झाड़ते-झाड़ते निर्मल ने कहा।

दुबला चेहरा, खद्दर का कुरता और चकमती आँखें—कुल मिलाकर भवेन सान्याल में विप्लवी व्यक्तित्व की छाप है। हो सकता है कि आँखों की खराबी हो जिसके कारण उत्तेजित होने पर उसकी आँखें जलने लगती हैं। उस समय सामान्य-सी बात भी कहे तो असाधारण लगती है।

जरूरत भी क्या! पॉलिटिशियन कोई फ़िलॉसॅफ़र तो नहीं। मैंने आपके ताऊजी से यह बात कितनी बार कही है कि सिवाय एक हिन्दुस्तान के, पॉलिटिक्स सभी देशों में महज़ एक कॅरीयर है। अंगरेज़ों के यहाँ बड़े घरों के लड़के मिनिस्टर होने के लिए बचपन में ही आईने के सामने घूँसा तान-तानकर भाषण देते हैं। गान्धीजी और नेहरू आदि की यह अहिंसा व हिंसा की नीति बड़ी अच्छी है। सब लोगों को भी यह बताना-समझाना चाहिए। मगर दाल इन बातों से नहीं गलती।"

"किससे गलती है?"

"आप तो साहब आँखों आगे ही देख रहे हैं। केष्टोनगर (कृष्णनगर) में क्या लोगों की कमी पड़ी थी? सभी दृष्टियों से ऐडवांस्ड डिस्ट्रिक्ट, कैसे-कैसे जर्नैल लोग—तारिणी मुखर्जी, रतन सेठ, मदन मित्तिर। वकील के वकील, डॉक्टर के डॉक्टर, बैरिस्टर के बैरिस्टर। और, जेल जानेवालों की तो गिनती ही नहीं। फिर भी प्रबोधसेन को क्यों चुना गया, कहिए?"

मगर निर्मल को कुछ बोलने का मौका न देकर अत्यन्त चमकती आँखें फैलाकर भवेन बोला, "चुना गया, इसलिए कि उनके जैसी सेन्स ऑव ऑरगॅनाइज़ेशन और किसमें है? उनके बारे में एक सम्पादकीय में लिखा है, बिलकुल सही लिखा है: "ही स्ट्राइक्स ए बैलेंस। हर कोई अपना-अपना मत लिये हुए है, पर उन्होंने सभी मतों को एक किया है।"

अपने ताऊजी की प्रशंसा सुनकर निर्मल म्रियमाण नहीं दिखा। उसकी राय में ताऊजी काम के आदमी हैं। यह बात उनके बड़े से बड़े दुश्मन भी स्वीकार करेंगे। लेकिन भवेन सान्याल का यह उत्साह निर्मल के खयाल में कुछ किराये का है। और, कुछ कॉमिक लगे बिना भी नहीं रहेगा। मतलब कि 'माँ से मौसी

को दर्द ज़्यादा' से वह असन्तुष्ट है, सो नहीं। बहुत मामलों में देखा जाता है कि सगे-सम्बन्धियों से मित्र बड़ा होता है। लेकिन उसके ताऊजी को लेकर इस चार ओर की दुनिया में, रोज़-रोज़ अख़बारों के पन्नों में यह उछल-कूद वह ठीक नहीं समझता।

यह शायद चरित्र की कचाई है। अपने ताऊजी की तरह घटना को वह केवल घटना सोचकर परिच्छन्न अनासक्त मन से ग्रहण नहीं कर सकता। मगर किये बिना भी उपाय क्या है? भवेन सान्याल यह जो उसके सामने चिल्ला रहा है, उछल रहा है, उसका भी शायद एक मतलब है। लेकिन वह ख़ुद क्या कर रहा है? वह क्या दुनिया के इस जीवन-नाट्य से मुँह फेरे हुए नहीं है? और, उससे लाभ क्या है?

उत्साह से भवेन जितना ही दमकता, देश-काल के बारे में निरी मामूली जोशीली बातें कहता जाता, निर्मल उतना ही विपण्ण अनुभव कर रहा था। उसे लगा, उसके अपना निश्चय करने का दिन आ रहा है। उसे भी या तो भवेन सान्याल कम्पनी में शामिल होना होगा या—यह या क्या? या राजनीति के शाठ्य के मुखौटे को खींचकर फाड़ डालना होगा, देश-काल के नये चित्रकल्प की सृष्टि करनी होगी, नया दल बनाना होगा या बनाने में मदद देनी होगी, आवश्यक हो तो अपने व्यक्तित्व को भूलकर....नः, वह अब नहीं होने का।

निर्मल ने लम्बा निःश्वास छोड़ा। अपनी युवावस्था के शुरू दस-बारह वर्षों की ओर अब अपलक दृष्टि से देखने का समय आया है। भवेन किराये का है, मगर वह आप क्या है? एक भला आदमी, ग़ैर सरकारी कॉलेज का प्राध्यापक, जिसने अभी तक प्राइवेट ट्यूशन करके पैसे नहीं कमाये, जिसने कभी नोट्स नहीं लिखे। अभी भी दो-चार किताबें पढ़ने की कोशिश करता है, बस। किन्तु इस तरह से क्या सामने ज़्यादा दूर तक, ज़्यादा दिनों तक ताकते हुए रहा जा सकता है?

उससे तो चार-पाँच साल पहले ताऊजी ने जो ऑफ़र दिया था—(नीलू, तू यहाँ क्यों सड़ रहा है। बैरिस्टरी कर आ। मैं तो हूँ। आठ-दस बरस में एक अच्छी-ख़ासी प्रैक्टिस जमा लेना कठिन नहीं होगा)—उसे मान लेना क्या ठीक नहीं था?

"क्यों जनाब, आप तो सुन्न खींच गये! बिलकुल चुप लगा जाना मुझे पसन्द नहीं। खुल्लमखुल्ला अगर कोई मुझे फ़रेबी कहे...."

"आप क्या सोचते हैं, आप वह नहीं हैं?"

"ठीक कह रहे हैं?" भवेन फिर दमकती आँखें फैलाकर ताकने लगा।

"ठट्ठा तो नहीं समझते?"

"अब फ़रेबी कहिए या जो कहिए, पर अच्छे आदमियों से संसार नही चलता। पॉलिटिक्स की बात छोड़िए। आप अगर निपट भले आदमी हों तो देखिएगा, घर के नौकर से लेकर पत्नी तक कोई भी आपके वश में नही।"

"किसने कहा आपसे मैं निपट भला आदमी हूँ? मैं भी मक्कारी करना चाहता हूँ। मगर हिम्मत नही हो पाती," निर्मल हँस पड़ा।

"क्या पता साहब, आप ठीक कह रहे हैं या मखौल कर रहे हैं। लेकिन भले आदमी या पागल नही, तो गंगा किनारे अकेले इतने दिन कैसे गुजार दिये! मालिक ने जब यह बागमहल खरीदा तो मेरी राय नही थी। मैंने कहा था, यह सब पुराने ज़माने का रवैया है। अब छुट्टियों में कश्मीर जाइए, पहलगाँव में कॉटेज लीजिए। मगर मुश्किल तो यह है कि पुराने खयालों की जटाएँ अभी भी नही खोली जा पा रही।"

निर्मल ने पहले भी यह गौर किया है। भवेन अक्सर कहता है, आपके ताऊजी को यह कहा, वह कहा। लेकिन जो कहना चाहिए था, वह नही कहा; वही बाद में लोगों को किस्सों में सुनाता है। उसके ताऊजी ज़रूर ही इतना उपदेश बरदाश्त नही करते। कितनी ही बार निर्मल ने देखा है, वह बीच में ही फूँक से भवेन के उत्साह को बुझा देते हैं।

"आप यह सोच रहे हैं न, मैंने यह सब नही कहा है, कहने की जुरअत नहीं है," सन्दिग्ध दृष्टि से भवेन ने निर्मल को देखा।

"दुर, मैं आपके बारे में सोच ही नही रहा। यू आर वण्डरफुल! ताऊजी कब आ रहे हैं?"

छह

ठीक जो सोचा गया था, वही हुआ। प्रबोधसेन ने कमरे में आते ही भौंहें सिकोडी। "ज़रूर यह भवेन की हरकत है। यह भवेन गँवई का गँवई रह गया," कहकर स्नेह से वह अपने चेहरे की ओर ताकने लगे। उसके बाद होंठों के दोनों कोनों में हँसी की रेखा निखारकर बोले, "जो भी कहो, वैसा दाम्भिक चेहरा मेरा नही है।"

"दाम्भिक क्यों होने लगे? वही तो व्यक्तित्व है। आप जिसे ढँकते रहते हैं, चित्र में वही उभर आया है।" भवेन ने कहा।

बोधसेन के पीछे-पीछे उनकी छोटी लड़की बुलबुल अन्दर आयी। गीता
ा, ऐसा ही कोई सीधा-सादा-सा नाम था उसका। उसके बाद कॉलेज में
ी नाम हो गया नीलांजना। लेकिन अन्त को जाकर टिका दादी का रख
पुकार का नाम। और इसके सिवाय उसका गठा हुआ नाटा बदन, सिर प
घुंघराले बाल, सो जाने तक सिर हिला-हिलाकर अनर्गल बक-बक करना—
मिलाकर बुलबुल नाम ठीक ही हुआ।

पिता के पीछे-पीछे कमरे में आते ही ताली बजाती हुई वह चिल्ला उठी,
अनोखी, एकदम अनोखी, भवेन-दा! शपथ, तुम्हें मिठाई खिलाऊँगी।" और
र्मल पर नज़र पड़ते ही प्रायः दौड़ते हुए सामने आकर बोली, "तुमने भी
दिखाया ही छोटे भैया! लोग गंगा-किनारे हो-हल्ला करेंगे, चकल्लस करेंगे, औ
तुम अकेले घर अगोर रहे हो!" और, होंठ दबाकर हँसती हुई बोली, "प्रेम
वेम में पड़ गये क्या?"

"पड़ा नहीं हूँ, पड़ूँगा।"

"तुम प्रेम में पड़ोगे? हाय राम! लड़कियाँ तुम्हारे पास फटकेंगी
नहीं।"

"यह तू नहीं कह सकती है बुलबुल। निर्मल-जैसे सोबर-सीरियस लड़के
से ही लड़कियाँ व्याह करेंगी," प्रबोधसेन ने ज्ञान दिया।

"आप लड़कियों के मामले में क्या जानें बाबूजी? चावल की खरी
किस देश से होगी, किस नदी में बाँध बँधेगा, टेरिलीफ़, दण्डकारण
रिफ़्यूजी—आप यह सब समझते हैं। मगर लड़कियों के बारे में आप क...
समझते हैं?"

प्रबोध बाबू मुसकराये। इनसे इनकी इस प्रगल्भ लड़की का सम्बन्ध
रवीन्द्रनाथ के उपन्यास में वर्णित उस सौम्य भलेमानुस और उनकी दुलारी
स्पर्शकातर बिटिया के सम्बन्ध से जरा भिन्न है। प्रबोधसेन ठीक उस प्रकार के
सौम्य भले आदमी नहीं हैं। वास्तव में सौम्यता को वह बरदाश्त नहीं करते
जिस मीठे बुढ़ापे का रूप देखकर संजीवचन्द्र ने कभी बड़े गर्व से लिखा थ
बूढ़ा हुए बिना आदमी सुन्दर नहीं होता, उस सुन्दरता से प्रबोधसेन डरते है
वह जैसे एक जवान बुढ़ापा चाहते हैं जो युवकों से होड़ लेने में पीछे न हटे,
तत्पर, व्यस्त, कर्ममुखर हो। वहाँ उलटकर पीछे देखने की फ़ुरसत न
स्मृतियों की जुगाली की स्वप्नालुता नहीं। बस केवल वर्तमान, लगातार स
करते हुए आगे बढ़ते जाना। प्रबोधचन्द्र अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं की सभ
अन्तरंग घड़ी में, सदा कहते हैं, जीवन के अन्तिम दम तक राष्ट्र के प्रति क
पूर्ति ही उनका आदर्श है। और इस कर्तव्य को निवाहते हुए उन्हें उदार

शब्दों के प

होने का समय नहीं है। अवश्य इसका मतलब यह नहीं कि वह ह्यूमर नहीं करेंगे। प्रबोधचन्द्र ने देखा है, ह्यूमर वास्तव में सफलता का अन्यतम सोपान है। संकट की हालत में जो ढंग से हँसते है वे ही असली आदमी है।' और प्रबोधचन्द्र ऐसे ही असली आदमी होना चाहते हैं। अपने अनजाने एक बार उनकी आँखें अपने चित्र पर चली जाती है। भवेन ने ठीक ही पकड़ा है। कम्बख्त में प्रैक्टिकल सेन्स खूब है। चित्र में जो भाव जाहिर हो पड़ा है वही उनका असली भाव है।

लेकिन बुलबुल अपने पिता के इस भाव को नही समझती। पिछले चार-पाँच वर्षों में उसके यहाँ जो पारिवारिक विप्लव हो गया है—यहाँ से दूर अपनी ससुराल बोडेन स्ट्रीट में थी, इसलिए या बुद्धि की कमी से—उस परिवर्तन को वह समझ नही सकी। या हो सकता है कि सूरज जैसे सदा पूरब में ही उगता है वैसे ही पिता सदा पिता ही रहते हैं, इस तरह की युक्ति-दृष्टि को वह अभी भी छोड़ नही सकी है।

अपनी बेकायदा हालत को झाँपते हुए निर्मल ने कहा, "नयी पिक्चर कौन-सी देखी ?"

"पिक्चर ? नही, पिक्चर देखने की मुझे मनाही है।"

"क्यों, तेरा दूल्हा बगलाभगत कब से बना ?

"वह मुझे क्यों मना करने लगा ? मुझे तो अँगरेजी थ्रिलर देखने की आदत है न। मुझे तो सबसे अच्छा ससपेन्स लगता है। देशी फ़िल्मों में यह ठीक से नही लाते बनता। जिसे बेकसूर समझा गया, पाया गया कि वही खूनी है। 'थ्री डेथ्स बाइ द रीवर' देखी है ? गजब की है!"

"तो वही सब देखा करो," निर्मल ने बहन की उत्तेजना को जिलाये रखने की कोशिश की।

"नही छोटे भइया, डॉक्टर ने मना किया है। कहा है, इस समय देखना ठीक नही होगा। नर्वस टेन्शन्—बच्चे पर बुरा असर पड़ेगा।"

प्रबोध बाबू ने कहा, "हाँ-हाँ, इस समय वैसी तसवीरें देखकर उत्तेजित होना ठीक नही होगा। मेडिकल साइंस पर विश्वास रखना अच्छा है। डॉक्टरों को मैक्सिमम कोऑपरेशन देना चाहिए।"

निर्मल और बुलबुल दोनो ने हैरान होकर एक ही साथ प्रबोधचन्द्र की ओर देखा। जैसे प्रबोधचन्द्र माइक के सामने खड़े हों।

प्रकारान्तर से भवेन ने उनकी भूल सुधार दी। देश-नेता को एक ओर वज्रादपि कठोर और फिर साथ ही फूल से भी कोमल होना होगा, इस तरह का उपदेश देने के बहाने बोला, "आप ही तो कहा करते हैं सर, मेडिकल साइंस

कितनी इम्पफ़ेक्ट है।"

"ठीक है। लेकिन सिनेमा अभी रहने दो। सरसों देकर आज तू शोरबेदार मछली तो बना बुलबुल। डॉक्टरों के कहने से यह पनछा कितने दिनों तक खाया जाये ?"

पिछले दस-बारह दिनों से लगातार रघू के हाथ की रसोई खाने के बाद आज का भोजन भूरिभोजन-जैसा ही लग रहा था। उसके बाद लेटे-लेटे बुलबुल के साथ उसकी बीडेन स्ट्रीट की ससुराल; लकड़ी के कारबार में उसके ससुर के भाग्य का चढ़ाव-उतार; उसके लड़के टुबलू, जो दार्जिलिंग में सेण्ट जोज़ेफ़ में पढ़ता है, उसके पाठ्य-जीवन की समस्या (बड़ा दुबला होता जा रहा है छोटे भइया, वहाँ सिर्फ़ मसूर की दाल का सूप खाने को देते हैं); उसके एक देवर, जो खड़गपुर से इंजीनियरिंग पास करके विलायत गया है, वह कहीं मेम न ब्याह लाये, यह चिन्ता; उसके बाद हाथ देखना, और हँसी-ठहाका—तीसरा पहर इसी तरह से बीता जा रहा था। निर्मल को बीच-बीच में लग रहा था कि उसकी अपनी दुनिया, या स्पष्ट करके कहा जाये तो उसके पिता की दुनिया, उसके रंग-उड़े चित्ती पड़े ग़ैरसरकारी कॉलेज भवन का मास्टरी जीवन, और चारों ओर के जीवन-जगत् को लेकर उसकी अपनी चिन्ता—यह सारा कुछ अवास्तव है। बुलबुल की बातों की बाढ़ में बहते-बहते उसे लगता रहा कि जीवन शायद बड़ा सरल है, बहुत ही सीधा। और उसी रूप में उसे ग्रहण कर लेना ठीक है। वह शायद आप ही ज़ोर करके उसे टेढ़ा देखता है। शायद उसके पिता भी वैसे ही देखते हैं। टेढ़ा करके जीवन को देखने का यह उत्तराधिकार ढोये चलने का क्या कोई मतलब है ?

बुलबुल के घोर घने बालों की ओर देखते हुए निर्मल ने सोचा, वह स्वयं दो दुनियाओं के ठीक बीच में खड़ा है। दरवाज़ा भिड़ा हुआ है, मगर ताला बन्द नहीं है। ज़रा-सा धक्का देते ही वह एक दूसरी दुनिया में पहुँच सकता है, जहाँ बुलबुल, बुलबुल का पति, ताऊजी, और उनका बालीगंज प्लेस का मकान, भवेन सान्याल, और भी बहुतेरे हैं। और इधर ? इधर उसका पिता, जीवन-युद्ध में हारे हुए सुबोधचन्द्र, बोसपाड़ा की पुरानी गली में सीलन-भरा घर, सौ छात्रों के विशाल वर्ग में गले की नस-नस को फुलाकर जॉन कीट्स के सौन्दर्य और सत्य की अभिन्नता को साबित करने की बेकार कोशिश, बचपन की याद, अखण्डित बंगाल के लिए एक मोह, कुल मिलाकर मन को अवश करनेवाली एक विषण्णता। पिछले दस-बारह दिनों से इस गंगा के किनारे असल में वह इन्हीं दो दुनियाओं के बीच के दरवाज़े पर हाथ रखे खड़ा है।

"अच्छा, तुम हाथ देखने में विश्वास करते हो छोटे भइया ?"

"कॉलेज में था तो कीरो की किताब पढ़ी थी। अब तो सब भूल गया हूँ।"

खैर, एक विषय में तुम कम से कम जरा नॉर्मल हो।"

उसके बाद निर्मल को चुप रहते देखकर बोली, "वो लेकिन खूब विश्वास करते हैं। तरह-तरह की पुस्तकें उलटते-पलटते हैं। बाबूजी को बरानगर के साधु की खबर उन्होंने ही दी है।"

"बरानगर के साधु ?"

"अरे, तुम तो आसमान से गिर पड़े! क्यों, भवेन-दा ने तुमसे कहा नहीं है ? मगर हाँ, ठीक साधु नहीं, बिलकुल मॉडर्न। सिगरेट पीता है, बुशशर्ट पहनता है। लेकिन गजब की क्षमता। जो कहा, सब मिल गया।"

"सब मिल गया ?" निर्मल के स्वर में व्यंग्य स्पष्ट था।

"स-अ-ब। मुझको बताया, आपके मन में एक कष्ट है। सन्तान के बारे में आपको अनिश्चयता-बोध है।....ठीक नहीं बताया ? टुबलू के लिए मैं तो उनसे लगातार फ़ाइट कर रही हूँ। अच्छी तरह खाना-वाना नहीं मिलता। लड़का दुबलाता जा रहा है। क्यों, कलकत्ते में क्या कोई स्कूल नहीं है ?"

"और कौन-सी बात मिली ?"

"सब-सब। और, वह अँगरेजी जानता है। बताया, आपसे जिसके भाग्य के जुड़ने की बात थी, वह नहीं हुई। लेकिन उससे अवश्य अच्छा ही हुआ। मंगल का दोष था।.... तुम नहीं जानते, विलायत हो आये एक बहुत बड़े डॉक्टर से मेरे ब्याह की बात पक्की हो चुकी थी, कि पता चला वह आदमी पियक्कड़ है।"

"ताऊजी भी हाथ दिखाते हैं ?" निर्मल को सन्देह हुआ। प्रबोधचन्द्र के आत्मविश्वास से हाथ दिखाना मेल खाता है या नहीं ?

"तुम कह क्या रहे हो छोटे भइया ? एक-दो नहीं, दिल्ली के सारे मिनिस्टर, पुलिस कमिश्नर, हाइकोर्ट जज—साधु के घर के सामने गाड़ियाँ ठसाठस रहती हैं। बाबूजी क्यों नहीं जायेंगे ? बाबूजी को 'लेबर' दिया जा रहा है। वे क्यों लेंगे ? बाबूजी 'होम' चाहते हैं।"

भवेन के पैरों की आहट मिली। "ब्रदर, साहब बुला रहे हैं," आते ही भवेन ने कहा।

नीचे रघू ने लॉन में कुरसियाँ डाल दी थीं। सामने कातिक की गंगा में झुकती हुई धूप। हिलसा मछली की नावें लौट रही हैं। इस साल उन्हें खास कुछ नहीं मिल पाया।

"सुबोध का क्या हाल है ?" बगल की कुरसी पर निर्मल को बैठने का इशारा करते हुए प्रबोध बाबू ने पूछा।

ताऊजी के सामने बाप का प्रसंग छेड़ने में निर्मल को झिझक हो रही थी, भले ही दोनों परिवारों के बीच वही सबसे बड़ा योगसूत्र है। पन्द्रह-एक साल पहले जब दोनों भाई बोसपाड़ा लेन में एक ही साथ रहते थे, तभी से निर्मल ताऊजी का दुलरुआ था। उसके बाद धीरे-धीरे छोटे भाई का पतन और बड़े भाई की उत्तरोत्तर उन्नति। लेकिन अलग से बालीगंज प्लेस का बग़ीचेवाला मकान जब बना भी, तब भी निर्मल ने स्कूल की छुट्टियों में महीनों ताऊजी के साथ ही बिताया किये। हाँ, उसके बाद कॉलेज में पढ़ने के कई साल और नौकरी के कई साल वह बेशक पिता के जगत् में ही लौट गया है। तीन-चार साल पहले भी जब प्रबोध बाबू ने उसे विलायत भेजने का सीधा प्रस्ताव किया था, तो निर्मल ने कहा था, "नहीं ताऊजी, जो करना होगा, देश में ही रह-कर करूँगा।"

कुरसी पर बैठते हुए निर्मल ने कहा, "अभी तो अच्छे ही हैं। तीनेक महीने पहले ऐटैक हुआ था, उसके बाद से ज़रा नर्म हो पड़े हैं। साँझ-विहान श्याम पार्क में जाकर बैठते हैं। दूर जाना मना है।"

"उस समय एक बार जाने की सोची थी। लेकिन काम की ऐसी भीड़....। पब्लिकमैन होने पर अपना भला-बुरा-जैसी कोई चीज़ नहीं रह जाती," ज़रा खाँसकर प्रबोध बाबू ने कहा।

उन्हें याद आया, उनके भाई की हालत जब चिन्ताजनक थी तो उन्हें प्रधान मन्त्री और पार्टी के नेताओं के साथ दुर्गापुर जाना पड़ा था, किसी प्लाण्ट के उद्घाटन के सिलसिले में। अब की बात होती तो शायद जाने की ख़ास ज़रूरत न होती। लेकिन उस समय नेताओं के मन की अवस्था ही ठीक से समझ में नहीं आती थी। तारिणी मुखर्जी-जैसे ख़तरनाक प्रतिद्वन्द्वी को ज़िले से बढ़ावा दिया जा रहा था। तीन-तीन महीने बराबर प्रबोधचन्द्र को लगता रहा कि किनारे आकर किश्ती अब डूबी तब डूबी। उस समय अपने आत्मविश्वास को और दृढ़ करने के लिए अपने छीले महीन प्रायः औरतानी गले से कहते थे, "आइ डोण्ट केयर। कैलकेटा बार इज़ ऑलवेज़ रेडी टु वेलकम् मी विथ् ओपन आर्म्स।" लेकिन भीतर-भीतर बेहद परेशान हो गये थे। ठीक तभी बुलबुल के पति से बरा-नगर के साधु का पता चला। और, उसने जो-जो कहा, सब मिल गया। अवधि दी थी तीन से छह महीने—इसी बीच मोड़ बदलेगा ("शनि, सर, आपको बहुत सता रहा है")। सच पूछिए तो उस समय प्रबोधसेन का अपना कहने को कोई नहीं था। उन्होंने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा। पब्लिकमैन होने की

गहरी सचेतनता से वह कुछ उदास दीखे।

"क्यों ताऊजी, आप क्या किसी साधु के पाले पड गये हैं? आपमें तो यह सब फितूर था नही। आपने कब से यह सब शुरू कर दिया?" कुछ सोचे बगैर ही निर्मल कह बैठा।

प्रबोधसेन ने भौंहें सिकोड़ी। अपने भतीजे की ऐसी अन्तरंगता को आजकल वह नापसन्द करते हैं। बल्कि उसका स्वभावत: चुप रहना किसी हद तक असामाजिक होते भी उन्हें सहनीय लगता। भौंहें सिकोड़े हुए ही बोले, "मैं किसी के पाले नही पडा हूँ निर्मल। अपने ताऊजी को इतना गँवई मत समझो।" फिर हठात् बात की दिशा बदल दी; कहा, "ये ऐस्ट्रॉलॉजर लोग हमें ज्यादा नही समझ सकते। ये लोग इनसानी कमजोरियों का धन्धा करते हैं। मगर तब हम सब भी तो धन्धा ही करते हैं। सिर्फ इन्ही बेचारों को दोष क्यों दिया जाये?"

जरा देर चुप रहकर फिर बोले, "और गुणी लोग हैं ही नही, यह भी कैसे कहा जा सकता है। देखते-देखते तुम्हारे बीते दिनो की सारी बात गड़गड़ करके कह दी! जैसे, नोट्स की छपी किताब में से पढ़ रहा हो! ऐसे में तुम क्या करोगे, कहो? मगर मानो या न मानो, इन बातो से आता-जाता कुछ नही।"

उसके बाद गंगा की गोद में डूबती धूप की ओर देखते हुए बोले, "लाइफ में चान्स आता है, यह बात माननी ही पड़ेगी। चान्स जब न हो तो लाख सिर मारो, सब बेकार रहेगा। और चान्स आया कि सब आनन-फानन हो जाता है। जरा-सी कोशिश ही सारा काम बना देती है। बेकार में भाला-टाला अपने में मैं विश्वास नही करता, मैं तो विश्वास चान्स पर करता हूँ। सच तो सुबोध यह समझ ही नही सका कि कब उसका अच्छा चान्स आया और कब चला गया। उसने जीवन यों ही बिता दिया। उसी का यह नतीजा है कि अन्तिम दिनों में इतने कष्ट में हैं।"

निर्मल के चेहरे पर एक दबी-सी असहिष्णुता की झलक आते ही वह बोल उठे, "मेरे भाई को मुझसे ज्यादा तो कोई नही समझता। निरा भोला है वह। कभी किसी की परवाह नही की। लेकिन तुम्हें परवाह करनी होगी। जमाना बदल गया है। आज आदमी को अपनी....अपनी इफ़िशेन्सी का सबूत देना होगा। कपाट बन्द करके निरे आइडिऑलॉजिस्ट बने रहने से काम नही चलेगा। जनता के पास जाना होगा। उसके लिए सरबस की बाजी लगानी होगी। गान्धीजी ने कहा है,...." प्रबोधसेन सहसा चुप हो गये। उन्हें स्वयं भी लगा, जैसे चुनाव-सभा में भाषण कर रहे हैं। भतीजे के सामने इस आत्म-सचेतनता के कारण

अपने से ही असन्तुष्ट हुए। खिजलाये हुए स्वर में बोले, "तुम्हारा अपना मन हो तो साधु के पास जाना, मैं कुछ कह नहीं रहा हूँ।"

"हाँ-हाँ, चलूँगा। आज ही जाइएगा?"—निर्मल ने उत्साह दिखाया।

प्रबोधसेन ने ज़ोर से आवाज़ दी, "रघू, कुरसियाँ उठाओ। आज ही रात के बारह बजे का समय दिया है। बड़ा स्ट्रेंज समय है। पर किया क्या जाये!"

ताऊजी के उठ जाने के बाद भी निर्मल कुछ देर तक बैठा रहा। गंगा लगभग खाली। सिर्फ़ एक जगह लाल पानी में एक गधाबोट को लेकर छोटा-सा एक लॉन्च धीरे-धीरे-धीरे जा रहा था। निर्मल को लग रहा था मानो चौखट पार करके दूसरी दुनिया में चला गया हो। उसने पाँव समेटे। जहाँ था, वहीं है। ठण्ड बढ़ रही थी। वह उठ खड़ा हुआ।

सात

रात को बारह बजे बरानगर के साधु से एपॉइण्टमेण्ट था। वहाँ के एक वकील उनके प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। उन्हीं के द्वारा फ़ोन पर समय ठीक किया गया। रात बारह की सुनकर पहले तो प्रबोधसेन ने भले आदमी को डाँटा, "हर बात में तो ज़्यादती न कीजिए।" मगर अन्त को वह राजी हो गये। वकील महोदय बैंकशेल कोर्ट में अपने सहयोगियों से बातों-बातों में कहते, "पाँच रुपये सेर मछली, जिसे पड़ता पड़ेगा, लेगा, जिसे नहीं पड़ेगा, नहीं लेगा।" मतलब यह कि रात बारह ही क्यों, तीन बजे भी समय दिया जा सकता है। ग़रज़ होगी जिसे आयेगा, नहीं होगी, नहीं आयेगा। और, साधु महाराज के चारों ओर एक गुरुत्वपूर्ण परिवेश की सृष्टि करने से मछली के भाव की तरह उनकी ख्याति भी दिनोंदिन बढ़ने लगी।

मुश्किल से गाड़ी घुस सके ऐसी एक के बाद एक कई गलियाँ, हेडलाइटों की रोशनी से चमक उठती ईंटोंवाले अँधियारे घरों की पाँत, खुले बंपुलिस, टुटहे मन्दिर के दालान में सिकुड़कर सोये कुत्ते और भिखमंगों को देखते-देखते निर्मल को नींद आ गयी थी। एक गली के मोड़ में घुसकर गाड़ी अटक गयी। बुलबुल ने ठीक ही कहा था, उतनी रात गये भी वहाँ गाड़ियाँ ठसाठस भरी होती हैं। उनमें से किसी के पास चपरासवाले अर्दली, किसी के अन्दर ठसाठस

भरी मारवाड़ी बहुएँ। इस जाड़े में भी बरामदे पर सुते में लोगों का निरन्तर आना-जाना। बैठने की जगह की कमी के कारण कोई-कोई गाड़ी में बैठे, कोई-कोई बाहर खड़े सिगरेट धौंक रहे थे। बुलबुल को बड़ी कठिनाई से आने से रोका गया। "ये लोग न जाने क्या कहते क्या कह बैठते हैं। और फिर इस समय ऐसे एक्साइटमेण्ट की क्या आवश्यकता है दीदी!" अन्त तक भवेन ने ही उसे सँभाला।

जिस कमरे में साधु बैठे थे उसके सामने एक जरा बड़े-से कमरे में जहाँ-तहाँ बिछी थी लम्बी-लम्बी बेंचें और चार-पाँचेक मुड़ी हुई कुरसियाँ। घर में प्रवेश करते ही भवेन ने झट सामने जाकर जैसे अतिथि की अगवानी करते हैं, वैसे ही सर झुकाकर प्रबोध बाबू को हाथ दिखाते हुए 'आइए-आइए' किया और भीतर गया। देखते ही देखते दो कुरसियाँ भी खाली हो गयीं। उनमें से एक पर बैठते ही निर्मल चौंक उठा, "तुम यहाँ?" अजाने ही प्रश्न उसके मुँह से निकल गया।

"तुम?" सामने जो छोकरा बैठा था, उसने जरा आत्मसचेतन होकर निर्मल से कहा।

प्रदीप्त मालदार, ए डी एम्। ताऊजी से उसका परिचय करा देने पर प्रबोधचन्द्र शायद असन्तुष्ट हुए। सोचा, ज्योतिषी के पास उनके अधिक आने-जाने का प्रचार होना अच्छा नहीं। कैसे क्या हो जाता है, कहा नहीं जा सकता। कहीं अखबार में न निकल जाये। आजकल कैसे-कैसे तो भद्दे कार्टून छप रहे हैं! यह बंगाली जात जो है, कोई शिगूफा मिल जाये तो बस और कुछ नहीं चाहिए। एक ही साथ दिमाग में कई तरह का सोच-फिक्र चक्कर काट गया। प्रदीप्त ने भी प्रबोधसेन के मन की स्थिति भाँप ली। खड़े होकर नमस्कार करके निर्मल से कहा, "बड़ी गरमी लग रही है। नहीं? चलो, बाहर चलें।"

"तुम यहाँ क्यों आये?" बाहर आते ही निर्मल ने पूछा।

"मैं तो कलकत्ता आते ही यहाँ आता हूँ। तुम्हारी तरह मैं भी तो मास्टरी करता था। मैंने कभी सपने में भी सोचा था क्या कि मैं एक जिले का चार्ज लूँगा?" धुआँ छोड़ते हुए प्रदीप्त ने कहा। फिर अपने मोटे फ्रेम के चश्मे को नाक पर ठीक से बिठाकर बोला, "लाइफ इज ए चान्स आफ्टर ऑल। मेरी-तुम्हारी इच्छा कोई बहुत मैटर नहीं करती। इसीलिए जरा एलर्ट रहने की जरूरत है।"

थोड़ी देर चुप रहकर बोला, "मैं जो अभी मालदा में सड़ रहा हूँ, यह भी चान्स है। डेढ़ साल पहले बदली की बात हुई। फिर सब सामान से फाईल दब गयी।...अरे हाँ, तुम्हारे ताऊजी से की ऑव राम हेरा। शायद यह भी एक

चान्स हो कि तुमसे भेंट हो गयी !"

एक महिला के आविर्भाव से उसकी बात में बाधा पड़ी। फूट-फूटकर आँसू बहाती हुई वह महिला उनके बिलकुल बग़ल से होती हुई सामने की गाड़ी में जा बैठी। सोना स्मर्गलिंग के किसी अन्तर्जातीय गिरोह से सम्बन्धित होने के सन्देह में तीन महीना पहले उसका एक लड़का दमदम हवाई अड्डे पर पकड़ा गया है। उसकी ओर देखकर धुआँ छोड़ते हुए प्रदीप्त ने कहा, "उसे कुछ नहीं होगा। साधु ने कह ही दिया है। मंगल का ज़ोर इतना प्रबल है कि शनि न्यूट्रल हो तो भी कुछ नहीं होने का।"

"तुम यह सब सीरियसली कह रहे हो क्या प्रदीप्त? यह शनि-मंगल? तो फिर पढ़ने-लिखने से क्या मिला?"

"लिखने-पढ़ने से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। इस तरह से कहना तो सिम्प्लिफ़िकेशन हो गया। इतने-इतने लोग रास्तों से चलते हैं, उनमें से कितने गाड़ी से दबकर मरते हैं? कुछ लोग इसे दुर्घटना कहेंगे, ज्योतिषी कहेंगे ग्रह। तुम ग्रह मानते हो या नहीं, बात असल में यह है।"

उसके बाद गले को धीमा करके कहा, "तुम्हारे ताऊजी यहाँ पहले भी आये हैं। मैंने साधु से पूछा था। साधु ने बताया, उन्हें 'होम' नहीं मिल रहा है इसलिए आते हैं। लेकिन मिलेगा। कर्मठ आदमी हैं। कहते थे, कर्मठ पुरुष के राशिचक्र में एक प्रकार का डाइनमिज़्म होता है जो तुम्हारे ताऊजी के राशिचक्र में है।"

भीतर से बुलाहट आयी। प्रबोधचन्द्र के साथ निर्मल सामने के भिड़े हुए दरवाज़े को ठेलकर अन्दर घुसा। एक दुबला-सा आदमी, भरमुँह काँटों-सी खड़ी कच्ची-पक्की दाढ़ी। पहनावे में लाल कोर की धोती, ऊपर कन्धों पर मैली पीली हाफ़-बुशशर्ट। ऐसा पच-पच करके पान खा रहा है कि लार चू रही है। सामने बैठे एक भले आदमी से धीमे-धीमे बातचीत चल रही थी। ज़रा ही देर बाद निर्मल को पता चला, वह सज्जन विश्वविद्यालय में बाँग्ला के प्राध्यापक हैं। साधु आगन्तुकों को एक उँगली से बड़े कमरे के कोने में पार्टीशन से घिरे भाग को दिखाकर जैसे बात कर रहे थे वैसे ही करते रहे। वकील साहब चुपके से बोले, "उन्होंने पहले ही बुलाने को कहा।"

इसे एक स्वतन्त्र स्वागतकक्ष कह सकते हैं। मेज़ पर दो प्याला ठण्डी चाय और अपने में को सिकुड़े-सिमटे हुए दो-दो समोसे। प्रबोध बाबू ने कहा, "ले लो। साधु हैं, न खाने से रुष्ट होंगे।"

दूसरी ओर आरामकुरसी पर अधलेटा एक बूढ़ा। निर्मल ने अन्दाज़ लगाया, बुलबुल का बताया हुआ हाइकोर्ट का वही जज होगा।

पार्टीशन की फाँक से सिर्फ साधु का माथा दिखता था। सामने की ओर झुककर शायद किसी राशिचक्र की ओर देखकर हठात् चीख-से उठे, "अहा-हा, बिलकुल कान के पास से निकल गया! उफ्, कैसी गजब की प्राणदायिनी सम्भावना! कैसा निर्मल यश! कैसी अहेतुकी श्रद्धा छोटे-बड़े सभी लोगों से! सब नाश कर दिया, सब चौपट कर डाला! इसे एकबारगी राह का भिखारी बना छोड़ा रे! राह के भिखारी के अतिरिक्त और क्या? जिस हाथ के होने से प्रधान मन्त्री बना जा सकता है, उस हाथ के होते सोचा जा रहा है कि युनिवर्सिटी की चेयर मिल सकती है या नहीं।....लेकिन, यह है कुटिला-जटिला का खेल। कुटिला-जटिला का खेल नहीं होने से ठीक पोसाता नहीं।"

"कथामृत कहते हैं?" दूसरी ओर से काँपती हुई आवाज।

"अजी, मब साले का एक ही अमृत है। सभी कान्हा के मुँह में एक ही बात। 'गुड' और 'ईविल' की कॉन्‌फ्लिक्ट। क्यों महाशय, आप लोगों को छात्रों को पढ़ाना नहीं पड़ता?"

"लेकिन बाबा, 'ईविल' जो बार-बार जीत रहा है। हेड ऑव द डिपार्टमेण्ट ने वह भी पाया। उसके बाद चेयर—वह भी ले ली। मुसीबत है, कम्बख्त के स्वास्थ्य से! अट्ठावन का हुआ मगर कैसा स्वास्थ्य है! डाइबिटीज़ नहीं! जी भरकर सबको दिखा-दिखाकर रसगुल्ले खाता है और ज़ोर-ज़ोर से पूछता है, 'आपको सैकरीन दी है न!'—कोई उपाय किये बग़ैर तो चलने का नहीं बाबा!"

"तू साला पापी!" हरठाकुर चिल्ला उठे।

"पापी हूँ, तभी तो आया हूँ देवता! आप-जैसा साधु होता तो कहीं भी जमकर ठाट से बैठा रहता।"

सामने की गद्दी पर टिप्पण को फेंककर हरठाकुर ध्यान से जाने क्या देखने लगे। तीखी निगाह से उसे देखते हुए फिर चीख उठे, "हैं, हैं। अभी ये छह महीने दाँत पर दाँत धरे रहना होगा। अगले अगहन से जेठ के बीच अगर तेरा कोई ठिकाना न हो तो हरठाकुर यह काम छोड़ देगा।"

सामने के नाटे गोल-गाल चश्मावाले काले-से भले आदमी की मोटी गरदन अब दिखाई पड़ी। हो सकता है उत्साह में कुछ आगे खिसक आये हों। उन्होंने मानो जैसे निराशा से ही स्वगतोक्ति की, "यानी, नहीं हुआ!"

"हुआ क्या नहीं रे! क्या नहीं हुआ?" हरठाकुर खीज उठे, "तेरे कुछ बाप की जायदाद है कि नहीं हो। जो मालिक है, उसने जो बन्दोबस्त कर रखा है, वही होगा। अगले क्वार से कर्म-क्षेत्र में यश का जो योग दिखाई दे रहा है, वह तुझे कुछ महीनों में ही ढकेलकर ऊपर उठायेगा। देखना, कहीं

सँभाल न पाकर फिर हरठाकुर के पास दौड़कर मत आ जाना।"

आमतौर से अध्यात्मचर्चा में जो ख्याति-प्राप्त होते हैं, वे जैसे सीज़र की तरह बोलते हैं। (जब सीजर ने सोच लिया कि यह होगा....) वैसे ही हरठाकुर आरम्भ से अन्त तक बोलते गये, "हरठाकुर तुम लोगों की तरह उछल-कूद नहीं करते। हरठाकुर को जो करना है वही वह करेगा। माँ से वह तुम लोगों की बात कहेगा। उसके बाद माँ जाने। वह करे, न करे, इसमें हरठाकुर क्या कर सकता है? वह तो कोई फ़ुटपाथ पर इश्तहार लगाकर नहीं बैठा है।....तुम लोग आते क्यों हो? तुम लोग न आओ तो मेरी जान बच जाये। तब मन को स्थिर करके थोड़ा माँ का ध्यान कर पाऊँ।"

विश्वविद्यालय के प्राध्यापक महोदय कुरते पर ऊनी चादर को सँभालते हुए उठ खड़े हुए। शायद वह ठीक से यह समझ नहीं पाये कि उन्हें दुखी होना चाहिए या खुश। क्वार से उनके अच्छे दिन शुरू होंगे। इसका यह मतलब तो नहीं कि ठीक क्वार के महीने से ही शुरू हो जायेंगे। होते-होते साल भी घूम जा सकता है। उनके हाथ में छह या आठ महीने हैं। उसके बाद ही सेवा-निवृत्त होना है। मतलब यह कि किसी तरह इतना हो सकता है कि कुछेक महीने चेयर पर और रह जायें। लेकिन हरठाकुर ने जैसा कहा वैसा ही अगर हो, यदि यश पाने का योग उन्हें ऊँचा उठाकर ही रहे तो क्या दो-एक एक्सटेन्शन नहीं मिलेंगे? प्राध्यापक महोदय ने लम्बा निःश्वास छोड़ा। वह निःश्वास विषाद का है या उल्लास का, यह समझ में नहीं आया।

आठ

हरठाकुर का आदिवास पाइकपाड़ा है। उन दिनों वह हर प्रश्न के लिए दस रुपये लिया करते थे। और उनके गाहक बेहिसाब थे। युवक-युवती, बूढ़े-बूढ़ी, बंगाली-अबंगाली—कोई भी नहीं छूटता। हरठाकुर कहा करते थे, प्रश्न का उत्तर मेरे लिए हिसाब-जैसा है। पाँच और पाँच जैसे दस होगा ही, वैसे ही ग्रहों की दशा के फेर से मनुष्य के भाग्य का फेर होना निश्चित है। साथ ही वह अपने चुहाड़, कच्ची-पक्की दाढ़ी से भरे प्रायः अशोभन व्यक्तित्व का उपयोग करते। "मैं चेहरे-मोहरे की बदौलत भक्त नहीं बढ़ाता", यह बात हरठाकुर अकसर कहा करते। "मेरे पास जो आते हैं, कहीं बेमौके फँसकर लाचारी ही

आते हैं। जैसे खून करके लोग वकील के पास दौड़ते हैं। मेरी शक्ल देखकर कोई क्यों आने लगा ?"

वास्तव में पच्-पच् करके मुँह से पीक टपकाते हुए रात-दिन पान खाना, डिब्बी को डिब्बी सस्ती चारमीनार सिगरेट धौंकना, काँटों-से खड़े अनसँवरे बाल और धोती के ऊपर कन्धों से मैली बुशशर्ट—कोई-कोई तो कहते हैं यह सब उन्होंने जानकर कर रखा है। मानो प्रकारान्तर से हरठाकुर भक्तों से कहते हों; सूरत से नहीं, किसी बाहरी कारण से नहीं, मैं केवल अपनी विद्या के बल पर तुम लोगों को अपनी ओर खींचता हूँ।

उसके बाद वह पाइकपाड़ा से बरानगर चले आये, ख्याति के शिखर पर। अब वह कोई फ़ीस नहीं लेते। कोई-कोई कहते हैं, 'लेने की ज़रूरत नहीं है, इसीलिए फ़ीस नहीं लेते।'

सचाई यह कि लोहा-लक्कड़ के व्यवसायी अढ्डी के बड़े लड़के के पेट में अलसर हुआ और वह मरने-मरने को हो गया। कहा जा सकता है कि तभी से हरठाकुर की ग्रहदशा भी बदल गयी। नश्तर लगने के बाद भी जब उस लड़के को कोई लाभ नहीं हुआ, जब चौंसठ रुपये फ़ीसवाले डॉक्टरों ने भी जवाब दे दिया, तो हरठाकुर की मैया के फूल का परस लड़के के शरीर में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। वह चंगा होने लगा। बचपन से ही कुछ गाने-बजाने का रोग था उसे। हरठाकुर का पक्का भक्त बन जाने के बाद से काम करते हुए बीच-बीच में एकाध कड़ी गा उठता। उसके किसी-किसी समाज-सचेतन सहयोगी ने उसमें दिमाग़ ख़राब होने के लक्षण देखे भी पर उसके विभाग के बंगाली बड़े साहब ज़रा पसोपेश में पड़ गये थे। उस छोकरे के काम में जी चुराना नहीं था, वह कभी गैरहाज़िर नहीं होता था। लेकिन कभी-कभी उनके कमरे में फ़ाइल लेकर जाता तो हठात् मुसकराते हुए उनके सामने हाथ हिलाकर गा उठता :

मन की बात कहूँ क्या री सखी, पड़ी मनाही
दरदी मिले बिना यह जान नहीं बचने की।

बंगाली साहब अकचका उठे। "दिमाग़ तुम्हारा बिलकुल चौपट है।" कुछ प्रतिवाद भी किया। लेकिन ज़्यादा कुछ करने की हिम्मत नहीं हुई। कहा नहीं जा सकता, कौन जाने कोई दैवी व्यापार ही हो! जीवन की हर बात की तो युक्ति से व्याख्या नहीं की जा सकती। यही सब सोचकर वे चुप रहे।

उस लड़के के हिस्से में जो था, यानी बरानगर में सात बीघे का बगीचा, संगमर्मर के मोजेइक फ़र्शवाला पुराना तिनतल्ला मकान, बाज़ार में दस-बारह दुकान-घर, प्रैक्टिकली अब इन सबके मालिक हरठाकुर हैं। कुछ हिस्सा उनके प्राइवेट सेक्रेटरी बैंकशाल कोर्ट के उस वकील ने मारा। हरठाकुर अब फ़ीस नहीं

लेते, लोग अपनी इच्छा से सोना-दाना दे जाते हैं।

स्वागत-कक्ष में बैठे-बैठे निर्मल को ऊँघ आने लगी। बीच-बीच में आंख खोलते ही दूसरी ओर भिड़े दरवाज़े की फांक से उद्विग्न मुखड़ों की पांत दिखाई देती। एक बूढ़े मोशाय निहायत ऊबे हुए-से उन सबकी ओर देख रहे थे और हरठाकुर का सान्निध्य-प्राप्त निर्मल आदि जैसे भाग्यशालियों को मन ही मन कोस रहे थे।

"मेरे ताऊ सर एल. पी. खाली कहा करते थे : इटर्नल विजिलेंस इज़ द प्राइस ऑव फ्रीडम। मैं भी वही कहता हूँ। उस दिन मैदान में क्या हुआ, देखा? कोई यह धारणा भी कर सकता था साहब कि कलकत्ते के बीस-तीस लाख लोग कम्युनिस्टों का रवैया देखने के लिए इकट्ठे होंगे?"

प्रबोधसेन ने भौंहें सिकोड़ीं। यह अवसर-प्राप्त जज साहब उन्हें मूरख जरद्गव-सा लगा। कथा-माला की कहानी की तरह एकबारगी सीधा नीतिशास्त्र भी आजकल एकदम अचल है, यह बात पुराने ज़माने के लोगों की खोपड़ी में नहीं घुसती। ज़रा गुस्से से बोले, "कम्युनिस्टों का रवैया कौन कहता है! रूस के बड़े-बड़े लोग—बुलगानिन, क्रुश्चेव—ये हमारे देश के टुच्चे कम्युनिस्ट हैं क्या? और फिर ये सभी भारत के मित्र हैं। हमारे देश में जो सृष्टियज्ञ आरम्भ हुआ है, उसमें सहयोग के लिए हम रूस-अमेरिका सबको बुला रहे हैं।"

निर्मल फिर ऊंघने लगा। उसे लगा, शायद पिछले साल ठीक यही बातें विरोधियों के मुंह पर मारकर उसके ताऊजी ने असेम्बली में 'हीयर-हीयर' की हर्षध्वनि अर्जित की थी।

लेकिन जज साहब नाछोड़बन्दा थे। पहले बुढ़ापे में होती धर्मचर्चा, अब है राजनीति! आजकल के बहुतेरे बूढ़ों की तरह जज साहब राजनीति की बहुत सारी अन्दरूनी बातें जानकर तथा उनकी चर्चा करके ख़ुश होते हैं। और प्रबोधसेन बहरहाल मन्त्री चाहे हों, फिर भी उन्हें अपनी नज़र से देखने का अधिकार है—ऐसा शायद वह मानते हैं। क्योंकि सेन साहब जब कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकालत करते थे, तब ये वहीं विराज रहे थे। प्रबोधसेन का एक मुवक्किल—एक धनी मारवाड़ी—उन्हीं की अदालत में हार गया था। इनकम-टैक्स पचा जाने के एक मामले में प्रबोधसेन ने बड़ी निपुणता से वकालत की थी, पर जज साहब ने फ़ैसला खिलाफ़ ही दिया। इसके अलावा उनके ताऊ थे सर एल. पी.। गलाबन्द विदेशी अल्स्टर में से नुकीले मुंह से वह मानो खिटखिटा उठे, "आपके क्रुश्चेव-बुलगानिन कम्युनिस्ट नहीं हैं? यह मत समझिए कि ये गांगूराम का दही खाने के लिए इस देश में आये हैं। दे हैव ईविल डिज़ाइन्स। सांप को दूध-केला खिलाकर ही पालिए, मगर ऐन वक़्त पर वह

ठीक काट खायेगा।"

इसके बाद उन्हें खाँसी आ गयी। फ़िलहाल उनका दमा उपटा हुआ है। डॉक्टर ने कहा है, "उत्तेजना से बिलकुल परहेज़ कीजिए।" इससे जज साहब और भी हौलदिल हो गये हैं। सोचा, यह हरठाकुर से आज न ही निबटा जाये। होगा भी क्या? दो बरस में मरना तो है ही। शनि की जैसी प्रचण्ड दशा है उसमें हरठाकुर कुछ कर सकेंगे, ऐसा नहीं लगता। उससे तो अच्छा ज़िन्दगी का ठीक से सामना किया जाये। लेकिन राजनीतिक चर्चा का एक नशा है। वह आदमी को एक आवर्त से दूसरे आवर्त में ले जाती है। प्रबोधसेन की ओर ज़रा झुककर उसकी ओर उँगली दिखाते हुए बोले, "देश की इस दुर्दशा का कारण यह है कि इट इज़ रन बाइ मैन लाइक यू।"

प्रबोध बाबू की नाक सुर्ख़ हो आयी। वह चीख़ उठे, "अरे जाइए-जाइए, जनम-भर अँगरेज़ों की मुसाहिबी की और बात कर रहे हैं! देश को कर क्या रखा है? केवल कूड़ा बना दिया है, रवि ठाकुर ने ठीक कहा था।"

रवीन्द्रनाथ ने क्या कहा था, गुस्से में प्रबोध बाबू ही भूल गये। वरना इन दिनों भाषण में अच्छी बाँग्ला के उपयोग के लिए वे बीच-बीच में रवीन्द्रनाथ की किताबें उलटते नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है।

"अजी, रवीन्द्रनाथ का उद्धरण हमारे सामने मत बघारिए, वह सब अपनी विधान-सभा में खड़े होकर सुनाया कीजिए।....रविबाबू को कह रहे हैं आप? तो सुनिए, बंग-भंग आन्दोलन के समय स्वदेशी गीत ख़ूब लिख रहे थे। उसके बाद ज्यों ही अँगरेज़ों ने आँखें तरेरी कि—धूप आपनारे मिलाइते चाहे गन्धे।"

अपने दुबले शरीर को तोड़-मरोड़कर टूटे खसखस गले से गा उठे जज साहब। उसके बाद कुछ देर ज़बरदस्ती हँसते रहे कि फिर खाँसी शुरू हो गयी। खाँसी का ज़ोर कमते ही परम प्रशान्ति से 'तुम' पर उतर आये। "देखो, जेल जाकर, चरखा चलाकर देश को नहीं चलाया जा सकता। देख लो न, चोर-छिछोरों से आजकल देश भर गया है। तुम कहते हो, हम लोगों ने अँगरेज़ों की मुसाहिबी की है। मगर उस ज़माने में था मैन ऑव इण्टिग्रिटी। अब वह सब कहाँ! पहले के मुक़ाबले आज तो सब बच्चों का खेल है।"

गला खखारकर बोले, "अरे भई, तुमने ही तो देखा है, कैलकटा बार की क्या इण्डिपेन्डेन्स थी! किस स्टैचर के थे लोग! सर रासबिहारी घोष, सर एल. पी., सी. आर. दास। अब सब चना-चबेना है!"

इतने में परदे की फाँक से नज़र आया, विश्वविद्यालय के वे अध्यापक कन्धे पर के शॉल को देह पर लपेटते हुए बाहर चले गये।

उस शोख़ वकील ने गला बढ़ाकर कहा, "सर, आपको बुला रहे हैं।"

जज साहब झट उठकर आगे बढ़े। वकील साहब ने हाथ जोड़कर कहा, "जी, आपको ज़रा देर बाद। मिनिस्टर साहब को बुला रहे हैं।"

प्रबोधसेन ने तीखे व्यंग्य से सिकुड़े बैठे जज साहब की ओर एक बार ताककर गम्भीर गले से कहा, "निर्मल, चलो।"

निर्मल की आँखें लग आयी थीं। दो पकी उम्रवालों की चीख-पुकार से आँखें खुल गयीं और सामने की अप्रिय अवस्था को टाल जाने के लिए वह आँखों पर हाथ रखकर तन्द्रा का बहाना किये रहा। आँखें मलते-मलते उसने कहा, "जी, मुझे क्यों, आप ही जाइए।"

फ़र्श पर पीली बिछावन। एक कोने में फूल-मालाओं की ढेरी। भतीजे को साथ लेकर भीतर जाते ही साधु ने प्रबोधसेन से कहा, "आइए-आइए। यह कौन है?"

"यह सुबोध का लड़का है।"

"बहुत अच्छा।....मैं रात-दिन माँ से कहा करता हूँ, मेरे पास क्यों इतने लोग आते हैं? मेरा है क्या! पैसा नहीं जानता, पॉलिटिक्स नहीं जानता, और, आज कितनी तरह की किताबें निकल रही हैं। ये छोकरे कितनी खबरें रखते हैं। खबरों की रोज़ कितनी आलोचना होती है। मैं तो यह सब भी कुछ नहीं जानता। साधारण ज्ञान की परीक्षा हो तो भी मैं तो फिसड्डी होऊँगा। इतने-इतने लोग आते हैं, उनसे सुनकर जो सीखता हूँ, माँ से पूछता हूँ, माँ कौन-सा ठीक है? कम्युनिस्ट ठीक हैं कि कांग्रेसी? मजदूर ठीक हैं कि पूंजीपति? अमेरिका ठीक है कि रूस? जो दो भाई जायदाद के लिए अदालत में लड़ रहे हैं उनमें कौन भाई ठीक है? जीवन ठीक है कि मौत? दुःख ठीक है कि आनन्द? प्रसूतिगृह ठीक है कि श्मशान? माँ सब ठीक कर देती है।"

"ज़रा हाल देखिए?" हरठाकुर ने पटापट बुशशर्ट के बटन खोल दिये। जिज्ञासु की नज़र से निर्मल ने उधर ताका। हरठाकुर दुबला नहीं है। कच्चे-पक्के रोयों से झाँकते पँजरे की ओर उँगली का इशारा करके कहा, "लकलक हड्डियों का ढाँचा हो गया हूँ जनाब, गो कि मेरी तन्दुरुस्ती ऐसी थी कि आप विश्वास नहीं करेंगे। नित दिन दस-बारह मील चलता था मैं।"

निर्मल ने जम्हाई ली। उस ओर नज़र पड़ते ही हरठाकुर बोल उठे, "मैं यह सब क्यों कह रहा हूँ। यह सब तो मेरी बात नहीं। आप लोगों की पर्सनाल्टी देखी है। वही मुझसे कहला रही है।" ऊपर की ओर नज़र उठाकर बोले, "मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो। जो बुलवाती हो, वही बोलता हूँ।" उसके बाद ज़रा देर चुप रहकर निर्मल की ओर देखकर बोले, "बेटे, तुम ज़रा बाहर प्रतीक्षा करो। मैं एक-एक करके निबटाऊँ।"

निर्मल फिर बाहर इन्तजार में बेसब्र लोगों के बीच आ खड़ा हुआ। यह कमरा खासा बड़ा था। दरी पर लोग सिकुड़े-सिकुड़ाये बैठे थे। एक पतली बेंच पर तीन-चार अधेड़ स्त्रियाँ सिर झुकाये बैठी थी। उनमें-से एक विलाप कर उठी, "अमला को बचाया नहीं जा सकेगा।" सामने चॉकलेट रंग की चादर ओढ़े एक बूढ़े मोशाय बीड़ी फूंक रहे थे। जली हुई बीड़ी को कमरे के एक कोने में फेंककर बोले, "*कुछ कहा नहीं जा सकता। मेरा लड़का तो अब-तब हो गया था।* पेनिसिलीन की सुइयाँ देते-देते बदन पर सुई चुभोने की जगह बाकी नहीं रह गयी थी। उसके बाद नब्ज छूट गयी। हरठाकुर ने कोई उम्मीद नहीं दिलायी। *गंगाजल के साथ केवल गेंदा फूल की दो-एक पंखड़ियाँ जीभ से छुलाने को कहा।* उसी से ठीक हो गया। कुछ कहा नहीं जा सकता।"

हरठाकुर के मुवक्किलों के वैचित्र्य से निर्मल विह्वल-सा बोध करने लगा। दरी पर एक कोने में बैठी कॉलेज की लड़कियों में एक जाने-पहचाने-से मुखड़े का आविष्कार करके निर्मल चौंक उठा। यह शक्ल शायद कहीं देखी है उसने। फिर खयाल आया, अखबार में एक तसवीर के नीचे यह शीर्षक था—'अमरीका से लौटी एक तरुणी का संन्यास-ग्रहण'। तीसेक साल की एक महिला। आधुनिक मेमसाहबों-से छँटे बाल। मरदाने ढंग के। टसर की चादर। सम्भवतः सिस्टर निवेदिता के अनुकरण से गले में रुद्राक्ष की माला। दुबली, फीका गोरापन। आँखें दोनों दमकती हुई। औरतों की देख-भाल कर रही थी। कई कम उम्र की लड़कियों से कह रही थी, "कमरे के लोग निकल आयें तो अबकी तुम लोगों की बारी।"

निर्मल ने ग़ौर से देखा, इतने सारे लोग जो घण्टों से दरी पर, बेंच पर, बाहर बरामदे में, रास्ते में इतनी रात तक वक्त काट रहे हैं, उनमें से बहुत से ही उद्विग्न हैं। उनके चेहरों पर मानो अस्पष्ट भय की छाप। किसी को मरने का डर, किसी को नौकरी की अनिश्चयता का डर, किसी को जेल जाने का डर, किसी को पारिवारिक अशान्ति का भय। खास करके कम उम्र की महिलाओं में किसी को न्याय का, किसी को अन्याय का डर—हर कोई किसी न किसी डर से परेशान। ताऊजी को लेकिन काहे का डर? अन्त तक 'होम' न मिले? या डाइबिटीज ज़ोर पकड़ ले? या अनर्गल भाषण देते भाई की तरह उन्हें भी दिल का दौरा पड़ने का डर है? ताऊजी से इन मामलों में हर समय उसकी एक दूरी रहती है। आते समय गाड़ी में उन्होंने निर्मल से कहा था, "मैं ऐसी अनहोनी शक्ति पर विश्वास नहीं करता। जिन्हें अपने-आप पर भरोसा नहीं, वही साधु-बाबाओं के पीछे दौड़ते हैं। लेकिन सुना है, हरठाकुर मज़ेदार आदमी हैं। जब बरानगर आ गया हूँ तो एक बार देख ही लूँ।" बुलबुल से भी

उन्होंने इससे ज्यादा कुछ नहीं कहा।

निर्मल फिर उस छोटे कमरे में जा बैठा। निर्मल को देखकर जज साहब तड़ाक से उठकर बोले, "हर जगह करप्शन! सारा देश ही करप्शन से भरा है। करप्शन मिटाने के लिए कमिटी बनी। वहाँ भी भ्रष्टाचार। फिर उस कमिटी की निगरानी के लिए दूसरी कमिटी बनी। देश इसी तरह चल रहा है। कौन चलाता है?"

दोनों उनींदी आँखें लाल। गंजी खोपड़ी के पास से दो-एक बाल खड़े हो आये थे। चीख उठे, "कौन चलाता है? सब टॉम, डिक्, हैरी। वह आदर्श, वह देशात्मबोध कहाँ? विद्यासागर, विवेकानन्द का वह बंगाल कहाँ है? इस समय तो सरसों में भूत है। यह तुम्हारा ताऊ...."

निर्मल को खीज हुई। दो-तीन साल से प्रसिद्ध आदमी का नातेदार होने की बदनसीबी का शिकार हो गया है। इसी से बरानगर के गंगा-घाट पर उसे देखते ही सरकार-विरोधी चर्चा शुरू हो जाती है। और जब वह अपने पिता की तरह सरकार-विरोधी आलोचना में साथ देता है, तो उसे और भी ग़लत समझा जाता है। लोग सोचते हैं, मित्रता की रक्षा के लिए ही यह सब बोल रहा है। और, कटु बातों से जब सरकार को खड़ा नहीं किया जा सकता, या गँवाया नहीं जा सकता, तो आम तौर से ऐसी स्थिति में निर्मल चुप रह जाना ही पसन्द करता है। मास्टरों की दुनिया में इसके लिए उसे 'स्नॉब' की आख्या मिली है। उसकी पढ़ाई किसी-किसी सहयोगी के लिए प्रायः पहेली है। कोई-कोई कहते हैं, कुछ ही सालों में वह शौक़ जाता रहेगा। उसके विभागाध्यक्ष सदानन्द बाबू ही मजा लेते हैं। समझ नहीं पाते कि उसे किस रूप में देखें। उन्होंने एक दिन स्नेह से कहा था, "इस लाइन में और कितने दिन रहने की सोच रहे हैं? यदि छोड़ना हो हो, तो पहले ही छोड़ना अच्छा।"

इसीलिए ताऊजी के प्रसंग पर निर्मल स्वभावतया सिटपिटा जाता है। कहता है, "ताऊजी की बात उन्हीं से कीजिएगा।"

"अरे बाबा, नाराज क्यों होते हो!" व्यंग्य से, जागरण से और अम्ल की अधिकता से भले आदमी की आँखें जलने-सी लगती हैं। "अहा" गुस्सा क्यों होते हो! भीतर की ये खबरें देगा भी कौन? हम लोग तो दो ही दिनों के बाद, चल्-चल्। तब तुम्हारे सारे अखबार मिलकर तुम्हारे ताऊ को देशभक्त बना देंगे।"

भले आदमी ने पीनल कोड के सैंतालीस या दो सौ सैंतालीस या वैसे ही किसी एक दफ़ा का जिक्र करके कुछ देर तक क्या कहा, निर्मल की समझ में खाक नहीं आया। केवल उनके कहने का सार समझ में आया : कि चकमा देकर

जज को नहीं ठगा जा सकता, इफ ही इज अपराइट। तुम्हारे ताऊ ने समझा था कि रघुवीर सिंह का पूरा टैक्स चुराना दबा देगा, मगर अभी भी देश में ऐसे लोग हैं जो क़ानून जानते हैं। यू काण्ट ब्लफ एव्रीबॅडी।"

परदा हटाकर प्रसन्न-से अबोधसेन कमरे में दाखिल हुए। उन्होंने कहा, "जाओ, दो-चार मिनट के लिए बुला रहे हैं। ज्यादा देर मत करना। ड्राइवर बेचारा बहुत थका हुआ है। भोर सवेरे का निकला हुआ है।"

"मुझे जाने की क्या जरूरत है?" चारों ओर गरदन ऊँची किये प्रतीक्षा करते हुए लोगों को सोचकर निर्मल अप्रतिभ-सा अनुभव कर रहा था।

"न-न, जाओ।" ताऊजी ने फिर कहा।

"सरसों में भूत!" जज साहब बुदबुदाये।

बहुत ही आत्मसचेतन होकर सूखा-सा हँसता हुआ निर्मल हरठाकुर के कमरे में गया।

नौ

निर्मल को कुछ पूछना नहीं था। वह हरठाकुर का ग्राहक नहीं है। चौदह-पन्द्रह साल की उम्र में एक बार बोसपाड़ा लेन में हारू मामा ने—जो यह दावा करते थे कि गान्धीजी का राशिचक्र देखकर उन्होंने उनकी मृत्यु से एक साल पहले ही बता दिया था कि आततायी के हाथों मौत निश्चित है—उसका हाथ देखकर जब यह बताया था कि इस हाथ में महापुरुष होने का लक्षण है, तो भी वह ख़ुश नहीं हुआ था। बल्कि उसे अपने पिता की तरह यह सारा कुछ झूठा लगा था। उसके बाद कॉलेज में पढ़ते समय और बाद में प्राध्यापकी करते हुए ज्योतिषी के दुर्ग्रह ने उसे बहुत बार परेशान किया है। बहुत बार उसने ख़ुशी-ख़ुशी हाथ भी बढ़ाया और सुना, 'पैंतीस साल की उम्र से आपका जीवन बदल जायेगा' या 'अगले कातिक महीने तक मंगल आपके लिए विशेष सुविधाजनक नहीं है' या शायद उसे उत्साहित करने के लिए 'बेहिसाब स्त्री-धन मिल सकता है, यदि....' या 'पिता के स्वास्थ्य में गिरावट....पिता नहीं हैं?' उसके कॉलेज के अर्थनीति के प्राध्यापक शम्भू बाबू ने तो कह ही दिया है, दो ही साल में निर्मल कॉलेज छोड़कर किसी बड़े पद पर न चला जाये तो मेरा कान काट लें। लेकिन जिस बात से निर्मल को आश्चर्य हो रहा था, वह थी

इतनी सर्दी में इतनी रात में इतने लोगों की भीड़। ये सभी लोग क्या सचमुच मानते हैं कि हरठाकुर भविष्यवक्ता है या जैसे लोग सख्त बीमारी में चौंसठ रुपयेवाले डॉक्टर को बुलाते हैं और साथ ही तावीज़ पहनते हैं कि किसी भी रास्ते राहत मिले; दावँ से निकल जाया जा सके, दूसरे को कामयाबी के साथ लंगी मारी जा सके, किसी भी असहाय अवस्था में अपने को भुलाया जा सके—इन लोगों के यहाँ आने में शायद ऐसी कोई भावना हो। अपने हानि-लाभ की खातिर ही यहाँ भीड़ है।

निर्मल के कमरे में दाखिल होते ही हरठाकुर ने उदात्त स्वर में कहा, "आ, आ।" निर्मल उस पीली जाजिम पर धप्प से बैठ गया। अब तक काठ की कुरसी मानो उसकी पीठ में गड़ रही थी। अब अतिथियों के लिए बग़ल में रखे हुए लम्बे तकिये का सहारा लेकर निर्मल को आराम मिला।

"क्या करता है तू? मास्टरी? थू-थू!"

हरठाकुर ने थू-थू कहा ही नहीं, किया भी। उसके बाद निर्मल की आँखों में तीखी निगाह डालकर बोले, "ईश्वर तुझे खींचकर बहुत ऊपर उठायेंगे। तू जड़ की तरह जितना भी क्यों न पड़ा रहे, तेरे अन्दर एक दाहिका शक्ति है। ईश्वर को यह मंजूर नहीं कि तू यों भटकता रहे, सालों जड़ की नाईं गुज़ारे। यह भी कोई जीवन है? यह मानसिक जड़ता तेरे लिए नहीं है। अपने इस सुन्दर जीवन में तू वैरागी क्यों होगा? धन-धान्य से भरी यह वसुन्धरा, यहाँ इतने लोगों का स्थान है, तेरा भी होगा। तू यह हरगिज मत सोच कि तू कोई अजीब-सी चीज़ है। इनसान की यही कमजोरी है। वह सोचता है, वह एक अद्भुत, असाधारण कुछ है। दूसरों से बिलकुल अलग। बिलकुल ही एक जुदा और अनोखा जगत्।'

निस्पन्द निर्मल के चेहरे की ओर ताकते हुए हरठाकुर न जाने क्या खोजने लगे, मानो किसी ऐसे सूत्र का आविष्कार करना हो जो श्रोता के हृदय के बन्द दरवाज़े को एक झटके में खोल दे। फिर बोले, "मेरे यहाँ एक महिला आती है, लीना या वीणा, अखबार में जिसके बारे में निकलता है। अमेरिका से लौटी हुई विदुषी महिला की भक्ति! सो देखो, शिक्षित होने से क्या होता है, शिक्षित होने से आधार और भी साफ़ हुआ। मिट्टी के भाँड़ से स्टेनलेस का प्याला अच्छा नहीं है?"

स्तब्ध होकर निर्मल हरठाकुर के कथामृत का पान करता रहा। उसका मन भीतर से छलछला उठा। कोई अलौकिक सत्य नहीं, फिर भी एक मामूली समझदार आदमी की बात के नाते भी क्या ये सब फ़िज़ूल हैं? वह क्या सचमुच दस साल से घिसट नहीं रहा है? घिसटने के अलावा और क्या है? सौ लड़कों

के सामने खड़े होकर ढाई सौ रुपये माहवार के बदले कीट्स का सौन्दर्य-तत्त्व, या शेक्सपियर की एक-एक पंक्ति का आक्षरिक अनुवाद, जो अब आँखें बन्द करके मुँह-ज़बानी सुना सकता है, यहाँ तक कि उसके अपने मास्टर साहब एक-एक बात पर जिस तरह बल देते थे, अपने अनजाने ठीक वैसे ही बल देना, हूबहू उन्हीं की तरह कुछ बातों का उच्चारण करते जाना, जैसे, 'इन द फिट्नेस ऑव थिंग्स' या 'इण्टीग्रेशन ऑव द डिसइण्टीग्रेटेड युनिवर्स' अथवा 'इमोटिव रियेलिटी'—यह सब तो अब शब्द के सिवाय और कुछ नहीं, कुछ बातों के रंगीन फ़ानूस, जिनको लेकर बच्चों की तरह लुकाछिपी करते हुए आठ-दस साल गुज़ार दिये।

आठ-दस साल पहले या उससे भी पहले, जब वह साहित्य का छात्र था, उसे वास्तव में लगा था कि एक नये कथामृत का पान कर रहा है। लेकिन बातों के पीछे अर्थ, तो शब्दों के पीछे प्रकाश की इच्छा। वह अर्थ, वह इच्छा बरस बीतते-बीतते घिस गयी है। अब वह कभी-कभी आश्चर्य से किताबों की शेल्फ़ों की ओर ताकता रहता है। अरस्तू की पोयेटिक्स, कोलरिज की बायोग्राफ़िया लिटरेरिया, टी. एस. इलियट के निबन्धों की किताब। आइ. ए. रिचर्ड्स, गिलबर्ट मरे, एफ. आर. लीविस—साहित्य के प्राध्यापक के रूप में दस साल पहले कॉलेज में जाकर इन नामों को मन्त्र की तरह जपता था। लेकिन अब इन नामों की कोई खासियत नहीं रही। वह सारा का सारा रटा हुआ जैसा हाथ-पाँव हिलाकर, गला फाड़कर बरसों से चीख़ता चला आ रहा है—एक स्वभावतः विराट् और निर्विकार क्लास के आगे।

एक और सिगरेट सुलगाकर हरठाकुर ने फो-फों करके कई कश खींचे। और फिर, और फिर अपनी तीखी, रातजगी लाल-लाल आँखें निर्मल की ओर ताकते हुए मोती खोजने लगे। उसके बाद शुरू किया, "नेति-नेति से ही आरम्भ। यह तो सभी जानते हैं। इस बात में तुम कोई अनन्य-साधारण नहीं हो। मनुष्य मात्र ही अपनी विचार-शक्ति का प्रयोग करता है, यदि मनुष्य हो तो वह ना कहता है। ना कहना सीखना बहुत बड़ी बात है। मैं जानता हूँ, तू वह कहना जानता है। इसीलिए चारों ओर से लताड़ खाकर मास्टरी की चौखट थामे पड़ा है। मैं भला यह नहीं जानता?"

निर्मल जरा मूरख-जैसा हँसी हँसा। इन 'बाबाओं' की बातों पर कान न देकर उसने मन की विश्लेषण-शक्ति को सजग रखने की कोशिश की। नेति-नेति के बारे में हरठाकुर ने जो कहा, वह तो रामकृष्ण परमहंस से हूबहू चुराकर। लेकिन गजब, इस ओर निर्मल की चिन्ता अब तक नहीं हो रही थी। यह बात भी एक बार उसके ध्यान में आयी थी कि अन्त में शब्दों का कहीं पता नहीं

को उपलक्ष करके है। अपने 'होम' पोर्टफ़ोलियो की प्रयोजनीयता भी वह जता चुके हों शायद। लेकिन उस ख़याल की विजली एक वार काँधकर ही खो गयी। निर्मल ने जो सोचा नहीं था, वही किया। वह कौतूहल से सुनता रहा।

"मैं जानता हूँ, तुझे कुछ पूछना नहीं है। प्रश्न किसके मन में होता है? जो क्लीव हैं, नपुंसक हैं, कीट हैं। वे रात-दिन मेरे पास भनभनाते रहते हैं। मैं तो अहर्निश माँ को पुकारता हूँ, भेजती हो भेजो, मगर चुन-चुनकर। इन कीड़े-मकोड़ों को क्यों भेजती हो माँ? ऐसों को, जिन्हें सोचने की अपनी शक्ति नहीं, जो आत्मरति की कीचड़ में लोटते रहते हैं। जिनका ईश्वर नहीं, देश नहीं, समाज नहीं, दूसरे दस लोग नहीं। बस, ख़ुद, अपनी बीवी और अपना बच्चा। इतने से भला कुछ महत् किया जा सकता है? कभी किया जा सका है? तूने कुछ पूछा नहीं, इसलिए मैं आप ही तेरे प्रश्न का जवाब दिये दे रहा हूँ। नेति-नेति करके विताया। ठीक किया है। तमाम दुनिया के लोग तेरी निन्दा करें, हरठाकुर नहीं करेगा। हरठाकुर कहेगा कि तूने ठीक ही किया है।"

अनजाने निर्मल का मन वरसात के तालाव जैसा छलक आया। यह आदमी अलौकिक कुछ नहीं कह रहा, मगर वात उसके मन की कह रहा है। ऐसी एक चिन्ता से और शायद अपने प्रति ममता से वह भरपूर लगा। एक वार ज़वरदस्ती कोशिश करके वह उस मन्त्रमुग्ध दुनिया से हट आया। परदे के पार जो उद्विग्न उनींदे मुखड़ों की पाँत प्रतीक्षा में थी, उनके लिए हमदर्दी उस लम्बी चर्चा में अव व्यवधान की ज़रूरत महसूस करने लगी। लेकिन फिर उस एक के वाद दूसरी सिगरेट फूँकते जानेवाले वेहया, कन्धों पर मैली बुशशर्टवाले आदमी की वातों की ओर उसका मन चला आया।

"अपने आईने में अपना मुँह कै दिन देखेगा?" हरठाकुर के कर्कश गले से निर्मल चौंक उठा। गला धीमा करके हरठाकुर ने कहा, "जीवन-भर तो नेति-नेति की नहीं जा सकती, किसी एक जगह आकर—आजकल तुम लोग क्या तो कहते हो—सिन्थिसिस?—वही सिन्थिसिस होता है। तव जी में आता है, भगवान् की यह अनोखी सृष्टि, सूरज-चाँद-सितारों-जड़े आसमान के नीचे इतनी तरह के उद्भिद्, इतने प्राणी, इतने प्रकार की जीवन-यात्रा, इतने प्रकार के लोग—पापी-तापी, पुण्यवान्, पियक्कड़, चुहाड़ और फिर निर्जन अपापविद्ध पुरुष, इतनी नीचता-हीनता, और फिर इतना आनन्द—इनमें अपनी जगह वना लेनी होगी। महज़ वैरागी वनकर डोलने-फिरने से काम नहीं चलेगा। तू भगवान् को नहीं मानता है न—यह तुझे एक नज़र देखकर ही मैंने समझ लिया है। मगर हरठाकुर तुझसे यह हरगिज़ नहीं कहने का कि तू भगवान् को मान, तू यह कर और वह कर, मन्तर ले, दस हज़ार नाम जप कर। वह तुझे यह सब कुछ

भी नहीं कहेगा। वैसा मियाँ होता (यहाँ पर हरठाकुर की आँखों की चमक गज़ब की बढ़ गयी) तो हरठाकुर के पास विश्वविद्यालय के डी. एस-सी लोग नहीं आते। वे कहते हैं, हमने विज्ञान तो बहुत पढ़ लिया, अब आपकी बात सुनें। हरठाकुर वैसा कुछ भी नहीं कहेगा।"

उन्होंने फिर सिगरेट सुलगायी। दीवार घड़ी में टन् से एक बजा। परदे के उस पार से एक दबा विलाप तैरता आया—"मेरी बिटिया को बचाया नहीं जा सका!"

"सुन ले, किसकी बिटिया को मुझे बचाना है। मैं क्यों बचाऊँ? क्यों बचाऊँ मैं? बचानेवाला मैं कौन होता हूँ? जो बचानेवाली है, वह बचायेगी। मैं तो रात-दिन माँ से कहता हूँ, इन गये-बीतों से मुझे छुटकारा दिलाओ। ये तो मुझे धर्म के पथ पर भी रहने नहीं देते। ये मुझे धर्म-भ्रष्ट करते हैं। तुम बल्कि मेरे सामने नास्तिकों को लाओ, जिनके रीढ़ की हड्डी है, जो मुझे नहीं मानते, मन ही मन मेरा मखौल करते हैं।"

अपनी दप्-दप् करती आँखों हरठाकुर निर्मल की ओर गौर से ताकने लगे। और लगा, वह अब तक जो ढूँढ रहे थे, उन्हें मिल गया। वह योग-सूत्र मिल गया, वह कुंजी मिल गयी, जो बन्द दरवाज़े को झटके में खोल देगी। आवाज़ धीमी करके, प्रायः फुस-फुसाकर बोले, "मैं तुझे भगवान् को मानने के लिए नहीं कहूँगा। सब तो माँ जगदम्बा का खेल है। मैं केवल यह कहूँगा कि तेरे नेति-नेति करने के दिन गये। तेरे सामने अब नयी धरती है, नया जीवन है, नया भविष्य है।....आगे बढ़ जा, और आगे बढ़ जा। नेति के बाद जो नया जगत् है, तू उसमें क़दम रख।"

सिगरेट को फेंककर हरठाकुर ने आँखें बन्द कर लीं। बड़ी ही शान्त दृष्टि से निर्मल की ओर ताकते हुए बोले, "अब तू जा सकता है।"

रात के डेढ़ बजे निर्मल को छुट्टी मिली। अवसाद से उसका माथा झिमझिम कर रहा था। पर, साथ ही हरठाकुर की मीठी-मीठी बातें ठण्डी हवा की तरह उसके जी को जुड़ा दे रही थीं। 'नया भविष्य, नया जीवन, नयी धरती'— बातें बहुत ही अच्छी हैं। सबको भली लगती हैं। प्रेमी कहता है, राजनीतिक वक्ता कहता है, धर्म-प्रचारक कहता है। मगर अकसर इन बातों का कोई माने नहीं होता, प्रायः एक मामूली बात-सी बोली जाती है। लेकिन हरठाकुर की उस रोज़ की बातें (जिस ढंग की बातें वह हर रोज़ बहुतेरे लोगों को कहा करते हैं) निर्मल को ठीक मामूली-सी नहीं लगी थीं। या कोशिश करके भी वह उन्हें मामूली नहीं समझ पा रहा था।

वहाँ से निकलते समय जज साहब निर्मल को लगभग धक्का देकर ही भीतर

घुस गये। फिर इन्तज़ार करनेवालों की ओर से उकुस-पुकुस, लम्बा निःश्वास, हिल-डुलकर बैठने की आवाज़, गला खखारना—यह सब एक साथ ही सुनाई दिया। किसी-किसी ने स्वागत-कक्ष के दरवाज़े के सामने इस ढंग से भीड़ की और बाहर के बरामदे तथा रास्ते के लोगों ने उधर से भीतरी ओर ऐसी धकम-पेल की कि पेट में केहुनी का एक धक्का खाकर प्रबोधसेन खड़े हो गये। चादर ओढ़े हुए वकील साहब शायद मन्त्रीजी को पहचानकर आगे बढ़कर बोले, "आप सर, बग़लवाले कमरे से निकल जायें। उधर पिछला दरवाज़ा है।"

बग़ल के कमरे में पाँव रखते ही निर्मल चौंक उठा। सामने की प्रायः आधी दीवार तक एक तसवीर। हरठाकुर एक छोटी-सी चौकी पर बैठे। होंठों पर घुली-सी हँसी। उनींदी सुर्ख़ आँखों के बदले शान्त और स्थिर दृष्टि। उनके कोई-कोई भक्त यद्यपि यह कहते हैं कि उनकी जैसी आँखें दुनिया में कम ही आदमी के हैं, पर निर्मल को वे बड़ी छोटी ही लगी थीं। पर वह चौंका एक दूसरे कारण से। एक विश्वविख्यात वैज्ञानिक हरठाकुर के पैरों के पास। उनके पैरों पर एक हाथ रखकर बैठे हुए।

प्रबोधसेन ने अपने भतीजे के इस भावान्तर को भाँपा। उनका अपना चेहरा प्रशान्त और अविचल था। गाड़ी पर चाचा-भतीजा अगल-बग़ल बैठे। बरानग़र की अली-गली को अचानक चमकाते हुए, कभी मन्दिर-शिखर, सर्विस पाख़ाना, चित्ती लगे विशाल मकान के पहलदार बरामदे के खम्भे, कभी बरगद की जड़ या हठात् जग पड़े कुत्ते पर हेडलाइट डालते हुए गाड़ी बढ़ चली।

"बिलकुल हम्बग नहीं है, क्या ख़याल है?" प्रबोधसेन ने कहा।

निर्मल ने इतने धीमे से 'नहीं' कहा कि गाड़ी की आवाज़ में प्रायः सुना नहीं जा सका। उसके बाद उसके चेहरे पर एक सन्दिग्ध भाव फूट उठा। एक बार सोचा कि ताऊजी से पूछे या नहीं कि उन्होंने हरठाकुर से उसके बारे में पहले कुछ पूछा था। क्या। किन्तु दूसरे ही क्षण लगा, चाहे जिस ढंग से ही क्यों न बोले, हरठाकुर की बात अपनी है। ताऊजी को वह जानता है, विधान-सभा में खड़े होकर, उछल-उछलकर वह विरोधी दल की आलोचना का खण्डन कर सकते हैं, पर ऐसे घरेलू ढंग से मन की बात ठीक समझ या बोल नहीं सकते।

"यह आदमी बहुत-बहुत लोगों से मिला-जुला है, बहुत कुछ जानता है। मनोविज्ञान की थोड़-सी चर्चा करने से ही ऐसा कुछ कहा जा सकता है। वैसे कुछ एक्स्ट्रा आर्डिनरी पावर नहीं है?" प्रबोधसेन ने कहा।

"आप गये क्यों थे ताऊजी?"

"मैं? यों ही। इसे देख लिया। बहुत दिनों से सुनता आ रहा था। मैं तुम्हारे बाप की तरह डॉगमेटिक नहीं हूँ। मैं हूँ पब्लिक मैन। मुझे जनता के

साथ रहना होता है। जनता के सुख-दुख को समझना होता है। 'इस आदमी को नज़दीक से देख लिया न ? जाड़े की रात में भी इतने लोग मिलने के लिए खड़े हैं। हाउ डू यू एक्सप्लेन ? हम-तुम इसे हमबग कह सकते हैं। लेकिन उससे क्या आता-जाता है ! भीड़ जैसी हो रही थी, वैसी ही होगी। और फिर सभी बातों की युक्ति द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती। अगर ऐसा होता तो मैं मिनिस्टर नहीं होता, सुबोध भी इस तरह से रॉट नहीं करता।"

हेडलाइट की रोशनी से कुछ कुत्ते जगकर एक ही साथ भूंकते हुए गाड़ी के पीछे दौड़े। उनकी आवाज़ दब जाने के बाद प्रबोध बाबू बोले, "पॉलिटिक्स का पाठ तो सुबोध से ही मिला। उस समय की, आइ-एम-एस की वैसी नौकरी छोड़ दी, सुबोध का सदा से यही डॉक्ट्रिनल ऐप्रोच है....जैसे मेरे छोटे बेटे का है।"

अन्तिम बात को प्रबोधचन्द्र ने आहिस्ते से कहा। और सभी बातों में प्रबोधचन्द्र जयी हैं, पर एक बात में हार गये हैं। उनका छोटा बेटा पिछले दस साल से देश में केवल समाजतन्त्र की प्रतिष्ठा के लिए दीवाना बना फिर रहा है। यह आज़ादी उसके लिए अभी भी झूठी है। संस्थातत्त्व संग्रह के बहाने फिलहाल वह किसी गाँव में गया है।

प्रबोधचन्द्र हठात् ज़ोर से बोल उठे, "देश-प्रेम का मतलब क्या केवल आत्मत्याग है ? नहीं, देश-प्रेम का माने आत्मत्याग ही नहीं है। यह शायद अँगरेजों के ज़माने में चलता था। आज देश-प्रेम का मतलब है, कौन कितना काम कर सकता है। देश-प्रेम माने एफिसिएन्सी। बुड्ढे को देखो (प्रबोध बाबू अपने किसी सहकर्मी की तरह बंगाल के मुख्यमन्त्री को बुड्ढा या मालिक कहा करते हैं, घरेलू बातचीत में)। वह एक ओर, मैं एक ओर। भोर चार बजे देखता था, घम्मच अँधेरे में वह खट्-खट् घूम रहा है। ज़रा रोशनी हो आती कि कॉफी के प्याले में हिलाते हुए पुकारते, "क्यों जी प्रबोध, नींद टूटी ? बिलकुल मशीन-सा आदमी। हम अगर अपने आपको देश के काम में लगाना चाहते हैं, तो हमें ऐसा यन्त्र-सा होना पड़ेगा। क्यों भवेन, ठीक है न ?"

भवेन गांगुली सामनेवाली सीट पर अभी तक चुपचाप बैठा था। पानी से लहू का घनत्व अधिक होता है, अँगरेजी के इस प्रवचन से वह अपने आपको दिलासा देने की कोशिश कर रहा था। क्योंकि हरठाकुर के यहाँ जाने का सब ठीक-ठाक उसी ने किया और वहाँ जाने के बाद हुजूर उसे ही एकबारगी भूल गये ! वह अब तक अपने भतीजे के ही पीछे व्यस्त रहे, जो काफी सन्देहजनक राजनीतिक मनोभाव रखता है। भवेन के अस्तित्व को वह बिलकुल भूल गये हैं। इसके सिवा भवेन ने यह देखा कि गाड़ी पर प्रबोध बाबू अधिकतर इतने धीमे गले से बोल रहे हैं कि चेष्टा करने पर भी एकाध शब्द के सिवाय उसके पल्ले

कुछ नहीं पड़ा।

"क्यों जी, तुम तो बिलकुल गुमसुम बैठे हो," प्रबोध बाबू भवेन के प्रति सदय हुए।

"हम क्या जानते हैं सर।"

"तुम सब जानते हो भवेन। मगर तुम जरा ज्यादा चाहते हो। तुम और निर्मल बिलकुल विपरीत हो। तुम चाहकर गोलमाल करते हो और निर्मल नहीं चाह-चाहकर जम गया।"

गाड़ी घर के पास आ गयी। निंदाई आँखों दौड़ते हुए आकर रघू ने फाटक खोल दिया। लॉन की हरियाली गाड़ी की रोशनी में और भी चकचक कर उठी। लेकिन बरामदे की रोशनी चूँकि खराब थी, इसलिए घर अँधेरा था। पूरे बगीचे में आधी रात की फुरफुर हवा। गाड़ी से उतरकर निर्मल की तरफ़ मुड़कर हठात् तीखे गले से प्रबोधसेन बोले, "आइ हेट पॉवर्टी। नाण्टू को (ताऊजी का बड़ा लड़का) इसीलिए विलायत भेजा। बेशक वह ब्रिलिएण्ट है। लेकिन देश में ब्रिलिएन्स का स्थान कहाँ? मैं ऐसी डेमोक्रेसी में विश्वास नहीं करता, जहाँ यू रिड्यूस एवरीबडी टु रामा-श्यामा। आखिरकार आइ हैड टु राइट टु इन्दिरा (शायद इन्दिरा गान्धी, निर्मल ने अन्दाज लगाया) वाली-ओल कॉलिज में नाण्टू की सीट के लिए। आइ डिड इट इन कम्प्लीट फ़ेथ दैट आइ शैल सी हिम थ्रू। सुबोध जो कहे। दुनिया में एक ही जात है—अँगरेज। सुबोध ने ज़िन्दगी-भर अँगरेजों का दोष ही देखा। उन लोगों ने हमारे देश में यह नहीं किया, वह नहीं किया। मगर डेमोक्रेसी का एडिफ़िस अँगरेजों ने ही तैयार कर दिया। सुबोध कहेगा, अँगरेज नहीं भी होते, तो भी हम लोग आज व्यवस्था में आ सकते थे। ठेंगा आ सकते थे, ठेंगा! (प्रबोधसेन ने अपने दोनों मोटे अँगूठे को भतीजे के सामने दिखाया)। अँगरेज नहीं आते तो हम अयोध्या के नवाब के मातहत रहते या बहादुर शाह के राजत्व में। अजी, तुम्हारे राममोहन राय, माइकेल, रवीन्द्रनाथ कहाँ रहते? कहाँ रहता तुम्हारा कलचर, साहित्य; तुम्हारी कांग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी कहाँ रहती?"

बरामदे में आ जाने पर भी उनकी बातों की बाढ़ नहीं थमी! "सुबोध ने सदा भूल की है। उस ज़माने की वैसी नौकरी, उसने एक बात में छोड़ दी। महज़ पागलपन। अरे, सुभाष बोस ने छोड़ दी, इसलिए तुम भी छोड़ दोगे? उस समय यह सब कहकर मैं बुरा बना। अब वह पछता रहा है।"

"बाबूजी वास्तव में पछता नहीं रहे हैं। उन्हें जैसी जिन्दगी अच्छी लगती है, उन्होंने वही चुन ली है," निर्मल ने कोमल दृढ़ गले से कहा।

"ग़रीबी के माने ही पछताना है। तुम नहीं मानते?" प्रबोध बाबू का

गला जरा कर्कश सुनाई पड़ा। उनकी यह निश्चित धारणा है कि सुबोध के अत्यन्त अवास्तविक आइडियलिज्म के धुएँ ने निर्मल, यहाँ तक कि उनके पुत्र को भी प्रभावित किया है। लेकिन अब कम से कम निर्मल के लिए उस धुएँ से हट आने का समय आया है। निर्मल के कॉमन सेन्स पर उन्हें भरोसा है और उन्हें यह आशा है कि आखिर तक शायद उनके भतीजे का यह मोह जाता रहेगा।

निर्मल ने धीर स्वर से कहा, "आपका यह कहना अगर सच हो ताऊजी, फिर तो सारा देश ही पछता रहा है।"

"एक्जैक्टली ! एक्जैक्टली !" प्रबोध बाबू मानो उछल पड़े, "इसीलिए तो देश के आगे एकमात्र समस्या है, स्टैण्डर्ड ऑव लिविंग को बढ़ाना। इसीलिए तो स्टील प्लाण्ट...."

"आप लोग बरामदे में खड़े-खड़े क्यों चिल्ला रहे हैं। अन्दर आकर बात करें तो क्या हर्ज है ?" निंदाई आँखों बुलबुल उठ आयी। प्रबोध बाबू के पास आकर वह बोली, "उनके बारे में कहा ?"

प्रबोध बाबू ऊबे हुए-से बोले, "रतन का अभी नहीं होगा। और, ऐसा हुआ क्या ? कम से कम दो साल उसे नौकरी करने दे। उसके बाद मैं ही कह-सुनकर उसकी बदली कलकत्ता करा दूँगा।"

"आपने मेरी किसी भी बात को सीरियसली नहीं लिया, लीजिएगा भी नहीं," बुलबुल की आवाज में नाराजगी थी।

प्रबोध बाबू ने उधर कान नहीं दिया। बोले, "निर्मल, तुम कल जा रहे हो ?"

"अब छुट्टी के और दो-तीन दिन यहीं एकान्त में बिता लेने की सोच रहा हूँ।"

"हाँ, तुम लोगों को और जिस क़दर घूमी है।....भवेन, कल आठ बजे निकलना है। दस बजे दमदम। बर्मीज प्रीमियर आ रहा है।....बुलबुल, तू रतन की क़तई फ़िक्र न कर। मैं तुमसे वायदा करता हूँ, उसकी कलकत्ते के हेडक्वार्टर में बदली करा दूँगा। उसके डाइरेक्टर जैन हैं न भवेन ?"

"जी सर, सत्तरह तारीख को यू. एन. एसोसिएशन की मीटिंग है। आप प्रेसिडेण्ट हैं, जैन वाइस प्रेसिडेण्ट।"

"सत्तरह को तो स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज कॉनफरेंस है।"

"जी, वह अट्ठारह तारीख को है।"

ऐसी-ऐसी बातों पर भवेन का खूब दखल है। हक़ीक़त में प्रबोध बाबू आउटलाइन में ही रहना पसन्द करते हैं, लेकिन इन बातों में भवेन की मदद के बिना चलना मुश्किल है।

"तो, फ्रेंच एक्सपर्ट ?" उन्होंने अस्पष्ट भाव से कहा ।

"वह तो सर, बीस तारीख को तीन बजे हैं ।"

"ठीक-ठीक," इस ढंग से कहा, गोया भवेन को जाँच रहे थे । अब उन्होंने वुलवुल की ओर मुड़कर कहा, "मैंने कभी किसी से अनरिज़नेब्ल रिक्वेस्ट नहीं किया है, नहीं करूँगा । मगर रतन की बात जुदा है, ही इज़ ए ब्रिलिएण्ट इंजीनियर । उसके लिए कहना कठिन नहीं है । सब ठीक हो जायेगा ।"

बरामदे से जाते-जाते सहसा ठिठक गये प्रबोध बाबू । सामने फीकी चाँदनी में गंगा छलछल कर रही थी । ऊपर बेलूड़ मठ का धुंधला माथा दीख रहा था ।

"हाउ ग्रैण्ड ! यह मकान खरीदकर अच्छा ही किया है, क्या खयाल है निर्मल ?"

"जी, ताऊजी ।"

"घाट को फिर से बँधवाने की सोच रहा हूँ । मारवाड़ियों के ज़िम्मे था । वे लोग रखना जानते हैं भला !"

ज़रा रुककर स्नेह से बोले, "सो जाओ । रज़ाई लेते हो न ? सरदी वैसी ज़ोर की नहीं पड़ी है, फिर भी चिल् लग जा सकती है ।" एक बार गंगा के उस पार ताककर लम्बा निःश्वास छोड़कर बोले, "हरठाकुर रामकृष्ण नहीं है, यह सभी जानते हैं । मैं भी तो सी. आर. दास नहीं हूँ ।"

धुंधली अँधेरी गंगा की ओर देखकर फिर कहा, "खूब इण्टरेस्टिंग एक्सपीरिएन्स, है न ?"

दस

कोठीघाट के नहानेवालों के साथ आजकल निर्मल खूब जम गया है । उसके बारे में वहाँ के नहानेवालों की दो राय हैं । केदार मुखर्जी रामकृष्ण के 'कथामृत' को उद्धृत करते हुए कहते हैं, "लँगड़ा आम का टुकड़ा मुंह में डालते ही पता चल जाता है । वह अभी चुप है । जब समय आयेगा, सबको मारकर निकल जायेगा ।" यानी निर्मल के बारे में जो उत्साह है, वह केवल उसकी सम्भावना में । आगे चलकर वह क्या हो सकता है, बस उसकी जानकारी । दूसरी एक राय स्पष्ट शब्दों में दीपक ने दी, "पाँच साल मास्टरी करने से

आदमी गधा बन जाता है। उससे अब कुछ नही होने का।"

ठीक ऐसे समय निर्मल घाट में उतरा। कल हरठाकुर की कृपा से अच्छी नींद नहीं आयी। यहाँ एकान्त में अकेले-अकेले, उसने अपने मन को अच्छी तरह तैयार किया था। अँगरेजी साहित्य की जिन किताबों को पढ़ाने में बिलकुल निर्जीव आप्त वाक्य जैसा लगता है, उन सबसे फिर से एक बार परिचय किये ले रहा था। अब वह उतनी प्राणहीन नहीं लग रही थीं। मसलन, विलियम शेक्सपियर का चित्रकल्प। कण्ठस्थ गत की नाईं जब उसने छात्रों से कहने की चेष्टा की कि पर्व-पर्व में लेखक का चित्रकल्प कैसे बदल गया है (बहुतेरे भाष्यकार जो बहुत बार कह चुके हैं), उस समय उसके मन में इस सम्बन्ध में कोई प्रतिध्वनि नहीं थी। लेकिन इस निर्जन में 'किंगलियर' पढ़ते-पढ़ते उसे याद आया लीयर की उस हिंस्रता, निष्ठुरता का चित्रकल्प—भेड़िया, सियार, बन्दर, बेंग—ये सब काफ़ी अर्थपूर्ण हैं। अर्थात् गंगा की हवा, अच्छा खाने-पीने से उसका मन ढीला पड़ने के बजाय और दृढ़ हो रहा था कि ऐसे में उसके ताऊजी के आविर्भाव से उसके चिन्तन उलट-पुलट हो गये। प्रबोधसेन ने एक बेला के आविर्भाव से मानो उसे समझा दिया कि चिन्तनशील होने की प्रयोजनीयता समाप्त हो गयी है, अब कर्मवीर होने की जरूरत है—कर्म चाहे जिस प्रकार का हो।

"पाँच साल क्या साहब! एक ही साल लड़कों को पढ़ाने से सर के बाल घिस जाते हैं," अप्रतिभ दीपक की ओर देखकर निर्मल ने कहा।

तारिणी ने कहा, "मास्टर लोगों का युग अब नहीं रहा। बचपन में देखा करता था, क्या आदर है! अब पेट के लिए रास्ते में जुलूस निकालते हैं। अब पेट के सिवाय और कुछ नहीं रहा!"

नलिनी डपट उठा, "जुलूस नहीं निकालें तो क्या करें? सूखा सोंठ होकर मरें! तुम्हारी सरकार उन्हें पैसा देगी! जितने सारे चार सौ बीस हैं, सब लूट तो रहे हैं, अखबार और सिनेमा के मालिक। बी. टी रोड की ओर ज़रा नज़र डालो न। इतने कारखाने हो रहे हैं। मगर नौकरी-चाकरी का कोई आराम है? कारखाना ज़रा खड़ा हुआ नहीं कि छँटनी शुरू हो गयी। और गरीबों के लिए सरकार ने ट्रिब्युनल की व्यवस्था की है। गरज़ कि तीन साल तक बैठे अँगूठा चूसा करो!"

"मास्टरी एक मिशन है," दीपक ने कहा।

"क्या खूब कही भाई," केदार मुखर्जी ने कहा, "सबको मास्टरी नसीब नहीं होती।" कहकर वह पोती को तेल लगाने लगे। फिर बोले, "निर्मल बाबू को अच्छी लगे, तो मास्टरी करेंगे, न लगे, छोड़ देंगे। इसमें बात ही

क्या है !"

निर्मल की ज़बान पर इसकी ठीक उलटी बात आयी थी। मगर उसने कहा, "मुझे तो अच्छी ही लगती है।"

दीपक ने आँखें उलटकर कहा, "कहते क्या हैं जनाब, ऐसे लोग हैं क्या, जिन्हें मास्टरी अच्छी लगती है ?"

केदार मुखर्जी ने कहा, "यह तुम लोग ज़्यादती कर रहे हो। मैंने जब ऐन-ड्रूल में नौकरी शुरू की—वह था नाइनटीन हण्ड्रेड एइट—तो मैं सोचा करता था कि किसी यवन के देश में आ गया। माँ-मौसी की लाड़ से मज़े में था। उसके बाद तीन-चार साल बीतते न बीतते शाम को लालटेन जलाकर काम। महज़ कई साल में ही हिवर्ट साहब का दायाँ हाथ बन गया।"

"आपके दादाजी के चार पैसे थे," दीपक ने कहा।

"आप लोगों के भी ट्यूशन है, नोट की किताब लिखना है। क्यों निर्मल बाबू ? भगवान् ने सब व्यवस्था कर दी है। जहाँ मुश्किल, वहीं आसान।'

"दादाजी, जाड़ा !" केदार मुखर्जी की पोती एक करची लिये सीढ़ी पर लकीर खींच रही थी। वह चीख उठी।

नलिनी सारे बदन में सरसों का तेल पोत रहा था। उसके बाद नाक से सरसों का तेल खींचकर बोला, "सब लाल हो जायेगा।"

"एँ ! फिर अँगरेज़ आयेंगे क्या ?" तारिणी ने ताना दिया।

"धत्त, अँगरेज़ तो अब सेकण्ड क्लास पावर हैं।....उस दिन मैदान की सभा तो देखी। बुलगानिन, क्रुश्चेव को देखने के लिए सारा कलकत्ता टूट पड़ा था। अँगरेज आते तो यों देखते ? अमरीकी आते तो देखते ?"

केदार मुखर्जी की काली भैया और नलिनी का कम्युनिज़्म—कोठोघाट की सबसे ज़ोरदार दो बातें हैं। ये दोनों बातें अवश्य दोनों के लिए व्यक्तिगत उपलब्धि हैं। पिछले नवम्बर में कलकत्ते के मैदान में 'दुनिया के सबसे बड़े जन-समावेश' ने निर्मल को भी विह्वल कर दिया था। उस जनसमुद्र में माइक डूब गया था। बुलगानिन ने क्या कहा, क्रुश्चेव ने क्या कहा, यह ज़्यादातर लोगों तक पहुँचा नहीं। लोग दूर-दूर से आये, भीड़ में बैठे, तालियाँ पीटीं, कभी 'रूस-भारत मैत्री जिन्दाबाद' के नारे लगाये, किसी ने जी-जान से सुनने की कोशिश की, किसी ने कुछ सुना भी। उसके बाद बहुतेरे पाँव-पयादे ही घर लौटे और निर्मल की भाँति उनमें से बहुतों के ही मन में दूसरे दिन अखबार में छपे 'दुनिया का वृहत्तम जनसमावेश' एक बहुत बड़ी पहेली होकर रह गया।

"कलकत्ते की जनता ने उस दिन सारे विश्व को दिखा दिया...." पानी में उतरकर नलिनी गमछे से बदन रगड़ने लगा।

दीपक चुप था। ऐसी राजनीतिक उत्तेजना वह पसन्द नहीं करता। एक दीर्घश्वास छोड़ते हुए उसने कहा, "सनक है, सनक। देखते नहीं, नरगिस कलकत्ता आयी तो ग्रेण्ड होटल के सामने लाठी-चार्ज हुआ। क्यों दादाजी ?"

केदार मुखर्जी का स्नान हो चुका था। पोती को कपड़ा पहनाते-पहनाते एकाएक रुककर बोले, "इस कलकत्ते ने बहुत कुछ देखा है। बचपन की बात है, लालबाजार के पास से आ रहा था। उस समय शहर के खास-खास स्थानों में फ़ुटपाथ पर नेटिवों के चलने की मनाही थी। एक गोरा आ रहा था। वह करीब आया और सट् से गाल पर छड़ी जमा दी। अँगरेज़ों के ज़माने में क्या दबदबा था! लाट साहब क्या आजकल-जैसा था? लाट की सवारी निकली। सड़क बिलकुल सूनी। और कोई गाड़ी-घोड़ा रास्ते पर नहीं चलेगा।"

"आप दादाजी बेहद पुरानपन्थी हैं। पुरानी बात को लाये बिना आप कुछ बोल नहीं सकते," दीपक अपने मन की बात बोल गया।

पोती की फ़्रॉक में बटन लगाते-लगाते केदार मुखर्जी ने कहा, "आज जो नया युग है, कल वह पुराना होगा। सब माँ का खेल है। कांग्रेस भी माँ का खेल है, कम्युनिस्ट भी माँ का खेल है। एक दिन ये सारे खेल खत्म हो जायेंगे, पर माँ जैसी की तैसी रहेगी।"

पोती की उँगली पकड़कर जब वह घाट से उठने लगे तो दीपक चिल्लाया, "बोगस, बोगस, सब बोगस!"

केदार मुखर्जी ठिठक गये। बोले, "सब कुछ बोगस, सब कुछ माया। सिर्फ़ वे एकमात्र ही इस माया से परे हैं, जिन्होंने इस माया की सृष्टि की है।"

उनके चले जाने के बाद भी दीपक गुज-गुज करता रहा, "इस समय तो भगवान्-भगवान् करेंगे ही। तीन काल बीता, एक पर अटका है। हम भगवान्-भगवान् करें तो नौकरी जुटेगी, सस्ते में मकान मिलेगा?"

"कोई यदि भगवान् पर विश्वास करके सचमुच ही शान्ति पाये तो यह तो अच्छी बात है," निर्मल ने दबी ज़बान से कहा।

"लेनिन ने कहा है...." दीपक ने शुरू किया।

निर्मल असहिष्णु होकर बोला, "रिलीजन इज़ द ओपियम ऑव द पिपुल। मगर उससे हुआ क्या? भगवान् का विश्वास उठ गया? और, आप तो जनाब ज़रूरत होगी तो लेनिन की दुहाई देंगे, ज़रूरत होगी तो रामकृष्ण की।"

तभी तांती बाबू आ गये। तांती बाबू के घाट पर आते ही समझ में आयेगा कि ज्वार का समय हो गया। अपनी सफ़ेद मूँछों के अन्दर से हँसते हुए तांती बाबू ने कहा, "आज तो घाट पर बड़ी सरगरमी है।....मुझे तो साहब लेनिन से भी वास्ता नहीं, रामकृष्ण से भी नहीं। दो लड़कों को आदमी बनाया। उनको

नौकरी यहाँ से बाहर है। शौक़ से बिटिया का व्याह कराया, दामाद गुज़र गया। उस लड़की के एक बच्चा है। इसी में उलझ पड़ा हूँ। सोचा था, अन्तिम दिनों तीरथ करूँगा। सो, अब इसी तीरथ में हूँ। आँखों से सूझता नहीं है, फिर भी करघा चलाता हूँ।"

पानी बढ़ने लगा। घाट पर लहरें पछाड़ खाने लगीं। ज्वार के साथ-साथ हवा का ज़ोर बढ़ा। निर्मल, नलिनी, तारिणी पानी में उतर गये। कुछ चीलें नीचे उतरकर मछली की ताक में मड़राने लगीं। बीच-बीच में आँखें खोलते ही नज़र आने लगीं—कोठीघाट की गायब होती हुई सीढ़ियाँ, बरगद की चोटी, निर्मल के ताऊजी का खरीदा हुआ नया मकान, कारखाने की चिमनी, मन्दिर के शिखर और जाड़े का मेघहीन आकाश। तैरते-तैरते निर्मल सोचने लगा, काश, इतनी आसानी से, यों अचानक वह ऐसी दुनिया में पहुँच पाता, जो दुनिया ताऊजी और बाप—दोनों की दुनिया से परे है, जहाँ ताऊजी की दुनिया का वागाडम्बर नहीं और उसके बाप की दुनिया की दीनता और रूढ़ता भी नहीं!



लक्ष्मीपुर

एक

देश के स्वतन्त्र होने पर बंगाल के जिन तरुणों ने 'यह आज़ादी झूठी है' के नारे लगाते हुए रास्ते में जुलूस निकाला था, सुव्रत उनमें से अन्यतम है। उस समय जोश में बहुतों के साथ उसने पुलिस की मार खायी, दो बार कैद की सज़ा भी भुगती, पर जोश की उस चांदनी में रास्ते के बग़ल का कूड़ा भी मनोहर लगा था। रास्ते पर आकर उस जुलूस निकालने में बहुतों की नाईं सुव्रत के मन में भी रूस और चीन की क्रान्ति एकाकार हो गयी थी। अपने पिता को वह 'ब्लडी केरियरिस्ट', निर्मल को 'कॉवर्ड'। आस-पास के जो लोग आनेवाली क्रान्ति की पगध्वनि सुनने के लिए अपने कान नहीं खड़े किये हैं, ऐसे लोग उसे दूसरी दुनिया के बाशिन्दे-से लगते! पृथ्वी दो हिस्सों में बँट गयी है। एक हिस्से में सुव्रत और उसके मतावलम्बी हैं और दूसरे हिस्से में वे लोग हैं, जो अभी ठीक-ठीक आदमी नहीं है, जिन्हें आदमी बनाना होगा।

लेकिन पिछले दस-बारह वर्षों में भारतवर्ष का साम्यवादी आन्दोलन चूँकि बहुत चढ़ाव-उतार में से गुज़रा, इसलिए इस आन्दोलन के कार्यकर्ताओं में भी अनिवार्य कारणों से तरह-तरह के परिवर्तन आये हैं। उनमें जो अच्छे छात्र हैं, उनमें से कोई-कोई इस विश्वास से कि कर्म-कुशलता ही आखिरकार साम्यवाद लाने में मदद कर रही है, व्यावसायिक ऑफिसों में घुसकर उत्तरोत्तर समृद्धि की ओर बढ़ रहे हैं। कोई-कोई उदास, मायूस हुए हैं, चूसे हुए नीबू, जवानी में ही बूढ़े; ज़ोर-ज़बरदस्ती हँसी को अभी भी चेहरे के एक कोने में जिलाये रखते हैं। और कुछ कार्यकर्ता महज़ टिके हुए हैं, ऐसी बात नहीं। उनके जीवन की धार अभी भी बरकरार है। ऐसा नहीं कि राजनीतिक चढ़ाव-उतार, भीतर के द्वन्द्व ने उनपर चोट न की हो, उनमें से बहुतों को तो बुरी तरह ज़ख्मी किया है इसने, परन्तु उन्होंने मानो राजनीतिक शाठ्य को मान लिया है, ऐसे, जैसे दार्शनिकों ने मनुष्य के जीवन की व्याख्या में गरल और अमृत के अविभाज्य मिलन को ही *ग्रहण किया है।*

ठसाठस भीड़ से भरी बस के एक कोने में बैठा सुव्रत अपने नये अड्डे के बारे में सोचने लगा। बाहर लाल माटी, रूखे राढ़ के धानकटे खेत। अपने आपसे उसने पूछा, "क्या मैं वास्तव में किसी से ईर्ष्या करता हूँ—अपने भाई नाण्टू या

निर्मल से ? नाण्टू को उसके पिता एक जरनैल वैरिस्टर बनाना चाहते हैं, तो उससे उसे क्षोभ क्यों ? और निर्मल की भाँति राजनीति से भाग खड़े होने की बात भी वह नहीं समझ पाता। आदमी का जो पारिवारिक जीवन है, उसमें गोलमाल नहीं है क्या ? तो फिर पार्टी-संगठन में भी गोलमाल क्यों न हो ? और, इसलिए क्या पार्टी को छोड़ देना चाहिए ?"

बाँकुड़ा ज़िले के सोनामुखी शहर से आते हुए शुरू से आखीर तक रास्ते के दोनों किनारे सखुए का जंगल उनके बस पर एक लम्बे छाते की तरह छाँह करता आ रहा था। उधर देखते हुए सुव्रत ने सिर हिलाया, 'उँहूँ, मैं नाण्टू नहीं हो सकता। निर्मल होना भी मेरे लिए असम्भव है।' पिछले दस-बारह वर्षों से पूरे यौवन की उष्णता देकर उसने पार्टी-संगठन को जकड़कर पकड़ा है। शायद इसका बहुत कुछ 'मेक बि लीव' हो जैसा कि निर्मल कहता है, बहुत कुछ ही शायद झूठ से समझौता हो, परन्तु पिता की राय के अनुसार निखाद वैरिस्टर होकर, बेहद नाम-धाम करके, कलकत्ते में और एक बहुत बड़ा मकान बनाकर, क्रिकेट एसोसिएशन का प्रेसिडेण्ट होकर प्राणत्याग करने से ही क्या सत्य की राह पर चलना माना जायेगा ? या निर्मल जैसे बड़ी-सी नौकरी की ताक में है, भला उसके लिए क्या यह सम्भव है ? निर्मल का साहित्य का अध्यापन या जीवन-चर्या में आत्मसचेतनता को बरक़रार रखने की समस्या तो व्यक्ति की समस्या है। सभी मामलों में प्रयत्नपूर्वक दर्शक की निरपेक्षता को बनाये रहना तो सम्भव नहीं। निर्मल जिस निरपेक्ष मोहहीन दृष्टि की बात कहता है, सच पूछो उसका तो कोई अर्थ ही नहीं। नः। पार्टी, पार्टी, पार्टी। मरे, जिये—पार्टी। अकेले एक आदमी की चेष्टा का क्या मूल्य है ?

सुव्रत ने बीड़ी सुलगायी। बग़ल ही में पड़ी पके कोंहड़े की टोकरी से एक बू-सी आ रही थी। जी मिचला गया। किसी नंगी पीठ के दबाव से उसका दुबला शरीर चिपटा हो गया। मोटे फ्रेम का चश्मा धुंधला लगने लगा। चश्मे को पोंछकर उसने ठीक से ताका। बग़ल के नंगे बदनवाले आदमी के सर में झपड़े बाल। भरमुंह बीड़ी का धुआँ उगलते हुए उसने आराम से सुव्रत के बदन से अपने को और अच्छी तरह टिका लिया। सामने की लम्बी सीट पर कुछ सन्ताल औरतें। बालों में सेमल के फूल। सामने की ओर झुककर कुछ सुन रही थीं। सामने की सीट पर एक युवक।·· सुव्रत ने बड़े अचरज से देखा, नंगे बदन और अधमैली धोतियों की भीड़ में उस छोकरे के पहनावे में चोंगा पैण्ट और टेरेलिन का बुशशर्ट। इतने में एक छिले हुए-से गले की आवाज़ आयी, 'गुड लेन्थ बॉल, गुड लेन्थ बॉल, मारवेलस ड्राइव।' चौंककर सुव्रत ने ट्रान्जिस्टर-वाले की ओर ताका। उसके बाद रूढ़ गले से कहा, "मिहरबानी करके अपने

गुड लेन्थ बॉल को रोकिए तो जरा। यहाँ उसे कोई नहीं समझेगा। आप भी समझते हैं या नहीं, भगवान् जानें।"

सुव्रत के तीखे गले से उस छोकरे ने जरा डरते हुए ताका। उसके श्रोताओं में वे सन्ताल औरतें भी अवाक्-सी देखने लगीं। यह देखकर सुव्रत ने आहिस्ते से कहा, "चलाइए, चलाइए। देश-भर में ही तो छा गया है। आपने ही कौन-सा कसूर किया?"

"हमने भी सर इडेन गार्डेन में खेल देखा है।"

"वाह! पढ़ाई कहाँ तक हुई है?"

अब उस छोकरे का आत्मविश्वास लौट आया। वास्तव में उसमें आत्मविश्वास न होने का कोई कारण भी नहीं। वह गाँव के सबसे सम्पन्न घर का है। बोला, "आजकल पढ़ने-सुनने से क्या होता है सर। सोनामुखी हाईस्कूल में हम लोगों के साथ पढ़ता था वारीन बनर्जी। हर विषय में फर्स्ट। आजकल वह फेफे कर रहा है।"

"क्या करते हैं?"

"तेली हैं साहब, तेल बेचते हैं।" बगल में जो बैठा था, वह फस से बोल उठा। फिर जब वह जरा हटकर बैठा, तो सुव्रत ने अच्छी तरह से उसे देखा। घुटने-भर धूल, बावरी बाल। सख्त और काला कुचकुच चेहरा।

"पिता वगैरह देखते हैं," छोकरे ने उबकर जवाब दिया।

"वगैरह माने पिता-ताऊ आदि को कह रहा है। ये तो पैण्ट पहनेंगे, रेडियो बजायेंगे, घानी देखने की फ़ुरसत कहाँ!" बोलते ही उस आदमी ने फिर मरमुँह धुआँ छोड़ा।

"मदन, घर में और कै दिन दान-पानी है तेरा?"

"मदन बावरी के यहाँ कितने दिन दाना-पानी रहना है? तुम भी एक बार कलकत्ता घूमकर शहरी हो गये क्या?"

धूल-भरी बावरी घुमाकर मदन ने ताका। शायद ताड़ी पी रखी थी। सुव्रत की ओर ताकते हुए फुसफुसाकर उसने कहा,नवीन के चेले हो क्या? कहाँ जा रहे हो?"

तीन-चार वर्षों से आँकड़ों के लिए कई जिलों में घूमने के बावजूद ऐसी बातों में झिझक मिटाने में सुव्रत को जरा देर लगती है। "लक्ष्मीपुर" उसने धीरे से कहा।

मदन ने कहा, "अरे, आप तो हमारे गाँव चल रहे हैं। मछली मारना है, तो कहिए, बढ़िया चारा जानता हूँ।"

नवीन ने भी उत्साहित होकर कहा कि मछली मारने का इन्तजाम वह भी

कर सकता है। और अगर शिकार में जाने का इरादा हो तो अपने चाचा के पास एक राइफ़ल और एक शाट गन है। गाँव से तीन मील की दूरी पर अमतल्ला की झील में पानी है। बतखें मिलेंगी।

हर बार की तरह लोगों को यह समझाने में कठिनाई होती थी कि उसका काम हक़ीक़त में है क्या। उसकी संस्था को सरकार से मदद जरूर मिलती है, पर उसे सरकारी प्रतिष्ठान हरगिज़ नहीं कहा जा सकता। कम्युनिटी डेवलपमेण्ट का काम करने के लिए नहीं जा रहा है, अख़बार का रिपोर्टर नहीं है, किसान-सभा का नेता नहीं है, और फिर मछली मारने या बतख के शिकार के लिए भी नहीं जा रहा है—फिर भी गाँव में जा रहा है। यह बात वह गाँव के लोगों को किसी भी तरह से नहीं समझा सका।

केवल गाँववाले ही क्यों, अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं के लिए भी उसका इस तरह गाँवों में जाना एक शौक़ है। उसके कॉलिज का गौतम उसे 'रिवीज़निस्ट' कहता है। यानी गाँवों के बारे में इस प्रकार जानकारी संग्रह करने में उसके बाप अबोधसेन को जैसी आपत्ति है, उसके राजनीतिक दोस्तों को भी वैसी ही आपत्ति है। सुव्रत ने पहले भी सोचकर देखा है, उनके जीवन का जो सिलसिला है, उसमें विलायत जाना बल्कि आसान है, परन्तु बजबज के किसी कारख़ाने में आना आश्चर्य।

मदन के धूल-भरे काले मुखड़े से उसकी दो पीली आँखों ने कुछ देर तक उसे ग़ौर किया। उसके बाद उसने कहा, "गवमेण्ट का आदमी तो है?"

"सो तो है," सुव्रत के कुछ कहने से पहले ही नवीन ने उत्साह दिखाया। उसका उत्साह यह नहीं कि सुव्रत सरकारी आदमी है या नहीं। चेहरे में, बात-चीत में एक पढ़ा-लिखा बाबू उसके गाँव जा रहा है। वह भी उन बाबुओं-जैसा होना चाहता है। उसके दो घानी हैं, तीनेक सौ बीघा ज़मीन की सम्पन्नता। गाँव-भर में लाल मोरम के आँके-बाँके रास्ते, गाँव के चारों ओर वृत्ताकार बहनेवाली शाली नदी के किनारे-किनारे सिंचाई के काम में लगे लुहार, बागदी, औरत-मर्दों का सूर्योदय से चक्का डूबने तक कलरव—यह सब उसे पकड़कर नहीं रख पाता। गाँव के और भी बहुतेरे युवकों को उसी की तरह ट्राम की हैण्डिल पकड़कर झूलनेवाले, फ़्लैट में रहनेवाले, सिनेमा देखनेवाले, अख़बारों में व्यस्त कलकत्ते के बाबू बनने का शौक़ है। अब बाऊलों का गीत नहीं, सन्ताली नाच नहीं, प्रवृत्ति नहीं, गाँव के काम-काज नहीं—बाबुओं के रहन-सहन के चित्रकल्प ने ही नवीन-जैसों को पागल किया है।

लाल धूल से ताँबे-से हुए एक घने सिहोड़ के पेड़ के सामने बस रुकी। जो लोग उतरे, वे हनहनाते हुए सरपत की झाड़ियों के भीतर की पगडण्डी में खो

गये। हठात् चारों ओर अजीब खामोशी छा गयी। सुव्रत ने जेब से मानचित्र निकाला। सामने जो रास्ता था, वह टेस्ट रिलीफ़ का रास्ता है, मानचित्र की भाषा में टी. आर. रोड। डेढ़ेक मील पर उसका गन्तव्य है—लक्ष्मीपुर। वहाँ के ख़ुशहाल खेतिहर रतन मुखर्जी के यहाँ ठहरने की व्यवस्था थी। उसने ध्यान नही दिया, उसके पीछे एक आदमी अब तक उसकी ओर ग़ौर से देख रहा था। मानचित्र की ओर देखकर वह आदमी फटे बाँस-जैसे गले से हँस पड़ा। बोला, "अब तो बाबू पानी में उतरना पड़ेगा। तैरना जानते हो ?"

"तैरना !" सुव्रत आसमान से गिर पड़ा। कल रात गाड़ी में नींद नही आयी, सुबह का नित्यकर्म नही हुआ। बस की भीड़ में चिपटा होकर बैठने में कमर दुख गयी। अब रतन मुखर्जी के यहाँ बिस्तर पर लम्बा हो जाने को जी चाह रहा था। सुव्रत ने मानचित्र को फिर फैलाया। टी. आर. रोड साफ़ लिखा था।

मदन ने ज़ोर से कहा, "मेरी बात का विसवास न हो तो रात शाली के इस पार बिताओ।" उसके बाद प्रायः छीनकर ही उसने सुव्रत के बग़ल से बिस्तर खींच लिया। "मैं पार किये देता हूँ। तैरना न आता हो, तो घड़ा जुगाड़ कर दूँ ? घड़े के सहारे औरतों की तरह क्यों नही पार करते ?"

और कोई मील-भर पर शाली नदी गाँव को घेरे हुए है। पूरे साल चौर और पत्थर। बरसात के शुरू में भी पाँव का पंजा नहीं डूबता। वर्षा के अन्त में अब नदी का चेहरा बदल गया है। प्रायः तीस-चालीस हाथ चौड़ा लाल पानी घुमड़ रहा है, पछड़ रहा है। माटी के तीन बड़े-बड़े घड़े से कई बहुओं और रोते बच्चों को बावरी लोग ठेल-ठेलकर पार कर रहे थे। नदी के किनारे खड़ा ट्रान्जिस्टरवाला वह आदमी अपना नीला चोंगा पैंट बदल रहा था, बग़ल में साइकिल।

"तुम्हारी साइकिल ?" सुव्रत ने आश्चर्य से पूछा।

"वे लोग पार कर देंगे, फ़िकर न कीजिए। गँवई गाँव की हालत देख रहे हैं न ! यहाँ कोई भला आदमी रह सकता है !"

"तुम्हारे बाप-दादे रह सकते थे। तुम लोग तो नये भलेमानुस हो; तुम लोगों से नही बनेगा," तभी मदन का कर्कश गला सुनाई पड़ा।

माथे पर सुव्रत का बिस्तर लिये मदन पार होने लगा। नवीन को साइ-किल को दो जने एक हाथ से उठाकर दूसरे हाथ से तैरते जा रहे थे। दो-तीन खेप घड़ा आर-पार हुआ। दूसरों की तरह धोती-कुरते को पगड़ी की तरह माथे में बाँधकर जाँघिया पहने सुव्रत पानी में उतरा। पानी जितना घुमड़ रहा था, उतना खतरनाक नहीं था। छाती-भर पानी में कुछ दूर जाते ही पाँव के

नीचे ज़मीन मिली। उस पार गंजी और धप्-धप् चुननदार सफ़ेद धोती पहने, पैरों में रबर की सफ़ेद चट्टी डाले एक लम्बा गोरा आदमी कुछ देर से सुव्रत की ओर देख रहा था। उसकी शक्ल स्थानीय लोगों से अलग थी। वह हुक्म तामील नहीं करता, हुक्म देता है—यह उसके स्थिर दृष्टि खड़े रहने से ही स्पष्ट हो जाता था।

गीले वदन उस किनारे पहुँचते ही एक बिलकुल नया तौलिया उसकी ओर बढ़ाते हुए रतन मुखर्जी ने कहा, "लीजिए, वदन पोंछ लीजिए। इसे पाप की सज़ा समझिए! आप लोगों को इन सब जगहों में आना चाहिए भला! आपको तो मैंने सोनामुखी के डाकबँगले में ठहरने को कहा था। इस गाँव की सारी खबरें तो मेरी मुट्ठी में हैं।"

कपड़ा पहनकर सुव्रत ने गाँव के साफ़-सुथरे लाल रास्ते पर क़दम रखा। उसकी मुग्ध दृष्टि को देखकर रतन मुखर्जी ने कहा, "खासी तसवीर-जैसी है, न? वाहर से जो भी आते हैं, वही कहते हैं। कम्युनिटी डेवलपमेण्ट का रास्ता है। कई साल से मोरम नहीं पड़ा, पानी से घुली जा रही है। और चार-पाँच साल वाद आने पर शायद यह देखें कि गाँव के लोग जैसे मेड़ों पर चलते थे, वैसे ही चल रहे हैं।"

उसके वाद थोड़ी दूर चलते-चलते वोले, "लेकिन गाँव की तरक़्क़ी बहुत हुई है। रेडियो आया है। घर-घर में साइकिल है। गाँव के नवजवानों की कलाई पर घड़ी है।....वावरियों का कुछ नहीं हुआ।"

"क्यों नहीं हुआ?"

"आलसी हैं, आलसी।" भले आदमी ने दीर्घ निःश्वास फेंका।

सुव्रत अनमना-सा चल रहा था। ठोकर लगी। दोनों ओर राढ़ के धान की फ़सल कटे खेत तीसरे पहर की पीली धूप में और भी सूने, खाली-खाली लगे। लुहार और वावरियों के बारे में यह शिकायत सुव्रत ने पहले भी सुनी थी, लेकिन उसकी अर्थनीति के ज्ञान ने इसे स्वीकारा नहीं था। लगभग सुनसान में खड़ी एक झाड़ी से सुव्रत ने एक पत्ता तोड़ लिया। उस पत्ते को मुट्ठी में लेकर उसने एक अस्थिरता-सी महसूस की, जिसका तत्क्षण कोई समाधान नहीं था।

"क्या सोच रहे हैं?" रतन मुखर्जी ने उसके मुँह की ओर देखकर पूछा।

"नः, कुछ नहीं।" फिर दोनों चुपचाप चलने लगे। बंगाल की खेती-वारी में जवतक लाख-लाख वावरी-लुहार, समाज के अन्त्यज लोग तैयार मिलेंगे, तवतक बहुत कम लागत पर श्रम की बिक्री के इन्तज़ार में खेती का मतलब सोने का पत्थर-कटोरा है। यदि अन्त्यजों की विशाल पलटन लेकर एक बित्ता कोड़ी हुई ज़मीन में धान छींट देने से ही लाभ होता हो, तो रबी की फ़सल,

फ़र्टिलाइज़र, सिंचाई के लिए काहे की माथा-पच्ची ?

सुब्रत ने चश्मे को पोंछा। तीसरे पहर की जोत झुकती आ रही थी। गाँव के सामने। दो कुत्ते एक साथ भौंकने लगे। हवा में ताड़ी की बू। तीन-चार जनों ने आकर रतन मुखर्जी को और साथ ही साथ सुब्रत को भी नमस्कार किया। वे लोग गाँव के एकमात्र कोठाघर में पहुँचे। सामने के प्रांगण में धान की पिटाई चल रही थी। अबकी रतन मुखर्जी को सरकार से 'कृषक-पण्डित' की उपाधि मिली है। फी बीघा विश्वास न करने योग्य अट्ठारह मन के हिसाब से धान उपजाया है। धान के अँटिए सुब्रत के सर के पास से निकलकर बगल में गिरे। साथ ही साथ उन अँटियों की गिनने की एक सुरीली आवाज गूँजी। साँझ की रोशनी बागदी-लुहार औरत-मर्दों के चेहरे पर पड़ रही थी।

''आप फिक्र न करिए, सेनिटरी प्रिवी का प्रबन्ध है।'' रतन बाबू की बात से सुब्रत चौंक उठा। चूना पुते एक दुतल्ले मकान के बगल से जाते-जाते बोले, ''कुल मिलाकर फ़ोर्टी थाउज़ेण्ड लग गया ! जो दाम हो गया है बिल्डिंग मिटीरियल का ! ब्राह्मण होकर जब खेती करने का निश्चय किया, तो सगे-सम्बन्धी लोग शक्ल तक नहीं देखने आते थे। अब भगा पायें तो जी जायें। ....वहाँ पानी का घड़ा है। बिस्तर बिछा हुआ है। बिस्तर लाने की कोई जरूरत नहीं थी।''

सुब्रत चौकी पर चुपचाप बैठा रहा। बाहर धान के अँटियों की गिनती की गूँज को छापकर बतखों की आवाज। खिड़की के पास ही पोखरा। वह अब भी सन् तीस के गान्धीवादी युवकों की ही राह पर चल रहा है, उसके कॉलेज का सहकर्मी गौतम कहा करता है। सुब्रत ने फिर एक बीड़ी सुलगायी। पिछले दस-बारह वर्षों से दरअसल उसने एक ही नौकरी की है, वह है विप्लव की नौकरी। और वह नौकरी करते-करते विप्लव जाने कहाँ खिसक गया। पिछले कई साल राजभवन के सामने एक के बाद दूसरे जुलूस का वह भी एक अन्यतम अगुआ था। वही गला फुलाकर क्रान्ति का जय-गान, वही एक ही ढंग से नाक खोदते-खोदते रिपोर्टरों की पुलिस अफसरों से बातचीत, और, कुछ देर बाद कोई राजनीतिक नेता किसी मन्त्री से बातचीत करके आयेंगे और गरम-गरम भाषण करेंगे कि उनका गणतान्त्रिक आन्दोलन किस प्रकार से सफल हुआ। इस बीच एकाध बार पुलिस का लाठी-चार्ज। और, फुटपाथ के ठीक जिस स्थान पर कल कोई छात्र लहू-लुहान होकर अस्पताल गया, आज उसी स्थान पर पाँव बढ़ाकर उदासीन पथचारी जूता-पॉलिश करा रहा है। इस क्रान्ति की शुरुआत शायद सन् ४७ का पन्द्रह अगस्त है, परन्तु इसका शायद कोई अन्त

नहीं। विप्लव का यह कदोर गन्दा पानी शहर के जीवन को साल में एक बार-दो बार और कदोर कर देगा। मगर डुबाकर कभी भी स्नान-स्निग्ध नहीं करेगा। क्रान्ति के इस अडिग पींजरे से सुव्रत निकल आना चाहता है, बल्कि इसके लिए वह गान्धीवादी होने को भी राज़ी है। शायद अन्त तक वह इतने चुपचाप, इतने शान्ति, इतने अतीत से जुड़े जीवन से भागे। शायद आसनसोल की कोयला की खानों या नयी शिल्पनगरी दुर्गापुर के लोहे के कारखाने के मजदूरों में अपनी क्रान्ति के कर्मफल को वह खोज ले। भारतवर्ष की जो शक्ल खड़ी हो रही है, उससे शायद यह भी कि अन्य अनगिनत राजनीतिक कार्यकर्ताओं की तरह इस समाजवादी क्रान्ति के माया-हिरन के पीछे तमाम जिन्दगी ही दौड़ना उनके पड़े। लेकिन यहीं वह निर्मल को कभी समझ नहीं पाता। दौड़ना उन्हें पड़ेगा ही। उनके समय की यही सबसे बड़ी बात है।

उस रात बिना खाये ही सुव्रत सो गया। बस से सोनामुखी से मछली मँगवाकर रतन मुखर्जी ने जो मलाईकरी बनवायी, वह यों हो गयी। वे भले आदमी सुव्रत के हाव-भाव को ख़ास समझ नहीं सके। या तो इसे असम्भव उत्साह है, या हठात् स्वयं को अपने को समेट लेने का एक मनोभाव—यह उन्होंने बस-स्टैण्ड से आते-आते समझ लिया था। गरदन पकड़कर कई बार झटक भी दिया। लेकिन सुव्रत बेहोश सोता रहा। बग़ल से ही टिन के एक छप्पर पर किसी पेड़ से घुप्प-धाप करके तमाम रात फल टपकता रहा। सुव्रत चौंक-चौंक उठा, फिर सो गया। सुबह जब चेहरे पर धूप पड़ी, तो उसकी नींद टूटी।

दो

काफ़ी मूढ़ी और नारियल और क़लई किये हुए कटोरे में तीन बार चाय के साथ नाश्ता करने के बाद सुव्रतचन्द्र लेटे थे कि मुखर्जी ने कमरे में आते ही कहा, "चलिए-चलिए, निकलिए, इस समय सोइए मत।" सवेरे की शीत और ठण्डी हवा से भले आदमी का चेहरा और भी सतेज दीखा। वह आलू के खेत की निगरानी करके लौटे थे।

सुव्रत बाहर निकला। एक बहुत ही झपड़े सिहोड़ के पेड़ और कटहल के वन को पार कर खुली जगह में आकर सुव्रत खिल उठा। तार से घिरे कोई दो कट्ठे जितनी जगह में कई तगड़े 'रोड आइलैण्ड' और 'लेग हार्न' घूम रहे थे।

"यह एक चेष्टा है साहब। देखूं, कहाँ तक क्या होता है," मुखर्जी बोले।

मुग्ध दृष्टि से उधर देखते हुए सुव्रत ने कहा, "आप कैसे महत्त्व का काम कर रहे हैं, यह गँवई गाँव में रहकर नहीं समझ पायेंगे। शहर के लोग चीख रहे हैं, भाषण दे रहे हैं, बहुत हुआ तो प्रदर्शन करेंगे। मगर अमरीकी गेहूँ से तो देश को खड़ा नहीं किया जा सकता।"

रतन मुखर्जी सलज्ज हँसी हँसे।

"हमारी फ़ेमिली, जानते हैं, बड़ी पुरानी है। हम लोग खेती करेंगे, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।" कपड़े की गाँठ से जानें क्या सो निकालते हुए वह बोले।

"यही तो खुशी की बात है। दफ्तर की नौकरी या हम लोगों-जैसी मास्टरी का अनप्रोडक्टिव लेबर छोड़कर आप देश के प्रोडक्टिव फ़ोर्स को मजबूत कर रहे हैं।"

सुव्रत की बातें उनके कानों पैठ रही थी या नहीं, समझ में नहीं आया। वह अबतक गाँठ से निकाले एक पीले-पीले-से बदरंग मुड़े कागज़ को जतन से सीधा करने की कोशिश कर रहे थे। उनकी आँखों में मानो पितृस्नेह हो। मुड़े कागज के कोनों को धीरे-धीरे सीधा करते हुए बोले, "इन सब चीजों को इस घोर गँवई गाँव में कौन समझेगा, कहिए।....यहाँ देखिए, ग्यारह सौ बावन बंगाब्द श्री उपेन्द्रदेव शर्मनः, प्रायः दो सौ साल पहले की बात।"

बैहार के उस ओर एक खिले सेमल पर तोतों का एक झुण्ड बैठ गया। उसके बाद ही कतार से खड़े सखुए। सखुए के वन के पीछे सुबह के मामूली कुहरे को फाड़कर जाड़े के नये सूरज ने इतनी देर के बाद माथा उठाया।

"चलिए, ज़रा वहाँ से हो आयें, जहाँ सिंचाई का काम हो रहा है," उधर ताककर सुव्रत ने कहा।

उसकी बात मुखर्जी के कानों नहीं गयी। बोले, "तो देखिए, कैसी हालत में हैं हम। यहाँ आप कहाँ सोसाइटी पायेंगे, मन की खुराक पायेंगे। रहने को तो यहाँ बस बागदी और लुहार हैं। ताड़ी पिला दीजिए, आप के पैर पड़ेंगे, और पैसे की जरूरत पड़ी तो आप ही के यहाँ सेंध मारेंगे।"

एकाएक सुव्रत का पाँव मानो गोबर में पड़ गया। आँकड़े जुटाने के काम से पिछले कई साल से वह जिन कुछ गाँवों में गया, हर जगह एक ही बात नजर आयी। जो लोग नया-नया खेती करने की सोच रहे हैं, फ़सल बढ़ा रहे हैं, मिजाज के नाते वे अब गाँव के नहीं रह गये। इस हिसाब से दिनाजपुर में तम्बाकू का एक मुसलमान किसान उसे अच्छा लगा था। बेशक उस आदमी पर उस समय खून के तीन मामले झूल रहे थे, पर उस खुशहाल किसान का

तम्बाखू का खेत ही सरवस था। वह अपने लड़के को किसी बड़ी नौकरी में नहीं लगाना चाहता था, जीवन के अन्तिम दिनों शहर में मकान नहीं बनायेगा। वह जीवन-भर अपने तम्बाखू के खेत को उन्नत करके उस खेत में ही आखिरी साँस लेना चाहता था, फ़ी बीघा अट्ठारह मन धान उपजानेवाले नायक की ओर ताकते हुए सुव्रत ने एक छोटा-सा निःश्वास छोड़ा।

"नहर में पानी आया और उसी से कूद-कूदकर फ़सल बढ़ी। आप कल कह रहे थे न? सब भाग्य है साहब। लड़के को इंजीनियरिंग में दिया है। यहाँ रहकर वह क्या करेगा, कहिए।"

काग़ज़ को सुव्रत की ओर बढ़ाते हुए फिर कहा, "इसे ज़रा देखिएगा नहीं?"

"क्या देखूँ?" अब एक दबी असहिष्णुता फट पड़ी, "आपके पुरखों की अपेक्षा मेरे लिए आप कहीं ज़्यादा काम के आदमी हैं। उनके काफ़ी जगह-ज़मीन थी। लेकिन उन्होंने क्या कभी आपकी तरह खड़े होकर खेती करायी थी? इस तरह उपज बढ़ायी थी? डेवढ़ी पर हाथी बँधा है या नहीं, यह सोच-सोचकर काफ़ी कुछ गँवाया है रतन बाबू।"

ओस भीगे राढ़ के नाढ़े-रूखे खेतों में चलते हुए सुव्रत ने स्फूर्ति महसूस की। हो सकता है, बंगाल के गाँवों में इस प्रकार से घूम-घूमकर ग्राम-जीवन की रिपोर्ट तैयार करते-करते वह अपने जीवन की भी कोई दिशा खोज पाये।

बग़ल में चलते-चलते रतन मुखर्जी सहसा ठिठक गये। "आपकी बात कुछ तो समझ रहा हूँ, कुछ नहीं समझ रहा। बस में नवीन नाम के जिस छोकरे को देखा, उसके बाप-चाचा भी ख़ुशहाल हैं। उन लोगों ने भी इस बार बीघा पीछे तेरह-चौदह मन धान उपजाया है।"

"तब तो एक किनारा मिला जनाब, अब हमें भिखमंगे की तरह अमरीका के आगे हाथ नहीं फैलाना होगा।"

रतन मुखर्जी ने मुँह को गम्भीर करके कहा, "तो क्या आप इसीलिए नवीन के बाप को और मुझे एक ही पंक्ति में खड़ा करेंगे?"

"एक ही पंक्ति में—लेकिन आपका स्थान उस पंक्ति में पहले होगा।"

"क्या वही मेरा एकमात्र परिचय है?" रतन मुखर्जी का गला काँप उठा।

"नवीन के बाप को मैं नहीं जानता। मगर इतना कह सकता हूँ कि आप मुझसे बहुत ज़्यादा काम के आदमी हैं। नवीन का बाप भी शायद वही है।"

"पर यह तो हुई काम की बात।" भले आदमी ने फिर भी कहा।

"इसके सिवाय और कौन-सी बात है? कौन-सी बात हो सकती है? यहाँ आलू नहीं होता था, आप लोगों ने आलू उपजाया; नया अनाज पैदा किया, धान

की उपज बढ़ायी। आप ही कहिए, इससे अच्छा काम और क्या हो सकता है?"

रतन मुखर्जी अपने आलू के खेत के सामने रुक गये। दायीं ओर कोई सात-आठ बीघे में घने काले हरे पौधों की भीड़, उनके बीच-बीच में सरसों के पीले फूलों ने सर उठा रखा था। उधर निहारकर रतन मुखर्जी ने आँखें फेर ली। उसके बाद प्रायः आर्त स्वर में बोले, "पर, हमारा कलचर?"

"आप तब तक आलू का खेत देखिए। मैं सिंचाई देखकर लौटता हूँ।" पीछे की ओर न लौटकर सुव्रत लम्बी डग भरता हुआ चला गया।

तमाम दिन ही सुव्रत रतन मुखर्जी से बच-बचकर चलता है। सिंचाई का काम देखकर जरा बागदी पाड़ा से हो लिया। हर बार की तरह उसका यह काम गाँववालों में कौतूहल की चीज बन गया है। कोई-कोई उसे ब्लॉक का आदमी समझता है और कोई-कोई पुलिस का। दोपहर को भी वह खा-पीकर निकला था। शाम को भी तेली-टोले के लँगड़ा क्लब से भी घूमकर, नवीन के रेडियो मे प्रधान मन्त्री नेहरू की उदात्त वक्तृता सुनकर थका-माँदा लौटा। उस दिन रात को एक व्यर्थ शोर-गुल से सुव्रत की नींद टूट गयी। बाहर खलिहान में धुली चाँदनी में धान की ढेरी। उस ओर मुखर्जी साहब की परिच्छन्न मोरी। उसके बाद ठीक कारखाने से सटे कुली लाइन की तरह रतन बाबू के मजूरों के कुछ पुआल के जीर्ण चालिए। रतन बाबू के तनखादार लोग धान की खेती करते हैं, रबी उपजाते हैं, गुड़ बनाते हैं। कम्युनिटी डेवलपमेण्ट प्रोजेक्ट की लागत से 'लिटरेसी सेण्टर' के लिए एक अठचाला भी बना हुआ है। अवश्य वहाँ कुछ होता-हवाता नही। शोरगुल उसी ओर से आ रहा था।

सुव्रत उधर जा रहा था। रतन बाबू का जो पुराना आदमी बरामदे पर सोया हुआ था, वह उठकर आया, "उधर मत जाइए सरकार, पियक्कड़ों का झगड़ा है। अभी बन्द हो जायेगा। वही मदन है, दागी असामी।"

"मदन बावरी?"

"जी हाँ। शराबी, औरतबाज। हर मामले मे अड़ंगा डालेगा। अब तो गाँव पीछे नही पड़ा हुआ है। हर बात में आगे बढ रहा है। तेलियों के तीन लड़के कॉलेज पढ़ने गये। जी हाँ।"

रतन बाबू के इस आदमी का नाम है गोनू। यह भी बावरी है। बचपन में बाप-चाचा के साथ पालकी ढो चुका है, जमीन के लिए बाबुओं की ओर से थोड़ी-बहुत लठैती भी की है। अब रतन बाबू से दो बीघा जमीन मिल जाने से दूसरे खेत-मजूर बावरियों से यह अपने को अलग समझता है। कलकत्ते से आये इस नये बाबू से बात करने के लिए गोनू तमाम दिन उकुस-पुकुस कर रहा था।

"रतन बाबू का लड़का हुजूर, इंजीनियर बन रहा है," चाँदनी से धुले धान

के अँटिए बिखरे उस प्रांगण में खड़े-खड़े गोनू ने कहा।

"हाँ, सुना है।" ऊवा-सा सुव्रत बोला।

फिर शोरग़ुल सुनाई पड़ा। अबकी एक औरत की रुलाई भी।

"साला बीवी को पीट रहा है। चण्डाल है।" गोनू ने कहा।

मन में अशान्ति लिये सुव्रत सोने गया। चौकी पर करवटें बदल-बदलकर भी नींद नहीं आ रही थी। आखिर तन्द्रा में सुव्रत ने एक अजीब सपना देखा। वह अपने एमहर्स्ट स्ट्रीटवाले कॉलेज भवन की पान की पीक से रँगी दीवार को साफ़ देख रहा था। उसके सामने मास्टरों के घर के पास एक स्टूल पर मदन बैठा है, पहनावे में नीले रंग का चोंगा पैण्ट और घी रंग के टेरेलिन का बुशशर्ट। काली चुहाड़-सी दाढ़ी के कँटीले खुरदुरे गाल को मँजा करके उसने फीका बैंगनी बना लिया है। पीली आँखों की निगाह नहीं बदली, मगर बाबरी बदल गयी है। धूल-भरा झबरा बाल अब चौरंगी इलाक़े की आधुनिक पंजाबी महिलाओं के 'स्काई स्क्रैपर' केश-विन्यास-जैसा। और मदन मानो बेहद सजग है, कहीं शिखर टूट न पड़े! हाथ में गोल्डफ़्लेक का टिन। शायद कॉलेज में छुट्टी हुई है। सारा मकान खाँ-खाँ कर रहा है। सिर्फ़ मदन और सुव्रत हैं। और सुव्रत को बेहद जोरों की प्यास लगी है। एक ग्लास पानी के लिए परदा हटाकर वह स्तम्भित हो गया है। मदन के सिगरेट के टिन की ओर ताककर उसके मुँह से बात नहीं फूट रही है, गोकि मारे प्यास के छाती फटी जा रही है।

तीन

कातिक का महीना खत्म हो चला, मगर तमाम आसमान में मेघों का दमामा। मदन बावरी ने बरामदे पर बैठकर आकाश की ओर ताका और कहा, "मुझे राजा बनायेगा जी, राजा बनायेगा! मेरे घर की छप्पर-छौनी करायेगा, चापाकल का पानी देगा, लिखायेगा-पढ़ायेगा। लिख-पढ़कर हमलोग बाबू बनेंगे, साला।" भद्दी-सी गाली दी उसने। उसके बाद सामने थू-थू करके थूक फेंका!

फिर बुदबुदाया, "कौन-से कुँवर कन्हैया आकर हल पकड़ेंगे साहब? बाप-दादे के व्यवसाय को तो चाट गये! अब कहते क्या हैं कि हाबू को स्कूल में दाखिल कर दो। ये साले तेली टोले में जायें न। वहाँ तो कुकुरमुत्ते की तरह सब बाबू उग रहे हैं। अबे साले, तेरे बाप की पीठ तो ईख की खोंच से कटी

और तू साला कमीना पाउडर लगा रहा है, बगल में साबुन मल रहा है। थूः।" मदन ने फिर थूक फेंका।

एकाएक जाने क्या सोचकर खड़ा हो गया। गट-गट करके घर के अन्दर गया। अँधेरे में चटाई पर उसका नवजात बच्चा सो रहा था। एक ओर नाना आकार की पाँच-छह माटी की हण्डियाँ। मदन के पाँव लग जाने से दो-तीन उलट गयीं। मदन ने फिर गालियाँ दीं। "जीते जी दिया न अन्न न बस्तर, मर के माला करेगा दान सागर" गुस्से में और ताड़ी के नशे के झोंक में बाबुओं के यहाँ का सुना एक लटका ठीक-ठीक बोल गया। सामने रस्सी में क्या तो झूल रहा था, मदन की नाक में लगा। फूलकढ़ा आर्ट सिल्क का एक तेलचिकटा ब्लाऊज। सूराख-जैसी छोटी-सी खिड़की से जो एक टुकड़ा रोशनी आ रही थी, उस रोशनी में ब्लाऊज को घुमा-फिराकर देखते-देखते अचानक ही वह आग-बबूला हो उठा। और, अपनी सख्त उँगलियों से चर्र-चर्र करके उसने ब्लाऊज को फाड़ डाला। फिर बुदबुदा उठा, "साली, रोज छाती उठाये तेली टोला जाती है। क्यों, इस टोले में तुझे मरद नहीं जुटा! इतने जवानों के रहते! थूः।" लड़खड़ाते-लड़खड़ाते मदन अपने बच्चे पर ही अँधेरे में गिर रहा था। बच्चे के चेहरे पर ज़रा-ज़रा रोशनी आकर पड़ रही थी। काला, मोटा-सोटा गठन, कपाल पर बूँद-बूँद पसीना जमा था। गहरे व्यंग्य-भरी बड़ी पैनी निगाह से मदन बच्चे को देखता रहा। "नः, साला मेरा ही लड़का है। क्या करोगे मेरे सोना, हल चलाओगे कि पावडर लगाओगे, ऐं?" अपनी बात उसे अपने कानों को बेहद अच्छी लग गयी। अब उसका थमथम करता मिजाज हठात् स्फूर्ति से दमक उठा। मदन खूब जोरों से हँसता रहा, फिर अपने सोते बच्चे को बड़े जोर से ठोना लगाया, "क्यों बे साले, बता न?"

बच्चा आँ-आँ करके रो पड़ा। मदन कुछ अप्रतिभ हो गया। उसे खयाल हो आया, उसकी बीवी तेली-टोला गयी है, मूढ़ी बेचने। एकाएक खूब जोर से डपट उठा, "चुप्प!" अब उसके बच्चे की चीख से घर-आँगन में उथल-पुथल-सी हो गयी।" शायद अब मदन कसकर एक थप्पड़ लगा देता कि ऐन उसी समय दोनों हाथों में गोबर, नंगा बदन, खाकी हाफपैण्ट पहने आठ-दस साल की एक लड़की ने आकर गोबर के हाथों ही मदन को एक धक्का दिया। धक्के से नहीं, शायद गोबर की गन्ध से मदन को होश आया। "तू है रे बेटी, खैर। मदन ने राहत की साँस ली। कमरे से वह फिर बरामदे की ओर आने लगा। चौकठ पर आकर उसे खयाल आया, उसकी खुमारी बहुत कुछ खत्म हो आयी है। बच्चे की चीख और गोबर की गन्ध से नशा फटता जा रहा है। पीछे मुड़कर मदन फटाफट सीधे चावल की हांडी के पास पहुँचा।

के अँटिए बिखरे उस प्रांगण में खड़े-खड़े गोनू ने कहा।

"हाँ, सुना है।" ऊबा-सा सुव्रत बोला।

फिर शोरग़ुल सुनाई पड़ा। अबकी एक औरत की रुलाई भी।

"साला बीवी को पीट रहा है। चण्डाल है।" गोनू ने कहा।

मन में अशान्ति लिये सुव्रत सोने गया। चौकी पर करवटें बदल-बदलकर भी नींद नहीं आ रही थी। आखिर तन्द्रा में सुव्रत ने एक अजीब सपना देखा। वह अपने एम्हर्स्ट स्ट्रीटवाले कॉलेज भवन की पान की पीक से रँगी दीवार को साफ़ देख रहा था। उसके सामने मास्टरों के घर के पास एक स्टूल पर मदन बैठा है, पहनावे में नीले रंग का चोंगा पैण्ट और घी रंग के टेरेलिन का बुशशर्ट। काली बुहाड़-सी दाढ़ी के कँटीले खुरदुरे गाल को मँजा करके उसने फीका बैंगनी बना लिया है। पीली आँखों की निगाह नहीं बदली, मगर बाबरी बदल गयी है। धूल-भरा झबरा बाल अब चौरंगी इलाक़े की आधुनिक पंजाबी महिलाओं के 'स्काई स्क्रैपर' केश-विन्यास-जैसा। और मदन मानो बेहद सजग है, कहीं शिखर टूट न पड़े! हाथ में गोल्डफ़्लेक का टिन। शायद कॉलेज में छुट्टी हुई है। सारा मकान खाँ-खाँ कर रहा है। सिर्फ़ मदन और सुव्रत हैं। और सुव्रत को बेहद ज़ोरों की प्यास लगी है। एक ग्लास पानी के लिए परदा हटाकर वह स्तम्भित हो गया है। मदन के सिगरेट के टिन की ओर ताककर उसके मुँह से बात नहीं फूट रही है, गोकि मारे प्यास के छाती फटी जा रही है।

तीन

कातिक का महीना खत्म हो चला, मगर तमाम आसमान में मेघों का दमामा। मदन बावरी ने बरामदे पर बैठकर आकाश की ओर ताका और कहा, "मुझे राजा बनायेगा जी, राजा बनायेगा! मेरे घर की छप्पर-छौनी करायेगा, चापाकल का पानी देगा, लिखायेगा-पढ़ायेगा। लिख-पढ़कर हमलोग बाबू बनेंगे, साला।" भद्दी-सी गाली दी उसने। उसके बाद सामने थू-थू करके थूक फेंका!

फिर बुदबुदाया, "कौन-से कुँवर कन्हैया आकर हल पकड़ेंगे साहब? बाप-दादे के व्यवसाय को तो चाट गये! अब कहते क्या हैं कि हाबू को स्कूल में दाखिल कर दो। ये साले तेली टोले में जायें न। वहाँ तो कुकुरमुत्ते की तरह सब बाबू उग रहे हैं। अबे साले, तेरे बाप की पीठ तो ईख की खोंच से कटी

कह-सुन दो।" गेंड़ा के दुबले हाथ-पाँव। नीली लुंगी पर कोरी नयी गंजी के नीचे छोटे-से शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग गिड़गिड़ाते हैं।

"बीड़ी दे," मदन ने हाथ बढ़ाया।

"गाँठ से एक गड्डी बीड़ी और दियासलाई निकालकर गेंड़ा ने मदन के सामने रखी। पान के सिवाय वह खुद किसी बात में आसक्त नहीं। विशेष करके खजूर के रस-जैसी स्वादिष्ट चीज़ से भी उसे अरुचि है। यह इस बात से मदन बीच-बीच में खूब खीजता है। आज भी उसके भक्त की तरह बीड़ी-दियासलाई रख देने से मदन खिजला उठा, "साला, तुमसे कुछ नहीं होने का। बाप-दादा ताड़ी पीकर पला। और तू साला ताड़ी नहीं पियेगा, बीड़ी नहीं पियेगा। मेरा हाबू जिस दिन खेत में उतरेगा, आधी गड्डी उड़ायेगा। तू मर्द नहीं, हिजड़ा है, हिजड़ा। तू साले हाथ से ताली बजा और घुँघरू पहनकर नाच।"

गेंड़ा की आँखें करुण दिखाई पड़ीं। उसे इस एक बात का बेहद मलाल है—शारीरिक दुर्बलता का। उनके बाप मैनेजर बावरी की ताक़त की शुहरत बग़ल के गाँव के जमींदार बाबू का प्यादा बना था। जमींदार बाबू उससे राय-सलाह किये बग़ैर कोई काम नहीं करते थे। इसीलिए गाँववालों में वह 'मैनेजर बावरी' के नाम से चालू था। ठीक जगह पर ठीक-ठीक लाठी चलाने के इनाम में गेंड़ा के बाप को तीन बीघा ज़मीन मिली थी। उस लम्बे-तगड़े ताक़तवर आदमी का बेटा गेंड़ा गाँव के और-और मखौलों की तरह एक मखौल था।

गेंड़ा चुप रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, "जनम पर क्या इनसान का हाथ है भैया?"

"हाथ नहीं है तो फिर जहाँ-तहाँ हाथ देने की क्या ज़रूरत?" उस नाटे आदमी का मज़ाक़ बनाने का उल्लास आया मदन को, "मर्द क्यों हुआ? घुँघरू पहनकर नाच और....।

"तो मैं चला मदन-दा," गेंड़ा उठ खड़ा हुआ।

"बैठ।" मदन ने बड़े ज़ोर से डाँट बतायी, "टगर आजकल साँझ को तेली-टोला जाती है। तुम लोगों के होते क्यों जाती है? बावरी का बेटा लौंडियों के पाँव छूकर खुशामद नहीं करता, समझा साले। झोंटा पकड़कर झटके से खींच लाता है। बनेगा तुमसे?"

"तुम नाराज़ नहीं होगे न? मैं श्यामापदो से कहूँ?"

"यह किसी साले के बूते की बात नहीं। अबे, तू साला दूसरे के ज़रिए मेरी बहन की इज़्ज़त लेगा?"

हक़ीक़त में मदन कुछ खतरनाक आदमी नहीं है। वह खुद ही जानता है

पैर से हँड़िया को हिलाया। अभी भी कुछ भार है। मन ही मन वह बोल उठा, "आज अब बाहर नहीं जाने का।"

नवीन के टोले में 'फोनोगराफ' में जो रवीन्द्र संगीत आजकल ख़ूब चल रहा है, नीचे उतरकर मदन उसी की एक कड़ी को अपने ढंग से गाने लगा—"पगला पवन, साला बदली के दिल, साला बदली के दिल," घर में वह लड़की अब तक मदन के बच्चे को थपथपा रही थी। वह खिटखिटा उठी, "चुप रहो।" मदन एकाएक चुप हो गया। जोत से आकाश झलमल कर रहा था। फुर-फुर हवा। मदन के अँगना के पास लापरवाही में निकल आये हरसिंगार के पेड़ के नीचे राख़ और गोबर की ढेरी में छींटे हुए फूलों की मँहक अभी भी खत्म नहीं हुई थी। उसके साथ खजूर के रस की गन्ध से हवा भारी हो रही थी। जाने कहाँ ढाक बज रहा था। दुर्गापूजा आ रही है क्या, या किसी खेत की नीलामी है? एक नुक्कड़ और चलाये क्या, मदन मन ही मन मनसूबा गाँठ रहा था कि इतने में गेंड़ा आ गया।

शायद गेंड़ा का कभी कोई नाम रहा हो। अब वह नाम सभी भूल गये हैं, जैसा कि बागदी-पाड़ा में लोग बहुतों के नाम भूल गये हैं। नाटा, घिसा हुआ-सा, दाँतों की दोनों पाँत में पान की चित्ती लगी—गेंड़ा सवेरे-सवेरे मदन को पटाने के लिए आया था।

गेंड़ा को देखते ही मदन खीजा, "साफ़ कहे दे रहा हूँ, तुम्हारा मामला नहीं बनने का। मुझे यह सब झमेला पसन्द नहीं। अरे, मर्द है तो सीधे उसी से कह न।"

गेंड़ा बरामदे में आ गया। बागदियों में उसकी हालत विश्वास न करने योग्य अच्छी है, इसलिए कि उसके चार बीघा ज़मीन है। दो साल से, नहर में पानी छोड़ने के बाद से, वह भी अपने खेत में आलू उपजा रहा है। डेवलपमेण्ट के बाबुओं से मिल-जुलकर अपने खेत में उसने खाद डाली है। मगर टगर से आँख मिलते ही उसको चक्कर आ जाता है।

मदन हठात् अपनी सुर्ख़-सी ख़ुमार-भरी आँखों गेंड़ा की ओर देखने लगा। "सिल्केट ब्लाऊज़ दे सकेगा तू, पहनने से ख़ुशबू आती है?"

गेंड़ा बुद्धू की तरह ताकने लगा। 'सिलकेट ब्लाऊज़' का जुगाड़ तो वह कर सकता है। सोनामुखी के व्यापारियों से उसका रब्त है। मगर ब्लाऊज़ से ख़ुशबू आती है, ऐसी बात उसने पहले सुनी नहीं। लेकिन हो भी सकता है। रातोंरात जब जंगल का सफ़ाया करके कारखाना खड़ा हो रहा है तो सब कुछ मुमकिन है।

"बीबी का जतन-पालन गेंड़ा ठीक ही कर सकेगा मदन-दा। तुम ज़रा

कह-सुन दो।" गेंड़ा के दुबले हाथ-पाँव। नीली लुंगी पर कोरी नयी गंजी के नीचे छोटे-से शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग गिड़गिड़ाते हैं।

"बीड़ी दे," मदन ने हाथ बढ़ाया।

"गांठ से एक गड्डी बीड़ी और दियासलाई निकालकर गेंड़ा ने मदन के सामने रखी। पान के सिवाय वह खुद किसी बात में आसक्त नहीं। विशेष करके खजूर के रस-जैसी स्वादिष्ट चीज से भी उसे अरुचि है। यह इस बात से मदन बीच-बीच में खूब खीजता है। आज भी उसके भक्त की तरह बीड़ी-दियासलाई रख देने से मदन खिजला उठा, "साला, तुझसे कुछ नहीं होने का। बाप-दादा ताड़ी पीकर पला। और तू साला ताड़ी नहीं पियेगा, बीड़ी नहीं पियेगा। मेरा हाथू जिस दिन खेत में उतरेगा, आधी गड्डी उड़ायेगा। तू मर्द नहीं, हिजड़ा है, हिजड़ा। तू साले हाथ से ताली बजा और घुंघरू पहनकर नाच।"

गेंड़ा की आँखें करुण दिखाई पड़ीं। उसे इस एक बात का बेहद मलाल है—शारीरिक दुर्बलता का। उसके बाप मैनेजर बावरी की ताकत की शुहरत बगल के गाँव के जमीदार बाबू का प्यादा बना था। जमीदार बाबू उससे राय-सलाह किये बग़ैर कोई काम नहीं करते थे। इसीलिए गाँववालों में वह 'मैनेजर बावरी' के नाम से चालू था। ठीक जगह पर ठीक-ठीक लाठी चलाने के इनाम में गेंड़ा के बाप को तीन बीघा जमीन मिली थी। उस लम्बे-तगड़े ताकतवर आदमी का बेटा गेंड़ा गाँव के और-और मखौलों की तरह एक मखौल था।

गेंड़ा चुप रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, "जनम पर क्या इनसान का हाथ है भैया?"

"हाथ नहीं है तो फिर जहाँ-तहाँ हाथ देने की क्या जरूरत?" उस नाटे आदमी का मज़ाक़ बनाने का उल्लास आया मदन को, "मर्द क्यों हुआ? घुंघरू पहनकर नाच और....।

"तो मैं चला मदन-दा," गेंड़ा उठ खड़ा हुआ।

"बैठ।" मदन ने बड़े जोर से डाँट बतायी, "टगर आजकल साँझ को तेली-टोला जाती है। तुम लोगों के होते क्यों जाती है? बावरी का बेटा लौंडियों के पाँव छूकर ख़ुशामद नहीं करता, समझा साले। झोंटा पकड़कर झटके से खींच लाता है। बनेगा तुझसे?"

"तुम नाराज़ नहीं होगे न? मैं श्यामापदो से कहूँ?"

"यह किसी साले के बूते की बात नहीं। अबे, तू साला दूसरे के ज़रिए मेरी बहन की इज्ज़त लेगा?"

हक़ीक़त में मदन कुछ खतरनाक आदमी नहीं है। वह ख़ुद ही जानता है

कि वह एक ढोंड़ा साँप (जिसके ज़हर नहीं होता) है। "आजकल सब बावरी ढोड़ा साँप हो गया है रे।" बीच-बीच में वह अफ़सोस जताता। लेकिन अभी एकाएक उखड़ जाने की वजह से गेंड़ा को उसका आँख-मुंह विकट लगा। लगा, शायद दो-चार लगा ही दे हाथ।

"मदन-दा, मारो मत, मारो मत। मैं मर जाऊँगा।" गेंड़ा अचानक फफक-कर रो उठा। रोते-रोते बोला, "ताड़ी से पतले दस्त आते हैं, इसलिए मैं ताड़ी नहीं पीता। बीड़ी से हँफनी होती है।"

"तो फिर व्याह क्या करेगा रे साला, व्याह करके फाँसी लगायेगा ?"

गेंड़ा के चले जाने के बाद भी मदन उत्तेजित रहा। असल में चार बीघा ज़मीन के कारण वह शायद गेंड़ा से ईर्ष्या करता है। मदन के बाप के भी ज़मीन नहीं थी, मदन के भी नहीं है। चार बीघा ज़मीन रही होती तो वह बाबुओं के स्कूल में जाता। गेंड़ा की तरह नया मकान बनवाता, पक्का गुहाल बनवाता। ज़मीन होती तो शायद बहन ऐसी बज्ज़ात नहीं होती। लेकिन व्याह के पहले लड़कियाँ थोड़ा-बहुत ऐसा करती हैं। इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं। मगर झमेले होते हैं, मारपीट, दंगा भी होता है। इस हिसाब से गेंड़ा अच्छा है। लेकिन जितनी भी बार गेंड़ा के दुबले हाथों की कलाई याद आती, उतनी ही बार टगर के बग़ल में गेंड़ा की कल्पना कर उसका मन बैठ जाता। उससे तो बेहतर है, काली के साथ ही घर बसाये टगर। चावल जब चार पैसे सेर था, उसने तब भी पेट बजाया, अब जब रुपया-रुपया है, तब भी पेट बजायेगा। मदन ने गेंड़ा की गड्डी से एक बीड़ी और सुलगायी। झिलमिलाती धूप में फिर गुड़-गुड़ करके बादल गरजने लगा। आसमान की ओर ताक-ताककर मदन बुदबुदाया, "खेत में खाद डालेगा, ढंग से खेती करायेगा। उससे अपना क्या है रे! अपने लिए तो वही पाँच चवन्नी।"

मदन की अब तक नज़र नहीं पड़ी थी। गोबर की ढेरी के पास हरसिंगार के नीचे कुछ देर से एक आदमी खड़ा था। रंग उसका बड़ा तेज़ था। ऐसा गोरा आदमी मदन ने शायद ही देखा हो। इसके सिवाय इस समय उसके टोले में ऐसे सज्जन का आविर्भाव एक घटना है। इन दिनों अधबँहियाँ बुशशर्टवाले जो सब सरकारी अपचर बाबू आते-जाते हैं, ये वैसे नहीं हैं। और-गाँव के स्कूल-मास्टरों-जैसा फ़िलहाल अभावी शक्ल भी इनकी नहीं। ज़मींदार बेशक नहीं हैं, सौम्य शान्त मुखड़ा, दाढ़ी रही होती, तो मिशन के पादरी-जैसा लगता। मदन मुश्किल में पड़ा। बाबुओं से वह डरता है। उसके जीवन में उसके आँगन में भले आदमी ने तीन बार धावा किया है, ठीक इसी तरह हरसिंगार के नीचे खड़े होकर हलका-हलका हँसा है। और तीनों ही बार उसके टोले की कोई न कोई तबाही हुई है।

पहला आदमी था पास के गाँव के जमींदार का नातेदार। मदन उस समय छोटा था। उसे शायद गाँव का मामूली आदमी बहुत अच्छा लगता था, उनपर वह कहानी लिखता था। उसके बाद पता चला, हज़रत इस टोले में औरत की टोह में आये थे। उनको लेकर एक दंगा-जैसा भी हुआ था, कई बागदियों को क़ैद की सज़ा हुई थी। चित्रलिखा-सा मदन हरसिंगार के नीचे खड़े आदमी की ओर ताकते हुए दूसरे आदमी की बात सोचने लगा। वह पधारे थे किसी मिशन की ओर से, उन लोगों के जीवन का बोझ हलका करने के लिए। एक निःशुल्क अस्पताल भी खोला गया था। उसके बाद वह आदमी जिस तरह भूत-जैसा आया था, उसी तरह भूत-जैसा ही हवा हो गया। बहुतों की नाईं वह भी मद्य-निवारण सभा का पण्डा बना था। सभा टूटने के बाद वह लोग नशे में और भी धुत हुए थे। उसके बाद किसान-सभा के लोग भी आये। अँगरेज़ीदाँ भले लोगों के लड़के। उन लोगों के साथ भात और सन के पत्ते खाकर मज़े में काफी दिन गुज़ार दिये। उसके बाद अवश्य बग़ल के गाँव में ज़मीन के लिए दंगा हुआ। गोली चली। शक्ति का बड़ा भाई मारा गया। उसकी बीबी आज भी रेलवे स्टेशन पर भीख माँगती है। अचानक मदन को लगा, ये शायद वोट बाबू हैं। लेकिन पिछले ही साल तो ये लोग आये थे। पूरे बागदी-पाड़ा में धूम-सी मच गयी थी। ताड़ी की गन्ध के मारे आखिर हम-जैसे नशाखोर का भी जी मिच-लाता था। मदन बग़ैर नया कुरता-कपड़ा पहनकर बस पर सवार हो किसी एक बाबू को वोट देने गया था। वह शायद मिनिस्टर भी बना है। तो? फिर यह सब उत्पात क्यों? बदन झाड़कर मदन उठा। "तुम कौन रसिया हो जी?"

वैसे ही हँसते-हँसते वह आदमी आगे बढ़ आया। उसकी हँसी देखकर मदन की अँतड़ी तक जल उठी। "हाबू कहाँ है?" उस आदमी ने आगे बढ़ते ही कहा।

गेरुआ कुरता देखकर मदन बुदबुदाया, "साला कौन कम्पनी है? मिशन या वोट?"

"हाबू कहाँ है?" अबकी उस आदमी ने साफ़-साफ़ पूछा।

"उससे तुम्हें क्या?"

"मुझे कुछ नहीं। तुम लोगों ने मिलकर ही ठीक किया कि गाँव में स्कूल होगा, लड़का दोगे। वैसा ही इन्तज़ाम किया गया। अब अगर लड़के न हों, तो स्कूल चलेगा कैसे?"

और चरवाही तुम कर दिया करोगे? चरवाही करके दो गण्डा पैसा लाता है। एक जून का खाना जुट जाता है। वह छीन लोगे?"

भले आदमी माटी के चौंतरे पर बैठ गये।

मदन खिखिया उठा, "अरे बाबा, आप लोगों का इरादा क्या है, यह तो कहिए।...अरे हाँ, आप तो डेवलपमेण्ट कम्पनी के बड़े अफसर हैं। तालडाँगा में भाखन दिया था। सोनामुखी में रहते हैं न? यहाँ कहाँ ठहरे हैं? बड़े गाँवे के यहाँ। हाँ, वहाँ मछली मिलेगी। हमारे गाँव में सोनामुखी की तरह लँग्चा आया है। दिया है आपको? नहीं दिया है? अरे!"

"लगता है, खुमारी में हो।"

"आपके बाप के पैसे से ताड़ी नहीं पी है बाबू।...आप लोग असल में क्या बाबू हैं? गाँव में एक इस्कूल खोला। वहाँ हमारे बच्चों को खदेड़-खदेड़कर ले गये—अँगरेजी सिखाइएगा। हमारे बच्चे आपकी तरह कुरता चढ़ाकर चरवाही करेंगे? क्यों, चुप क्यों हो गये? घर में एक चटाई है, लाकर डाल दूँ?"

भले आदमी जड़-से बैठे रहे। लग नहीं रहा था कि मदन की बात से नाराज हो रहे हैं। लेकिन कुछ विमूढ़-से हो रहे थे। तीन साल पहले जब वह इस गाँव में आये थे, ठीक यही बात सुनी थी। गाँव के जीवन की क्रान्ति कम्युनिटी डेवलपमेण्ट प्रोजेक्ट, गाँव-गाँव में नये जीवन की शुरुआत, अकेले सबसे अलग-अलग कपाल पीटनेवाले खेतिहर के बदले पूरा गाँव मिलकर सहयोगी अस्तित्व, सामूहिक दायित्व। सोनामुखी-जैसे छोटे-से शहर में बैठे-बैठे भी यह सब सुनने में अच्छा लगता है। सबसे अच्छा लगता है कलकत्ते के प्रत्येक मन्त्री की जबान से सुनने में या ऊँचे पदवाले कर्मचारी जब प्लान, चार्ट, मैप के सहारे इन्सट्रक्शन देते हैं। मगर बावरी टोले में आकर पेट के भीतर जाने कैसा खालीपन भर जाता है।

"शादी-वादी हुई है या वैरागी हैं?"

भले आदमी चुप रहे। मदन का लड़का स्कूल में नहीं पढ़ सकता, इसलिए कि वह चरवाही करता है और एक जून का खाना उसे मिलता है। और स्कूल वहीं टिकेगा, जहाँ एक शाम खाने की व्यवस्था है। नहीं तो लिखना-पढ़ना नहीं होगा, इसमें दुःख काहे का?

सोनामुखी के इस अफसर के मन की बात मदन ने मानो समझी। कुछ स्नेह भी हुआ। जो भी हो, बाबू है न, क्या इरादा है, भगवान् जानें। लेकिन जमींदार का प्यादा नहीं है, वोट के लिए भी नहीं आया है। पर, दूसरे ही क्षण मदन को सन्देह हुआ। बोला, "अच्छा बाबू, यह तो बताओ, आप लोग वोटवाले हैं?"

"नहीं भैया, हम वोट-वोटवाले नहीं हैं। क्यों, हमारे लोगों ने तुम लोगों को कुछ बताया नहीं?"

"टिकसवाले हो ?"

भले आदमी के चेहरे पर परेशानी-सी झलकी।

"तो आखिर आप लोगों का मतलब क्या है ? टिकस नहीं लोगे, वोट नहीं लोगे, तो फिर क्या लोगे ?" उसकी काँटे-जैसी कच्ची-पक्की दाढ़ी से भरे गाल में सहसा हँसी निखरी। "औरत की इच्छा है ? अरे बताओ न बाबू, सकुचाना क्या !" उसके बाद मदन ने आगन्तुक के प्रति सहानुभूति दिखायी, "उम्र होने पर दाढ़ी निकलती ही है, इसमें लाज की क्या बात ? देखकर लगता है, तुम्हारा औरत-भूखा मन है बाबू।"

वह आदमी उठ खड़ा हुआ। मदन ने कहा, "क्यों, उठ पड़े ? नाराज हो गये बाबू ? क्या करना, हम ऐसे ही हैं। आपके इस्कूल में पढ़ा नहीं न। हम कहते हैं, बैल के चार पाँव हैं ! और आप हाबू को सिखाओगे, बैल के दो पैर है। यह सीखने से तो वह चरवाही नहीं सीखेगा।"

"यानी तुम लड़के को इस्कूल नहीं भेजोगे," उस आदमी ने अन्तिम चेष्टा की। गले के स्वर में मास्टर-सुलभ गम्भीरता लाने की कोशिश की, कुछ उदासी के साथ। उसके आदर्श मुखड़े का दमकता भाव मदन के अड्डे पर आध ही घण्टा में धक्का खा गया।

लेकिन सच पूछिए तो अब जाकर मदन का मन खुला। अब वह बावरी टोले के छोटे-मोटे दुख-सुख की बात से वैसा मजा नहीं पाता। अब उसे बाबुओं से बराबरी की टक्कर लेने में मजा आता है। ऐसी सुविधा तो हर समय नहीं मिलती। ऐसी एक शुभ घड़ी आयी थी। अब हाथ से निकली जा रही है।

"कहाँ जाओगे बाबू ? गाँवों का टोला तो दो मील है। धूप तेज हो रही है। बैठ ही जाओ। आज मेरी निगरानीगिरी नहीं है। खाना भी नहीं है। आप रहोगे बाबू, तो मेरी औरत चूल्हा सुलगायेगी। दो मुट्ठी चावल अगर ला पायी तो मूली का साग....अरे, उठ ही पड़े !"

वह आदमी उलटी ओर को चलने लगा। और उसके भाग जाने से मदन की पुलक जगी ! "आओ न, पोखरे में आकर मजे में नहायें, भात न खाओ, एक पत्तल...."

"क्यों, भाग चले....साला !"

भागते हुए भले आदमी के पीछे चलते-चलते मदन के गले से विकट आवाज निकली।

चार

नहर का पानी उतरने लगा। उतरंगी हवा वहना शुरू होते ही शाली नदी भी सूखने लगी। वस के रास्ते को पार कर समानान्तर जो वांध गया है, उसके मील-भर आगे की ओर अमतल्ली की झील में पनडुवकियाँ उड़ रही हैं। कभी यहाँ पर बहुत बड़ा आम का बग़ीचा था। अब एक भी पेड़ नज़र नहीं आता। केवल सरपत की झाड़ियाँ हैं। बहुत दिन पहले एक शौक़ीन अँगरेज़ यहाँ घूमने आये थे। दिल के दौरे से बीवी के टप्प से मर जाने के बाद उस साहब ने शाहजहाँ के संगमरमर-सौध की तरह इस हलके में एक बहुत बड़ा बग़ीचा लगाया। यहाँ आकर एकान्त में वह अपनी बीवी को याद करते थे या चिड़ियों का शिकार, इसपर एक राय नहीं है। लेकिन उस यादगार का अब कुछ भी बाक़ी नहीं बचा है। केवल मरियल-सी कुछ सोनाझरी एक जगह घनी होकर रह गयी है। उनकी टहनियों से पीले फूल की लम्बी-लम्बी बुलाकी अभी भी हवा में डोलती हैं।

मदन के गाँव से नजर आता है, पिल्-पिल् चींटियों की क़तार-सी बावरी औरतें बांध पर से उतर रही हैं। उनमें से किसी के हाथ में टोकरी है, किसी के कन्धे पर पोलो। दो-चार जनों के हाथ में खेपला जाल। गेरूमाटी-से काले-काले विन्दु पानी को चारों ओर से घेरकर उतर रहे हैं।

उनकी बातचीत हवा में तैरती आती है। आदिवासी औरतों, ख़ास करके इस इलाक़े की सन्तालिनों के काम-काज की फांक से पान के कल-कल जैसी लगातार सुरीली आवाज़ उठती है—बावरी औरतों की बात-चीत में वह बात नहीं है। अचानक निस्तब्धता चूर-चूर हो जाती है, "दुर् मौगी, घुमसी। तुझसे नहीं होने का। तेरा शरीर नहीं हिलता। ऐ टगर, दवा, दबा!"

जिस औरत को आवाज़ दी गयी, उसकी उम्र कम है, चेहरा मज़बूत। काला, गठा हुआ बदन। गेरुआ कादो से उसके बदन का बूल रँगा कपड़ा घुटने तक चुपटा है। बड़ी तेजी से वह हाथ का पोलो लिये आयी। इधर का पानी अभी वैसा घटा नहीं है। न चाहते हुए भी एक बगुला अपनी जगह से पर फड़फड़ाते हुए उड़ गया। चमारों का सूअर सरपत के जंगल में अभीतक कादो सूंघ रहा था। उसके वहां से निकलते ही कई छोरियों ने शोर-सा मचाया।

"देख-देख, कैसी हट्टी-कट्टी टेंगरा है," गेंड़ा की दीदी फिर चिल्ला उठी। टेंगरो का एक बड़ा झुण्ड सरपत के जंगल से निकलकर गहरे पानी की ओर बढ़ रहा था।

"क्यों री टगर, मुंह खोले ताक रही है?"

"धुड़मस।" पानी से निकलकर आते हुए टगर ने कहा। उसके बाद, बारह-तेरह साल की जो छोरी उसके पास बड़े ध्यान से घोंघे चुन रही थी, उसे बुलाया। छोरी गमछा लेकर टगर के साथ सरपत के जंगल में घुसी। सरपत से टगर का हाथ छिल गया। पानी में आधे चाँद के आकार का एक घेरा देकर दोनों जमीन की ओर निकल आयी। उतने बड़े झुण्ड का बहुत बड़ा हिस्सा निकल गया। फिर भी हाथ-भर पानी के अन्दर से नजर आया, छह-सात बड़ी टेंगरा के साथ दो-तीन झींगुर मछलियाँ पागल की तरह दौड़ रही हैं।

"टगर का नसीब अच्छा है," कालो की माँ ने खेद के साथ कहा। गमछे को ऊपर उठाते ही उस छोरी ने मुट्ठी से उठाना चाहा कि तुरत सख्त हाथों से टगर ने दबा लिया। गेंड़ा की दीदी चीख उठी, "गयी, गयी!" कि एक ओर को झुक आये गमछे से नीचे गिरते ही मछलियाँ गायब हो गयी। अपनी हथेली से दबायी हुई दो मछलियों को एकाएक साथिन के मुंह में ठूंसकर टगर ने कहा, "खा-खा।" टगर के धक्के से छोरी गिर पड़ी और आँ-आँ करके रोने लगी।

चीलें मँड़राने लगीं। धूप तेज हो गयी। बावरी स्त्रियों के बदन के खुले हिस्से धूप में चिटमिट करने लगे। चेहरा और भी ताँबई कलूटा-सा लगने लगा। अब धोबियों की बतखें सरपत की झाड़ियों के काफ़ी अन्दर धँस गयीं। पनडुबकी, बगुले, कदखुब्बे एक-एक करके उड़ गये। सबेरे की मन्द हवा में शान्त झील के किनारे स्त्रियों की बातचीत, घोंघे बीनती हुई छोटी-छोटी लड़कियों की दौड़-धूप—इन सबके ऊपर अब रूखी मेहनत की छवि फूट उठी। हाथ-पाँव मशीन की तरह चलते हैं। लगातार तीन घण्टे की मेहनत से भी उन स्त्रियों को पड़ता नही पड़ता। सभी टोकरियों में गिनी-चुनी कुछ चिंगड़ी और पोठिया!

ऐसे में टगर पीठ उघारे खड़ी हो गयी। पसीने से गीले हुए बाल कपाल से चिपट गये थे। बड़े सजाव का एक टीका लगाया था उसने वह गल गया था। घुटने और केहुनी तक कादो। उसकी साथिन जरा देर रो-धोकर फिर घोंघा बीनने लगी। टगर उसका हाथ थामे पोलो झुलाते हुए बाँध पर चढ़ने लगी।

"अरी, कहाँ चली मुँहजली?" पीछे से कालो की माँ ने पुकारा।

"यहाँ दिन बिताने से चलेगा?" मुंह बिना घुमाये ही टगर ने

दिया।

औरतें अब दो हिस्सों में बँट गयीं। खास करके सभी प्रवीणा—गेंड़ा की दीदी, कालो की माँ—झील में ही मछली मारती रहीं। उधर टगर की अगुवाई में पन्द्रह-बीस कमउम्र की स्त्रियाँ और भी आधा मील बढ़ गयीं सिंचाई विभाग के भत गए पोखरे को। जाते-जाते टगर ने कहा, "हमारे टोले में एक बाबू आया है, वह छाती की तसवीर लेता है।"

"छाती की तसवीर लेता है," पीछे की स्त्रियाँ मारे हँसी के फट पड़ीं।

"हाँ, कालो की माँ के यहाँ उसने कहा है। हमारे घर भी आयेगा।"

"छाती का ऐसा कौन डागडर है री। तुम्हारी बात सुनकर मेरी छाती तो कनकन करने लगी। हमारे यहाँ भी आयेगा!" टगर की नाते की एक फूआ ने कहा।"

"वह डाकटर नहीं है," टगर ने सिर हिलाया।

"तो ? किस मतलब से आया है ?"

"उसने कहा है, वह सरकारी आदमी नहीं है, वोट का आदमी भी नहीं है, डाकटर जैसे छाती की तसवीर लेता है, वैसे ही वह...."

टगर की बात उलझ गयी। दो दिन पहले सुव्रत ने कालो की माँ के यहाँ छाती की तसवीर की उपमा देते हुए समझाया था, डॉक्टर जैसे रोग के निर्णय के लिए करता है, मैं वैसे ही गांव की सही-सही हालत जानने के लिए आया हूँ। "क्या पता बहना, उन लोगों की बात मैं नहीं समझती," टगर ने अपनी हथेली को झटका दिया। हाथ बदलकर पोलो को दूसरे हाथ में लिया।

इस बार वह एक अधूरे तालाब में उतरीं। इस तालाब की खुदाई सिंचाई विभाग की ओर से तीनेक साल पहले शुरू हुई थी। फिर किस कारण उसकी खुदाई बन्द हो गयी, गाँववालों को नहीं मालूम। घुटने-भर पानी में टगर का दल खलसे और कवै मछली मारता रहा। उत्साह से टगर की आँखें नाचने लगीं। एक बार पाँव लटपटा गया और वह पोलो सहित कादो में लुढ़क गयी। केंहुनी से बदन का कादो पोंछने लगी। पलकों पर कादो, मगर आँखें खुशी से दमकने लगीं। झाँककर देखा, कादो से लतपत उसकी छोटी-सी टोकरी का लगभग आधा भाग हरे और लाल नक्शावाले झलमल छोटी-छोटी मछलियों से भर गया है। स्त्रियों की कमर दुख गयी, वे परिश्रम से हाँफ उठीं। पसीने और कीचड़ से कपड़ा बदन से चिपक गया। किसी का बाल सँवारने में भाल में कादो लग गया। हथेली की ओट करके टगर ने सूरज की ओर ताका। झकमक नीले आकाश की रोशनी से आंखें चौंधियायीं। सिर पर खड़े सूरज की ओर से नज़र फेरते हुए टगर ने हिसाब लगाया, सूरज यदि ज़रा-सा और

इधर होता, तो वह मछलियाँ कम से कम बारह आने में बेच लेती। अब तक बस-पड़ाव का बाज़ार उठ गया होगा, फिर भी आठ आना तो कहीं नहीं जाता। आठ आने का क्या लायेगी ? दो पैसे का नमक, दो पैसे का तेल, बाकी का चावल ? मगर एक टुकड़ा साबुन खरीदने की जो साध थी उसे, उसका क्या होगा ? दिनों से उन लोगों को मछली खाना नसीब नहीं हुआ। टोकरी में झांकते हुए अपने अनजान में कन्दे के पत्ते में कब जाने एक मुट्ठी मछली वह रख रही थी अलग करके। फिर एक उसाँस लेकर मुट्ठी की मछलियों को उसने टोकरी में ही डाल दी। पीठ सीधी करके खड़ी हुई। दूर पर बाँध के ऊपर कालो की माँ वगैरह लौट रही थी।

पाँच

सोनामुखी पोस्ट-ऑफिस में दो दिन से सुव्रत की एक चिट्ठी पड़ी थी। तीन दिन हुए, शाली नदी में पानी बढ़ गया है। महज़ एक चिट्ठी के लिए पानी में तैरकर गाँव में जाने को डाकिया तैयार नहीं। दो दिन के बाद, पानी घट जाने पर चिट्ठी गाँव में पहुँची।

ये दो दिन सुव्रत घर से निकल नहीं सका। केवल पानी-कीचड़ की वजह से नहीं, क्योंकि इस इलाके का कीचड़ खतरनाक नहीं। कम से कम एक बात में कम्युनिटी डेवलपमेण्ट ब्लॉक का काम प्रशंसनीय है। गाँव के भीतर से बहुत-से रास्ते निकले हैं। मिट्टी-मुरखी नहीं पड़ने के कारण कहीं-कहीं लापरवाही की छाप साफ़ दिखने पर भी गाँव के लोग मेड़ों के बजाय रास्तों से चलने लगे हैं। लोगों की आर्थिक अवस्था का यह मामूली हेर-फेर, उनकी आदतों में कुछ परिवर्तन सुव्रत के लिए बड़ी अहमियत रखता है। राजनीतिक कार्यकर्ता के नाते पहले ये परिवर्तन नज़र नहीं आते थे। लेकिन अब इस ओर उसकी नज़र तेज़ है। पिछले दो साल की सांख्यिकी के काम ने भी सुव्रत को इन छोटी-मोटी बातों की ओर और भी खींचा है।

गाँव में आने के बाद से सुव्रत ने छह-सात दिनों में बीस-पचीस घर-परिवार की खोज-खबर ली है। वह जहाँ ठहरा है, ये घर उससे सटे हुए ही हैं। यहाँ के प्रायः हर घर में उसने साइकिल देखी। घर में टाईमपीस के सिवाय किसी के हाथ में घड़ी भी देखी। नवीन ने तो अपने ट्रान्जिस्टर के ज़रिए गाँव में प्रायः

क्रान्ति ला दी है। कुएँ के पास, महिलामहल में, बस-पड़ाव के नये लेंगचा रेस्टुरेण्ट के फूस के घर में, यहाँ तक कि शाम को ईख पेरने की कल के पास जाकर क्रिकेट खेल का अँगरेज़ी में विवरण, रवीन्द्र संगीत, यहाँ तक कि आधुनिक कविता का सम्मेलन भी वह सुना आया है। इससे क्या होता है, राम जाने! सुव्रत अब पहले की तरह झट किसी निष्कर्ष पर आने को तैयार नहीं।

उपसंहार वह करेगा, पर आज नहीं, दो साल के बाद, जब वह फिर इस गाँव में आयेगा। अभी के और तब के तथ्यों को मिलाकर वह ग्राम-जीवन की छवि आँकेगा, जिससे उसका सत्य स्वीकार्य हो। वह अगर अपने समाज और देश का राजनीतिक ढाँचा बदल न भी सके, अगर अपने देश के बारे में तथ्य ही संग्रह कर पा सके, तो क्या वह काम बिलकुल नकारने-जैसा होगा? वास्तव में इसी ख़याल से ही सुव्रत तथ्य-संग्रह में जी-जान से जुट पड़ा है।

सवेरे भी बदली। आसमान में कई दिन जो झलमल भाव था, वह नहीं है। सुव्रत चौतरे की चौकी पर आ बैठा। सामने कटहल के दो घने पेड़ों तले छांह ख़ूब गहरी थी। वहाँ पर सूखे, मिट्टी लगे पत्तों के पास चिमड़े एक पपीते के पेड़ के नीचे एक टुकड़ा ज़मीन। एक तन्दुरुस्त-सा मुर्ग़ा अपनी लाल चोटी नचाते हुए माटी से चुन-चुनकर कीड़े खा रहा था। चौतरे पर बैठे-बैठे ही सुव्रत पसीने से तर होने लगा। हवा नहीं है, शायद फिर बारिश होगी।

गाँव के इस गुमसुम भाव से सुव्रत अभी तक अपने को सहज नहीं कर सका है। कूचविहार में जब वह पहली बार निकला था 'गाँववालों की छाती की तसवीर लेने के लिए', तो अगहन का महीना था। एक ख़ुशहाल किसान के टाली से छाये बाहरी कोठाघर में रहता था। उसके कमरे के बाहर ही धान के खेत। हवा बहने पर धान के खेत से लगातार जो आवाज़ होने लगती है, उसकी उसे धारणा नहीं थी। उस आवाज़ से चारों ओर की ख़ामोशी गोया और भी भारी हो उठती थी। सो, वह उस जगह को छोड़कर गाँव के बाज़ार के निकट बहुत ही गन्दी जगह में एक लकड़ी के मकान के ऊपर के हिस्से में चला गया था। नीचे एक सस्ता होटल था। वहाँ देशी शराब की भी व्यवस्था थी। सवेरे से आधी रात तक गाहकों की बातचीत, हो-हल्ला और रात में फूटे गले से हिन्दी फ़िल्मों के गीत सुनाई पड़ते। लेकिन उससे सुव्रत की नींद में खलल नहीं पड़ती थी। धान के खेत की आवाज़ से बल्कि उसे नींद नहीं आती थी।

इस लिहाज़ से यह गाँव अच्छा ही लग रहा है। ख़ूब चुपचाप, लेकिन इधर दो दिन बहुत हो-हल्ले में बीते। एक ग्राम-सेवक से उसका परिचय हुआ है। वह बारिशाल के प्राइमरी स्कूल में मास्टर था। फिर कई साल तक एस्प्लेनेड में लाजेन्स बेचा किया। दो-एक साल हुए, ब्लॉक में आया है। सड़क

बनाने का गीत तैयार किया है। सुव्रत ने सिगरेट सुलगायी। घर के भीतर से मदन का बेटा हाबू कांसे के कटोरे में चाय और कोर उठी थाली में भरकर मूढ़ी-नारियल रख गया। उसके बाद अपनी कमर से एक मुड़ा लिफ़ाफा चौकी के एक ओर रखते हुए बोला, "बाबू ने आपको देने के लिए कहा है।"

"बाबू कहाँ है?" सुव्रत ने भौहें सिकोड़कर मुड़े-मुड़े लिफ़ाफे की ओर एक नजर देखा। कलकत्ते ने फिर उसे खींचने के लिए कराल हाथ बढ़ाया है, जिस तरह से कि उसने पिछले कई सालों में पूरे पश्चिम बंगाल को निगल लिया है—एक विशाल अजगर की नाईं। निगलकर उकुस-पुकुस कर रहा है। सुव्रत ने भाँप लिया, चिट्ठी निर्मल की है। जरूर उसने अपने कॉलेज का कोई किस्सा लिखा है, या उसके पिताजी के नये मकान की बात लिखी है या सुव्रत के गाँव में आने का मजाक उड़ाया है। एकाएक वह निर्मल पर जल-भुन उठा। वह अपने चाचा को समझ सकता है, यहाँ तक कि अपने बाप को भी, पर निर्मल को बिलकुल ही नहीं। इस तरह दो नाव पर पांव रखकर चलने की बात वह नहीं समझता, समझना चाहता भी नहीं। वह अगर कोई नौकरी करना चाहता है, तो करे। अपने ताऊजी से वह अगर मेलजोल खूब बढ़ा ले, फिर क्या, सीधी सड़क! 'मेटल बॉक्स', 'बर्मा शेल', 'बर्ड', कहीं न कहीं कोई अच्छी-सी नौकरी मिल जायेगी। और कुछ नहीं तो किसी दैनिक अखबार का सहकारी सम्पादक भी तो हो सकता है। लेकिन सुव्रत को खींचने की क्या पड़ी है? वह खुद आठ-दस साल पहले छात्र आन्दोलन करके पुलिस की लाठी खाकर जिस राजनीति में था, उस तरह की राजनीति वह आज नहीं करता, करेगा भी नहीं। लेकिन फिर भी ठनठन कमान वह नहीं बन सकता। सुव्रत ने एक ही बार में फर्र से लिफ़ाफ़े को फाड डाला। निर्मल की चिट्ठी .

"उस रोज़ अपने कॉलेज में सुनील की चाय-पार्टी हो गयी। बेचारा डी. फिल् के लिए बड़ा हौलदिल हो गया था। बरेन से कहा था, चिन्ता के मारे बाल झड़ने लगे हैं। अब उसे पहचानना मुश्किल है। टाई लगाकर बंगला अखबार में तसवीर छपवायी है। डी. फिल् होते ही पचास रुपये तनखा बढ़ने का प्रस्ताव इसी महीने से चालू हो गया है। दिलदरिया है सुनील। एस्ता से कटलेट मँगवा रहा है। बरेन की डी. फिल् पार्टी में शाईं पेस्ट्री की याद है?

तूने मगर खूब दिखाया, चाहे जो हो। दस साल तो रास्ते पर उतरकर चीखते रहे, 'नहीं चलेगा, नहीं चलेगा', और जब तेरे पद-चिह्न का अनुसरण करके हम भी क्रान्ति की राह में उतरने की सोचने लगे, तूने

कन्नी कटा ली। और, अर्थशास्त्र तो परम ब्रह्म है। ताऊजी जिस ज़ोर-शोर से विधान-सभा में सांख्यिकी परोसते हैं, उससे यह धारणा हुई थी कि सांख्यिकी से तुझे एलर्जी होगी। आखिरकार सांख्यिकी के काम को क्रान्ति का काम बताकर तूने राजनीति से मुँह फेर लिया? कॉलेज में सब बतियाते हैं कि तू अगर प्लानिंग कमीशन में दरखास्त करे तो विश्वविद्यालय में तेरा जो रिकॉर्ड है और इन कै वर्षों में तूने जो फ़ील्ड वर्क किया है—कुल मिलाकर एक मोटी तनखा का एक्सपर्ट बन जायेगा तू। यह मैं सीरियसली कह रहा हूँ। ज्यादातर माल तो भूसा ही है। तेरे-जैसे छोकरे की बेहद माँग है। मैं तो कॉलेज में छोटे-मोटे जीनियस के रूप में चला रहा हूँ तुझे।

बीच-बीच में ख़याल होता है, हम दोनों जने क्या फिर बाप-ताऊ की भूमिका में उतरेंगे? पिताजी की उमर जितनी बढ़ रही है, उनका आदर्शवाद उतना ही भोथरा होने के बदले पैना हो रहा है। कभी-कभी लगता है, आदर्शवाद की धुन में मार ही बैठेंगे। सेहत उतनी ही खराब हो रही है। जब हाँफ उठता हूँ, तो बालीगंज प्लेस जाता हूँ। बुलबुल के साथ बेगाटेली खेलता हूँ। और देखता हूँ कि ताऊजी क्रमशः उन्नति की चोटी पर चढ़ते जा रहे हैं। हम भी क्या इन्हीं दो विपरीत रास्तों पर चलेंगे?"

चिट्ठी के आधे हिस्से को लिफ़ाफ़े में भरकर सुव्रत ने चौकी के कोने में फेंक दिया। फिर भौंह सिकोड़कर ज़ोर से कहा, "कहाँ, तेरे बाबू कहाँ हैं?"

वह छोरा चौंककर बोला, "यह तो कही चुका हूँ, सोनामुखी का एक दाढ़ी-वाला बाबू आया है। उसके साथ है।" उसने बताया, "ख़ूब सुन्दर, गोरा, आपिचर है।"

"मुझे जगाया क्यों नहीं?"

"लौटकर फिर आयेगा। मुझे इस्कूल जाने को कहा। ब्लॉक बाबू है न। ऐसा ही कहता है।"

"जाता क्यों नहीं?" चिट्ठी पढ़कर मन में जो खीज जमी थी, उसे इसी समय उगले बिना सुव्रत के जी में शान्ति नहीं आ रही थी। "क्यों बे, जवाब क्यों नहीं दे रहा है? बुद्धू ही बना रहेगा? लिखेगा-पढ़ेगा नहीं?"

वह छोरा ज़रा देर चुप रहा, फिर धीरे से बोला, "बप्पा कहता है...."

"क्या कहता है मदन?"

"कहता है, हम बुद्धू हैं। बुद्धू बनकर ही रहेंगे।"

"क्यों?"

सुव्रत की तीखी आवाज से लड़का खास विचलित नहीं लगा।

"चालाक बनने से पेट कैसे चलेगा बाबू ? एक बेला का खाना दो तो ब्लॉक बाबू का कहा सुनूं।" छोरा ये दो पंक्तियां फटाफट कह गया।

"तू अभी जा।" सुव्रत ने फिर सिगरेट सुलगायी। अभी भी सस्ते ब्राण्ड पर उतर नहीं पा रहा है, यह सोचकर उसका मिजाज खिचखिचा उठा। वह समझ गया, बारिश आयी तो मिजाज और भी बिगड़ेगा। कुछ देर से चोटी घिसी एक कुचकुच काली मुरगी चोंच से मुरगे की पीठ खुजा रही थी। उस तरफ एक ढेला फेंककर सुव्रत उठ पड़ा। उठते ही उसकी नजर पड़ी, मुखर्जी के साथ हावू के बताये दाढ़ीवाले बाबू लौट रहे हैं। सुव्रत चौंक उठा। अरे, निताई, है यह तो! "वह चीख पड़ा, "निताई!" अब तक जो उदासी आयी थी, एक ही चीख में उसने उतार फेंकी।

"तुम यहाँ कैसे ब्रदर ?" सुव्रत आगे बढ़ा।

"मेरा भी तो यही सवाल है," उस प्रशान्त भले आदमी ने कहा, "मैं यहाँ ब्लॉक डेवलपमेण्ट अफसर हूँ। तुम कॉलिज में थे न ?"

"हाँ, वह भी है। यहाँ एक इकनामिक सर्वे में आया हूँ।"

निताई ने उत्साहित होकर कहा, "खैर, अच्छा ही हुआ। हमारे काम में तुम लोगों-जैसे आदमी की जरूरत सबसे पहले है। आज शाम को हम लोगों के शिविर में आओ, दिल्ली से हमारे बड़े साहब मिस्टर दे आ रहे हैं।"

"तुम लोग कर क्या रहे हो, सो तो कहो ?"

"असल में बात यह है क्या, ठीक पकड़ नहीं पा रहा हूँ। शायद मिस्टर दे ठीक से समझा पायें। आना जरूर, हाँ ? अभी मुझे जल्दी है। और भी दो-एक जगह जाना है।"

उसके बाद बोलना बन्द करके उसने एक बार एड़ी-चोटी तक सुव्रत को देखा। मानो उससे कहा जाये या नहीं, यह सोचकर क्षण भर आगा-पीछा किया। आँखें उसकी खासी बड़ी हैं और आँखों के पीछे कौन-सा पदार्थ है समझ में नहीं आने पर भी एकटक जब वह देखता है, तो आँखें खासी जोरदार लगती हैं। सुव्रत को लग रहा था, जरा और चमक होती और दसेक सेर वजन घटाया जाता तो 'वाल्मीकि प्रतिमा' अभिनय के समय के युवक रवीन्द्रनाथ-जैसा लगता निताई।

उसकी दुविधा दूर करके निताई ने कहा, "तुम जानते हो या नहीं, पता नहीं। मिशन में घुसा था। रुपया-पैसा, मकान-मोटर, इससे अलग ही रहने की सोची थी। देखा, वहाँ भी वही सब है, और कुछ नहीं। उसके बाद इस लाइन में आया।....लेकिन ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ। अगर कुछ स्कूल-भवन और

बनवाने के लिए हम लोगों को रखा गया है, तो पी. डब्लू. डी. ने
क़सूर किया था ? तुम लेकिन आना। बातें होंगी।"

गाँव के एकमात्र कोठाघरवाले मुखर्जी के हाल ही बनी टिन की छौनी ली चकचक पक्की की गोशाला में सभा हुई। दो पेट्रोमेक्स, लाल-पीले काग़ज़ के ल-पताके, ढोलक-झाँझ के साथ गीत की मण्डली—कुल मिलाकर बड़ ानियल परिवेश। नवीन और उसके चेले-चटिए छाती में बैज लगाये मँड़र रहे हैं। एक छोटा-सा डायनेमो भट-भट कर रहा है। बागदी-लुहारों की भी वहाँ पर। पूरा गाँव ही प्राय: टूट पड़ा है। नयी पोताई की बू से, ऊमस से लं तर-तर पसीज रहे हैं। सुव्रत को लगा, अभी-अभी शायद खोये बच्चे के लिए माइक पर आर्तनाद शुरू होगा : बुलू, हमारे दफ़्तर में तुम्हारे चाचा इन्तज़ार कर रहे हैं। धोती के चँदोवे के नीचे मिठाई, चाय-पान की दुकान। पंखा-बेलून बिक रहे हैं। एक व्यापारी, जो सस्ता बिस्कुट, कटकट हरा-लाल लाजेन्स और 'मुन्ना खेलेगा मुनिया, मुन्नी खेलेगी मुनिया' खिलौने लिये केंदुली से शान्ति-निकेतन के पूस मेला तक तमाम दुकान लगातार फिरता है, वह भी दो-चार बक्से खोलकर बैठ गया है। दो बाऊल गाँजे की चिलम में दम लगा रहे हैं। बस, सभा शुरू होने की देर है।

बिलकुल घड़ी के काँटे से ठीक समय पर मिस्टर दे सभा में दाखिल हुए। कलाई में ज़रीवाली बेला फूल की माला। साथ में निताई, कम्युनिटी डेवलप-मेण्ट का एक बड़ा अफ़सर, कलकत्ते के किसी मशहूर दैनिक का विशेष प्रति-निधि, सोनामुखी के उच्चपदस्थ सरकारी और पुलिस कर्मचारी। फिर हलचल सी मच गयी। विशिष्ट लोगों के लिए सामने सजायी हुई कुरसियों पर मिस्ट दे न बैठकर दरी पर बावरी-बागदी के बीच पांव मोड़कर बैठ गये। सरका कर्मचारी आगा-पीछा करने लगे। अखबार के विशेष प्रतिनिधि कुरसी बैठते ही तुरत उठ खड़े हुए। लाख इशारे के बावजूद खेतिहर लोग एक कर के खड़े हो गये। निताई तो पसीने-पसीने।

मिस्टर दे झट उछल पड़े। "डु यू शेयर माइ बर्डेन" कहकर उ फूल की माला अखबार के प्रतिनिधि की ओर फेंक दी। उस छोकरे ने '

शब्दों के पं

कहकर उसे लोक लिया। उसके बाद, नेहरू जी जैसे अगाध आत्मविश्वास के साथ दुःशील जनता में अपने को फेंक देते थे, वैसे ही आत्मविश्वास के साथ किसानों का कन्धा पकड़कर कभी हँसते हुए, कभी डाँटकर उन्हें बिठाने लगे। भौचक्के हुए-से नंगे बदन लोग बैठने लगे। उसके बाद भले आदमी ने रूमाल निकालकर चश्मे को खोला। हँसते हुए तब जब वह दरी छोड़कर कुरसी पर आ बैठे, तो निताई ही क्यों, ब्लॉक के सभी कर्मचारी श्रद्धा के साथ उनकी ओर ताकने लगे।

मंगल-गान कौन-सा गाया जायेगा, इसके लिए दो गीत-मण्डलियों में जरा पहले झंझट हो चुकी थी। एक मण्डली बायाँ तबला के साथ गाँव में शास्त्रीय संगीत गाया करती है। उसने एक ध्रुपद की सिफारिश की। लेकिन ब्लॉक-वालों के दबाव से रवीन्द्र संगीत गाना ही तय पाया। कौन-सा गीत गाया जाये, इसपर भी विवाद हुआ था। आखिर दिल्ली से आये मिनिस्टर साहब के लिए ढोल-झाँझ पर गीत गाया गया। 'वह महामानव आये—दिशि-दिशि रोमांच जागे। मर्त्य धूलि के तृण-तृण पर।'

मिस्टर दे की उम्र पैंतालीस भी हो सकती है, पैंसठ भी। पहली नजर में बूढ़ा या जवान कुछ भी समझा जा सकता है। नाम के सिवाय बंगाल से उनका खास वास्ता नहीं। लम्बी, पैनी बनावट, बादामी देह से धप्-धप् साफ खद्दर खूब फब रहा है। जो उनके पिछले इतिहास को जानते हैं, जैसे निताई या सुव्रत, उनके लिए इस किस्म की शक्ल गोया कार्यकुशलता का सन्देश लाता है। लण्डन स्कूल ऑव इकनॉमिक्स में लास्की के प्रिय छात्र, जिन्होंने ज्ञान की चर्चा में यूरोप में दस साल बिताये हैं, वह ठीक मन्त्री नहीं, सरकारी कर्मचारी नहीं, वह एक विशेषज्ञ हैं। यहाँ तक कि सुव्रत को भी लगने लगा कि ऐसे निरपेक्ष बुद्धिजीवी की जरूरत है जो अपने जीवन और देश को भेड़ियाधसान में नहीं डाल देना चाहते। इस कोटि के भले आदमी ने शायद ज्ञान के बल पर ही अपनी जगह बना ली है। सुव्रत कान खड़ा किये बैठा रहा। मिस्टर दे उनके पिता के असेम्बली भाषण से कुछ अलग बातें भी जरूर बोलेंगे।

मगर कठिनाई हुई भाषण के लिए। मिस्टर दे का सारा जीवन पंजाब में बीता। बँगला बिलकुल नहीं बोल पाते। उनकी खास कुशलता है अँगरेजी में। और, राबर्ट क्लाइव ने चाहे अँगरेजी भाषा के जरिए भारत को न जीता हो, पर स्वाधीनता के बाद अँगरेजी के माध्यम से शायद देश को दुबारा जीता जा सकता है। फिर भी इस लिहाज से मिस्टर दे को एकांगी नहीं कहा जा सकता। वह उर्दू मिली चुस्त हिन्दी में बोल-लिख सकते हैं। कह सकते हैं, सर्वभारतीय व्यक्तित्व की प्रतिमूर्ति।

मिस्टर दे ने दो-एक मिनट आगा-पीछा किया और अखबार के विशेष प्रतिनिधि की ओर देखते हुए बोलना शुरू किया :

"History is a corelation of forces. The modern world witnesses a gigantic clash between socialism and capitalism, between the overpowering dehumanised control of the State and the anarchy of private enterprize. India wants to strike a balance to achieve a synthesis. The Community Development Project must be viewed that perspective."

दे साहब ने फिर अपना चश्मा ठीक किया। चश्मे के भीतर से फिर उनका झकमक व्यक्तित्व झिकमिका उठा। और सुव्रत की नजर उन बागदी-लुहारों पर गयी, जो हाथ जोड़े उकड़ूँ बैठे थे। एक ओर अँगरेजी का साफ़-शुद्ध उच्चारण जितने ही जोरदार ढंग से कानों में बरसने लगा, दूसरी ओर उकड़ूँ बैठे लोगों का मुँह-माथा उतना ही घुटने में घुस जाने लगा। हठात् माइक के सामने खड़े उसके पिता की तसवीर मन में कौंधकर खो गयी। "आज भारतवर्ष के इस छोर से उस छोर तक जो सृष्टि-यज्ञ हो रहा है...." अब सुव्रत को सुनाई पड़ा :

"The hammers of Five Year Plan are crushing to pieces the poverty of the people, India's No. 1 enemy. Simultaneously, the development work will carry on a bloodless revolution in villages. Here we don't need spectacular machines but men, men who matter, the toiling millions of India."

और मिस्टर दे ने कुण्डली बने हुए उन लोगों की ओर उँगली बढ़ा दी।

इसके बाद वह अपनी चुस्त हिन्दी में बोले, जनताराज में जिला-मजिस्ट्रेटों की जरूरत क्यों खत्म हो गयी। जनताराज में जिले के शासकों को खटिया पर बैठकर गाँव के पंचों-मुखियों से सुख-दुख की बातें करनी होंगी। जनताराज कोई मामूली बात नहीं। उन्होंने बड़े मौक़े से 'हाफिज' की कुछ पंक्तियाँ सुनायीं, पर अधिकांश लोगों के पल्ले नहीं पड़ीं। नवीन ने पहले से ही छोकरों को तैयार कर रखा था। भाषण समाप्त हुआ कि उन लोगों ने तुमुल तालियाँ बजायीं।

सुव्रत को लगा, वह सपना देख रहा है। नयी पोताई की गन्ध, गैस की रोशनी के नीचे नंगे बदनों की क़तार और सामने मानो रंगमंच के ऊपर माइक के पीछे झकाझक व्यक्तित्व दे साहब हाथ-पाँव बचाकर बोल रहे हैं। उसके

पिता का अँगरेज़ी उच्चारण इतना साफ़ नहीं है, मगर बँगला में उनका खींच-खींचकर बोलना हूबहू एक है। हम जो कह रहे हैं, वह वैज्ञानिक रूप से जाँची हुई है। आलू की खेती 'हमने सोवियत रूस से भी अधिक की है।' हठात् सुव्रत ने अपने चिन्तन को नल का पेच कसकर बन्द कर दिया। अब वह नहीं सोचेगा, अपने को उसने सचेतन किया। इस सोचने का मूल्य क्या। ऐसे सोचने ने दस वर्षों में उसे क्या सिखाया? राजभवन के सामने विद्रूपों के एक दल धूप से जले सूखे चिमड़े रिफ्यूजी औरत-मर्द या जैसा चाहिए वैसे काम की कमीवाले कुछ चिल्लानेवाले युवकों का जुलूस बनाने में मदद दी है। पुलिस के घेरे को तोड़ने की मन्त्रणा उसी ने क्या कितनी बार नहीं दी है? कितनी ही बार उन लोगों ने पुलिस को गोली चलाने पर मजबूर किया है। लेकिन उसके बाद? उसके दूसरे ही दिन कान खोदते-खोदते मूँगफलीवाला उसी युद्धभूमि में ही मूँगफली बेचता रहा, चमगादड़ की तरह झूलते हुए लोग ट्राम-बस पर चलते रहे। भला क्रान्ति को यों कान पकड़कर लाया जा सकता है?

पिता से उसका जो विरोध है, वह किसी आइडियोलॉजी को लेकर नहीं बल्कि आइडियोलॉजी नहीं रहने के कारण ही है। सुव्रत सिर्फ़ हैरान होकर सोचता रहा, उसके पिताजी इस तरह झटपट अँगरेज-भक्त, गान्धी-भक्त, नेताजी-भक्त, रवीन्द्र-भक्त कैसे हो पड़े? उसके चाचा जब इस बुढ़ापे में क्रान्ति की प्रयोजनीयता के लिए चिल्लाते हैं, घर की सीली और गलती हुई दीवार पर चाची के ठाकुर-देवता की बहुत-सी तसवीरें सजाये रहते हैं, बागबाजार की बस्तियों के बाशिन्दों और ग़रीब आवारों की बग़ैर पैसा लिये चिकित्सा करके महीने के अन्त में उठते-बैठते मिनिस्टर भाई को जहन्नुम-रसीद करते हैं, उस समय उनके मन की चुभन सुव्रत को अवाक् नहीं करती। शायद उसके पिता को अपने सिवाय कुछ पर भी विश्वास नहीं। गान्धीजी को पहले 'कम्बख्त गंधी' कहते थे, सुभाष बोस को कहते थे 'माथामोटा', मन्त्री होने के पहले तक नेहरूजी को कहते रहे 'सोशलिस्ट नवाब'; आजकल अँगरेज़ों की एफिशिएन्सी की बात खूब करते हैं, लेकिन सुव्रत का विश्वास है कि यह भारत के शिक्षित मध्यवित्तों का संक्रामक संस्कार है। इससे उसके पिता भी बरी नहीं। और फिर वह खुद भी क्या खूब एफिसिएण्ट हैं? इस बात में भी बेटे को काफ़ी सन्देह है। प्रायः यह कहा जा सकता है कि दाँवें-पेंच से मिनिस्टर बन गये हैं, जैसे कि और भी दूसरे लोग बने हैं। सुव्रत को इसलिए आपत्ति नहीं है कि वह साम्यवादी है और पिता साम्यवाद विरोधी। उसे आपत्ति इसमें है कि उसके पिता केरियर के ऐसे ब्रह्म में पहुँच गये हैं, जहाँ सारे वाद एकाकार हो गये हैं, और बीच-बीच में वह हाँफ उठता है कि ऐसे 'एफ़िसियेण्ट' लोगों की ही तू

र्वत्र विजय है, जो किसी संकट को संकट न मानकर राय देते हैं। उनकी जीत क्या किसी खास राजनीतिक दल तक ही सीमित है ?

सुव्रत इसीलिए मिस्टर दे की बात से हक्का-बक्का हो गया। यहाँ भी वही 'मौन रक्तहीन क्रान्ति' की ही जय-जयकार है। ये बातें किसे कही जा रही हैं ? उस रोज एक जगह आँकड़े जुटाने में सुव्रत को लगातार एक ही समस्या से जूझना पड़ा। यहाँ ऐसी दाँतनिपोरी ग़रीबी है कि बहुत मामलों में आँकड़ों का कोई अर्थ नहीं। बहुतेरे बागदी-लुहारों के घर एक चटाई और मिट्टी की हाँड़ी के सिवाय और कुछ नहीं है। निताई का दल शिक्षा-शिक्षा करके खूब चिल्ला रहा है, छोकरे ग्राम-सेवक लोगों को जगाने के लिए रवीन्द्रनाथ के गीत गा रहे हैं। परन्तु सुव्रत के लिए यह सारा ही व्यापार गुरुसदयदत्त द्वारा उद्भावित 'चल आय कचुरी नशी' का पर्याय है। अँगरेज़ों के जमाने में ज़िला-महकमे का शासक साल में एक दिन खाकी हाफ़पैंण्ट पहने जलकुम्भी उजाड़कर लोगों को प्रोत्साहित करते थे। अब मन्त्री और सरकारी लोग जनसाधारण को रक्तहीन क्रान्ति तथा पंचसाला योजना का गुणगान सुनाते हैं। सुव्रत चौंक उठा। वह फिर पुराने कगारों में अपने ध्यान को प्रवाहित होने दे रहा है। पिछले दस साल से क्या वह कभी भी छुटकारा नहीं पायेगा ? या, यों कहा जा सकता है, क्या बंगाल मुक्ति नहीं पायेगा ? वैसे ही लोगों को जोश दिलाकर रास्ते में पुलिस के घेरे के सामने उतारना पड़ेगा, वही नाक खुजाते-खुजाते पुलिस-अफ़सरों के साथ अखबारों के प्रतिनिधि निर्विकार गप्पें मारने लगेंगे, पसीने से चटचट करती क़मीज़ की आस्तीन समेटकर, गले की नस फुलाकर, चीखना पड़ेगा—'इन-क़िलाब-जिन्दाबाद' और इनक़िलाब उस समय ऊपर नीले आकाश में बादलों की ओट में मुँह छिपाकर हँसेगा।

"क्यों महाशय, सो गये क्या ?" निताई ने सुव्रत को झटका दिया "फ़र्स्ट क्लास बोला साहब, इस आदमी के लिए मेरी श्रद्धा बढ़ गयी। आज ऐसे एक्सपर्टों की सबसे ज्यादा जरूरत है।"

मिस्टर दे ने कौन-सी एक्सपर्ट बात कही, समझ में नहीं आया। मगर भीड़ में जो थोड़े-से पढ़े-लिखे मध्यवित्त आये थे, उनमें बात दावानल की तरह फैल गयी। सब कहने लगे, "सबजेक्ट पर भले आदमी को असाधारण अधिकार है" या "स्थिति को ठीक असेस कर सके हैं," परन्तु झमेला खड़ा किया मदन बावरी ने। उसी कमर झुके लोगों की कुण्डली में से हठात् खड़ा होकर वह चिल्लाने लगा, "यह सब अँगरेजी बात तुम लोग अपने में करो। हम लोगों को पानी मिलेगा ? क्यों जी, हम लोगों को पानी मिलेगा ?"

कृषि विभाग के ऊँचे अधिकारी झट उछलकर उठ खड़े हुए और बोले,

"मिलेगा, मिलेगा, सब मिलेगा। बैठो, बैठो।"

इस बीच मदन के आस-पास और भी कई खाली बदन खड़े हो गये। चारों ओर की एक बुदबुदाहट और फुसफुसाहट में सभा भंग हो गयी।

निताई लेकिन उत्तेजित था। वह मिस्टर दे के दमकते व्यक्तित्व की झलक से उत्तप्त हुआ। उसे लगा, आजादी हासिल करने के इतने दिनों बाद एक काम-जैसा काम हुआ है। और उसने तय कर लिया कि जी-जान से ग्रामोत्थान के कार्य में जुट पड़ेगा। मिस्टर दे ने उसमें और भी चाभी भर दी। उसके आँख-मुँह को देखकर लग रहा था कि हिन्दुस्तान की छाती पर ग़रीबी का जो जगद्दल पत्थर बहुत ज़माने से जमा पड़ा है, वह हिलने लगा है। निताई सोचने लगा, अब तक धर्म-धर्म करके वह किस क़दर पागल हो उठा था, बेकार में कितना समय गँवाया। आज उसने मन ही मन यह संकल्प कर लिया कि हर तरह के आत्मत्याग के लिए वह तैयार है, इसके लिए अगर उसका निकटतम आत्मीय भी उसे गलत समझे, वह तो भी पीछे नहीं हटेगा। वह महज़ अफ़सर ही नहीं, कार्यकर्ता है, उसने भारतवर्ष की छाती पर से गरीबी की चट्टान को हटाने के काम में हाथ लगाया है। इससे महत् कार्य और क्या हो सकता है? उसे यह पक्का विश्वास हो गया कि राजनीतिक नेता नहीं, उस-जैसे अख्यात लोगों की ही ज़रूरत है, जो जनसाधारण के मन में उत्साह जगाये। आज हम पेट्रोमैक्स और कार्बाइड की काँपती हुई रोशनी के नीचे खाली बदन की क़तारों की सभा में वह भारतवर्ष नाम की किसी चीज़ की मौजूदगी को प्रत्यक्ष कर सकेगा। सम्भव है, मिस्टर दे ठीक कह नहीं पाये। यह भी सम्भव है कि अँगरेज़ी में उनका बोलना उचित नहीं हुआ, निस्सन्देह सरकारी कर्मचारी और किसानों के बीच की दूरी अभी दुर्लंघ्य है। मगर इस दीवार में दरार डालनी ही होगी। निताई का गोरा चेहरा उत्तेजना से तमतमाया हुआ लाल हो गया।

"चलो, हमारे कैम्प में चलो," निताई ने सुव्रत का हाथ पकड़ा।

सुव्रत ने चौंककर निताई की ओर ताका। निताई का हाथ भी उसके हाथ में काँप गया।

"फिर भाषण?" सुव्रत ने थके हुए स्वर में कहा।

"तुम रिवोल्युशनरी हो न? भाषण से तुम्हें भी डर लगता है?"

सुव्रत ने क्लान्त गले से कहा, "इसीलिए तो डर है। क्रान्ति सब भाषणों में ही निकल गयी। किसानों के लिए कुछ नहीं रहा।"

"इत्ता-सा मन लेकर तुम गाँव में आये हो?" निताई ज़रा गरम होकर बोला।

"जी हाँ, इत्ता-सा मन है मेरा। मेरे पिताजी जैसा, तुम्हारे नेता-जैसा

दरियादिल कैसे होऊँ ? मैं सिर्फ़ एक ही बात समझना चाहता हूँ, इसीलिए गाँव में आया हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि कितने धान में कितना चावल होता है।"

"ये पहेलियाँ रखो !"

"दरअसल तुम अच्छी तरह से नौकरी करना चाहते हो," सुव्रत टप् से बोल बैठा। ठीक ऐसी ही बात नहीं बोलने की सुव्रत ने शपथ ली है। वही तिर्यक् तीक्ष्ण भंगी, वही 'पॉलेमिक' का मिज़ाज—उससे कुछ होने का नहीं। सुव्रत को पता है, इससे आखिरकार रास्ते पर गोली खानी पड़ती है।

और ठीक जिस प्रकार से घाव लगाना चाहा था, उसी प्रकार से बात निताई के मन में लगी। निताई चीख उठा, "आइडियलिज़्म तुम लोगों की अकेली की सम्पत्ति है, क्यों ? क्या त्याग किया है ? क्या छोड़ा है भाई ? बाप के मिनिस्टर होने पर बेटा अगर उनकी लीक न पीटे, तो धन्य-धन्य मच जाता है। मेरे बाप मिनिस्टर नहीं हैं, स्कूल मास्टर हैं। हम खानदान-भर ने अँगरेज़ों की क़ैद झेली है। पैसा को कभी पैसा नहीं समझा। नौकरी करने की सोचता तो मिशन नहीं करता, माटी पकड़कर गँवई-गाँव में इतने दिनों तक पड़ा नहीं रहता।"

"चलो, चलो, तुम्हारे कैम्प में चलें। गँवई आदमी, मज़ाक़ भी नहीं समझता।"

निताई पानी हो गया। बोला, "खेती-बारी के सम्बन्ध में तुम्हारे बहुत से प्रश्न हो सकते हैं। होना ही चाहिए। मैं भी तो भैया तुम्हारी ही तरह आगन्तुक हूँ। हमारे श्याम बाबू हैं—डिस्ट्रिक्ट एग्रीकलचर अफ़सर—बड़ा तर्रार आदमी है। तुम्हें उनसे सब मिलेगा।"

सभा खत्म होने के बाद गुंजन-मुखर भीड़ टूटकर चाँदनी में बिखर गयी। रह-रहकर कोई पुकार उड़ती आती, 'रजनी, अरे ओ रजनी....'' मदन का फटे बाँस-सा गला सुनाई पड़ा, 'बाबू सा'ब, आपलोग पानी का कोई पक्का बन्दोबस्त कीजिए।' और फिर उसी चाँदनी में ग़ायब। ज़रा ही देर बाद चारों ओर खाली-खाली लगने लगा। धप्-धप् चाँदनी में खुली बैलगाड़ी के सामने मुखर्जी के दो बैल जुगाली कर रहे थे। थोड़ी दूर पर कार्बाइड की रोशनी के चारों ओर अभी भी कुछ भीड़ थी। दुतारे के साथ गीत का स्वर सुनाई दे रहा था।

"बाऊल।" निताई ने कहा। वे दोनों भीड़ के पास ठिठक गये। सुव्रत ने गरदन ऊँची करके देखा, दुतारा एक अधेड़ फ़क़ीर बजा रहा है। उसकी आँखें मंगोलीय हैं, दबी, ठोड़ी पर ज़रा-सी बकरे की-सी दाढ़ी। पहनावे में फटा गुलाबी रंग का रेशमी अलखल्ला, गले में मोती की दो माला। वह अपने बहुत बड़े मुंह को खोलकर सर हिलाते हुए गा रहा था, नाच रहा था। नीला हाफ़-पैण्ट और गंजी, माथे पर धोती को पगड़ी बनाकर पहने आठ-नौ साल का एक

लड़का संगत कर रहा था। वे दोनों जो गीत गा रहे थे, उससे सुव्रत और निताई के चिन्तन-सूत्र में बाधा पड़ी। आते-आते वह आपस में बतिया रहे थे कि ज़मीन की 'इल्ड' कैसे बढ़ाई जाये, लेकिन वह सब भूल-भालकर वे खड़े हो गये।

"बहुत डिप्रेसिंग है, न ?" निताई ने फुसफुसाकर सुव्रत से कहा। लेकिन वह भी एक अयौक्तिक कारण से सुनता रहा। बाऊल मन ही मन हँसा। दुतारे को दोनों हाथों माथे पर उठाकर वह चक्कर खाकर उछलते हुए गाने लगा :

हृदय के स्टेशन पर
महाजन खुद बैठकर
चलाये कल रात-दिन-भर
मन चले जहाँ को,
हाय, हाय कुल कुण्डलिनी महारानी
चौदोले पर राजें वहाँ तो !

अपना सम्मोह मिटाने के लिए निताई बुदबुदाया, "फिर वही देहतत्त्व, वही भूसा माल। देश जो आगे बढ़ रहा है, ये लोग इस बात को हरगिज नहीं मानेंगे, हरगिज नहीं मानेंगे।"

आखिर दुतारे की झन-झन और पाँवों के पाजन की ऐक्यतान में, लड़के की ताल-ताल पर प्रेमजोड़ी की संगत से गीत ख़ूब जम गया। और एक ख़ूब सहज सत्य, आदमी के जनम-मरण की अनाद्यन्त कहानी चाँदनी से चमकते रात के धान कटे रूखे खेतों में बिखर पड़ने लगी। अपना घोर मिटाने के लिए निताई चिल्ला उठा, "अजी, ये पुराने गीत छोड़ो। कोई सामाजिक गीत गाओ। कोई सोशल।"

दुतारा बजाना बन्द करके बाऊल टुकुर-टुकुर निताई और सुव्रत की ओर ताकने लगा। बगल में गेरुआधारी एक बूढ़ा था, शायद उसी के दल का हो, उससे कुछ कहा। पनछा आँखें पसारकर देखा। आगन्तुकों के पीछे से एक मजूरा चिल्ला उठा, "ब्लॉक बाबू-ब्लॉक बाबू!" बाऊल ने निताई और सुव्रत की ओर ताककर सलाम किया। उसके बाद दुतारे को जोर से बजाने लगा। निताई ने अस्पष्ट-सा कहा, "कैम्प में खान-पान है। जल्दी जाना है। एग्रीकलचर अफसर भी रहेगा।" फिर गाना शुरू हुआ। फिर वही कभी फिस-फिस, कभी गला ऊँचा करके दुतारा झमझमा करके, गोया बाबुओं की बात उसके कानों नहीं पहुँची, या पहुँची भी तो उसने मन में नहीं रखी :

अनुराग हिय-कमल में बिना खिले
प्रेम क्या यों ही मिले ?

कृष्ण-प्रेम है संत-मंत क्या
बीन ले जो-सो भी जा
साध्ते साध्ते उदय होगा
समय के झिले।
प्रेमतरु में प्रेम-लता
जगतव्यापी उसका पत्ता
पात-पात में पारस-मणि
हिये में हिले।

"चलो, चलो, बहुत हो चुका," निताई ने सुव्रत का हाथ पकड़कर खींचा।"

उसके बाद चाँदनी में मेड़ से चलते-चलते बोला, "केवल प्रेम से कुछ नहीं होता।"

फिर से उन लोगों ने जमीन की 'इल्ड' पर आने की कोशिश की। मगर बातचीत वैसी जमी नहीं। खेतों के बीच में फिर एक जगह पेट्रोमैक्स की कड़ी रोशनी दिखाई पड़ी। अधूरे स्कूलभवन से पूड़ी छानने की गन्ध आयी।

कुछ और बढ़ने पर मिस्टर दे की शेरवानी और चश्मा दिखाई पड़ा। मिस्टर दे और मशहूर अखबार के प्रतिनिधि जाने किस विषय पर तर्क कर रहे थे। निताई इस भोज के आयोजकों में से एक है। रसोई की निगरानी की खातिर वह रसोईघर में घुसा। कोई-कोई अफ़सर इस भोज में पत्नी-सहित आये हैं। सोनामुखी के दो-तीन बड़े व्यापारी भी पधारे हैं।

एक कोने में खड़ा होकर सुव्रत भले आदमियों की बातें सुनने लगा। कुछ शब्द बार-बार तिरते आते थे—'विलेज पोटेन्शियल,' 'एग्रिकलचरल बेस,' 'चेंजेज़ इन ऐटीच्यूड्स' आदि। कुछ देर तक बातें होते रहने के बाद पत्र-प्रतिनिधि ने पूछा, "यानी आप यह कह रहे हैं कि आज तक जो कुछ हुआ है, वह ठीक नहीं हुआ है?" कि "नॉट एक्जैक्टली" कहकर मिस्टर दे ने जहाँ से बात शुरू की थी, फिर वहीं से शुरू कर दी। प्रायः पन्द्रह-एक मिनट यह लुकाछिपी चलती रही। कोई पकड़ में आनेवाला नहीं।

सुव्रत को लगा, आखिरकार पत्र-प्रतिनिधि ने हथियार डाल दिया। उनके छिले-छिलाये चेहरे पर क्लान्ति की छाया उतर आयी। उनका शायद गाँव में आना ही गुड़-गोबर हो गया, क्योंकि लिखने लायक़ कुछ मिला नहीं था। यदि मिस्टर दे से यह कहलाया जा सकता कि अब तक जो कुछ हुआ है, वह कुछ भी नहीं हुआ है, तो बेशक पहले पृष्ठ पर यह खबर दो कॉलम में जमती। मगर वह हुआ नहीं। सुव्रत ने भाँप लिया, गाँवों के बारे में मिस्टर दे का

उत्साह मूलतः 'चेंजेज इन ऐटीच्यूड्स' या 'ब्लडलेस रिवोल्यूशन' जैसे कुछ खूबसूरत-नुमा शब्दों के इस्तेमाल का उत्साह है, उसी तरह अखबार के प्रतिनिधि का इस गाँव के बारे में आग्रह दरअसल अच्छी 'कॉपी' का आग्रह है। और यह आग्रह अगर पूरा न हो तो पूरे लक्ष्मीपुर गाँव के बारे में ही आग्रह जाता रहता है। दोनों के ही लिए इस वृत्ताकार में शाली नदी के पार तेली-बागदी-लुहार इतने स्त्री-पुरुषों का कई सदियों से वास है, उनका असन्तोष, साथ ही साथ उनके जीने की सान्त्वना, यहाँ की विभिन्न प्रकार की ज़मीन और विभिन्न ऋतुओं में उनपर अलग-अलग प्रक्रिया, यहाँ की जलवायु, मनुष्य और जीव-जन्तुओं के शरीर में विशेष प्रकार की उत्पत्ति, फिर खास-खास प्रकार के रोग, सरकारी जो प्रतिष्ठान है, उनके बारे में यहाँ के लोगों का मनोभाव अथवा उनका भूत-प्रेत-बाऊल-किंवदन्ती का जगत्—मुख्तसर में इन कई हज़ार आदमियों के अंचल के सम्बन्ध में उनका जो उत्साह है, उसमें सम्भवतः एक मील के रास्ते में महज़ कई इंच तक ही जाया जा सकता है।

"अरे रे, तुम्हें ही ढूँढ रहा था," पसीने से तर उत्तेजित निताई का मुँह आस-पास के लोगों के माथे के ऊपर तिर आया। "कहाँ थे अब तक? अरे, श्याम बाबू, मैंने कहा था न? ब्रिलिएण्ट आदमी हैं। खेती-बारी की बातें नख-दर्पण में हैं बिलकुल।"

श्याम बाबू के पहनावे में घुमैला पतलून। उस पर खद्दर का सफेद बुशशर्ट, मोटी भौंहें, लाइब्रेरी फ्रेम का चश्मा, बड़ी-बड़ी दृढ़-प्रतिज्ञ आँखें, हाथ के पंजे में स्वस्थता का संकेत। श्याम बाबू धीमे हँसे। लगता है, ऐसे परिचय के वह आदी हैं। मोटे पंजे को निताई के मुँह के सामने हिलाकर बोले, "यहाँ की असली बात तो है लैटेराइट सोएल? इसे याद रखने पर और कुछ जानने की जरूरत नहीं।"

उत्सुक आँखों सुव्रत ने भलेमानस के कामकाजी मुखड़े की ओर ताका। भले आदमी ने कहा, "गैंजेटिक सोएल की जो असुविधा है, वह यहाँ नहीं है। यहाँ दो काम है—बाण्ड और टेरस कल्टिवेशन, जो गैंजेटिक बेल्टसोएल में सम्भव नहीं है। लिहाज़ा यहाँ थोड़ा इमेजिनेशन से काम लेने से ट्रिमेण्डस पॉसिबिलिटी है।"

"आप जो बातें बता रहे हैं, वह सब हो रही है? *किसान आपके कहे अनुसार खेती कर रहे हैं?"*

सुव्रत के प्रश्न से श्याम बाबू ज़रा असहिष्णु होकर बोले, "यह क्या कुछ एक दिन में होने की बात है जनाब। हमारे-जैसे बैकवर्ड कण्ट्री में कब किसी चीज़ को लोगों ने शुरू में ही अपना लिया? विद्यासागरजी ने तो विधवा-विवाह

चालू किया। कै यंगमैन विधवा-विवाह कर रहे हैं साहब ?"

इसपर कुछ कहा नहीं जा सकता। श्याम बाबू ने खास तौर से समझाया कि इन प्रचेष्टाओं को ठीक व्यापारी की बुद्धि से लेने से नहीं चलेगा। जरूरत पड़ने पर ऐसे प्रोग्राम के पीछे करोड़ों-करोड़ रुपया ढालना पड़ेगा। उससे फ़ौरन क्या लाभ होगा, तुरत खेती की इल्ड कितनी बढ़ेगी, इस हिसाब से देखने के पीछे जो बुद्धि है, वह पटवारी बुद्धि है। उससे देश आगे नहीं बढ़ता। "पूरे मामले को एक पर्सपेक्टिव देना होगा" श्याम बाबू ने अब सारे संशय दूर कर दिये, इस ढंग से अपनी बात ख़त्म की।

इसके बाद फिर भाषण। शायद पूड़ी-मांस की भोज-सभा को एक 'पर्सपेक्टिव देने की चेष्टा। इसके आयोजक गोया यह कहना चाह रहे हों कि यह कोई मा़मूली भोज-सभा नहीं है, यहाँ महत्त्वपूर्ण विषयों की आलोचना होगी, देश के भविष्य-निर्धारण की चेष्टा होगी, ताकि आये हुए अतिथियों के पूड़ी-गोश्त के सद्व्यवहार में विवेक का दंशन न रहे। जिसमें वे एक गुरुत्वपूर्ण भूमिका में इस भोज-सभा में सम्मिलित हो सकें।

भाषण में मिस्टर दे ने आत्मत्याग की बात कही। देश के चारों ओर सृष्टि-यज्ञ चल रहा है—खलिहानों में, कारख़ानों में। छोटे-छोटे स्वार्थों को छोड़ना पड़ेगा। व्यापारी अपना स्वार्थ छोड़ें, इसी तरह जो सरकारी मुलाजिम हैं, वे भी आत्मत्याग करें। "याद रखिए, कम्युनिटी डेवलपमेण्ट के जरिए यदि सचमुच ही गाँवों की तरक़्क़ी करनी है, तो सिर्फ़ नौकरी करने से नहीं होगी।"

मिस्टर दे का भाषण समाप्त होते ही सुव्रत ने अचम्भे से देखा कि मिस्टर दे के पास निताई बोलने के लिए खड़ा हुआ है। सबकी भूख तेज हो रही थी, अच्छे घी की गन्ध से वह अब और तेज हो गयी थी। अब भाषण और ख़ास करके स्थानीय ब्लॉक डेवलपमेण्ट अफ़सर का भाषण, किसी को बरदाश्त नहीं। कोई-कोई नाख़ुशी से, कोई-कोई करुणा मिले कौतूहल से निताई की ओर ताकने लगे। सुव्रत ने हैरान होकर देखा, जोश से सुव्रत का चेहरा थम-थम कर रहा है। आँखें आँसू-भरी, गला फँसा हुआ। दो-तीन बार खाँसने की कोशिश करके काँपते गले से निताई ने कहा कि मैं अपनी तनखा से हर महीने सौ रुपये कम लूँगा और इस काम में प्रोत्साहित करने के लिए वालण्टियरों में बाँट देने की व्यवस्था करूँगा। निताई जिस प्रकार से उछलकर खड़ा हुआ था, वैसे ही वह बग़ल की कुरसी पर धप्प से बैठ गया।

निताई का वह थमथम भाव वहाँ इकट्ठे लोगों में फैल गया। किसी-किसी ने अपनी सिकोड़ी हुई भौंहों, फुलायी हुई नाक या करुणामिश्रित हँसी से इस नाटकीय प्रस्ताव का विरोध किया। उनकी हालत से लगा कि किसी दिग्विजयी

बिजनेस फ़र्म के बोर्ड की बैठक में कोई नंगा पागल फस् से घुस पड़ा है। लोगों को थोड़ा-थोड़ा डर भी हुआ। किसी-किसी ने कनखी से मिस्टर दे के चेहरे पर के भाव को भाँपने के लिए ताका। मिस्टर दे ने धीमे से निताई की भर्त्सना की, "आपके पागलपन की बात आपकी स्त्री से कहनी होगी।" और चारों ओर के लोगों ने तुरत राहत की साँस ली। इस बेतौर स्थिति को मिटाने के विचार से एक जन चिल्ला उठे, "एक पाँत अब बिठा दो। फिर कादो-पानी में लौटना पड़ेगा।" निताई के चेहरे पर किसी ने स्याही फेर दी। उसका वह तमतम करता हुआ उद्भासित मुखड़ा हँसी के अभिनय से रुआँसा-सा, बुद्धू-सा दिखा।

इसके बाद सभा जम गयी। ज्यादा प्रकार जरूर नहीं था, पर ऐसे गँवई गाँव में पक्के के मकान में बैठकर अच्छे घी की पूड़ी और मांस खाने में आनन्द आता है। और फिर मिस्टर दे की मौजूदगी में इस मामूली खाने-पीने की बात और भी अर्थपूर्ण है। मिस्टर दे सबको सुना-सुनाकर लेकिन धीमे गले से कहते रहे, पण्डित नेहरू ने उन्हें कब क्या कहा। "नेहरू भी मेरी बात से सहमत हुए।" या "नेहरूजी दरअसल हमपर-आपपर ही निर्भर किये हुए हैं। हम गाँवों में क्या कर सकते हैं, इसी पर भारतवर्ष का भविष्य है" या "पिछले साल जेनेवा में भी बोले—जानते हैं न, उन लोगों के सबसे बड़े एक्सपर्ट हमसे सहमत हुए"—मिस्टर दे की इन बातों से एक ग़ज़ब की कुहक की सृष्टि हुई। और उस कुहक के राज्य में इकट्ठे अफसरों, ब्लॉक के कर्मचारियों के साथ-साथ अपने अन-जानते निताई, सुव्रत घूमते रहे। भारतवर्ष का ग्रामाचल एक प्रकाशमान रंगमंच और वहाँ मिस्टर दे जादूगर की नाईं बातों से इन्द्रजाल की सृष्टि करने लगे। उस रंगमंच में सैकड़ों करोड़ रुपये का फर्टिलाइजर तैयार होने लगा, हजारों-हजार मेगावाट बिजली ग्राम-ग्रामान्तर के झोंपड़ों को भी आलोकित करने लगी। और अब झोंपड़ी ही नहीं रह रही है, रह नहीं रहे हैं महाजन, रह नहीं रहे हैं भारत के किसानों के सैकड़ों सदियों के ऋण और दरिद्रता।

हठात् अखबार के विशेष प्रतिनिधि बोल उठे, "जो कह रहे हैं, सब ठीक है। मगर आप लोगों की प्रोहिबिशन पॉलिसी को मैं सपोर्ट नहीं करता। थोथे आदर्शवाद से तो डेवलपमेण्ट नहीं होता। यह तो सोचें कि आप कितने करोड़ रुपयों के रेवेन्यु का नुकसान उठा रहे हैं।"

"इकनॉमिक प्लैन में अवश्य यह पॉलिसी नहीं टिकती। यू आर राइट", मिस्टर दे ने कहा।

"अजी जनाब, आज़ादी हासिल की है, इसलिए हम लोग तपस्वी होंगे क्या? हम अच्छा खायेंगे-पियेंगे, कपड़ा-कुरता पहनेंगे, इसी का नाम तो आज़ादी है।"

जिले का प्रशासक एक छोकरा-सा आइ. ए. एस. अफ़सर। उन्होंने सँभाल दिया, "डोण्ट वी टू हार्श ऑन हिम्। शराव पीने के लिए स्वाधीनता है या नहीं, दैट्स ए मैटर ऑव ओपिनियन। परन्तु इसके लिए हमारे गेस्ट को...."

पत्र-प्रतिनिधि को लक्ष्य करके श्याम वावू ने अपनी ज़ोरदार आवाज़ में कहा, "हम लोगों को सर, वीच-बीच में एकाध प्याला अच्छा ही लगता है। वट यू डोण्ट नो विलेजेस। ताड़ी पीकर साले पड़े हैं!"

वातचीत का सिलसिला फिर सही सिलसिले से चक्कर खाते हुए चला आया। "सो यू सी" कहकर ही मिस्टर दे ने उत्साह की और एक वोतल खोल ली और घट-घट करके फेनवाले उस उत्साह को सभी पीने लगे। श्याम वावू ने जोश में कहा, "असली वात तो सर, लैटेराइट सोएल....।" ज़िला प्रशासक ने भौंहें सिकोड़ीं लेकिन अन्त तक वह भी जम गये।

जमे नहीं सिर्फ़ दो आदमी। वे दोनों सभा टूटने के कुछ पहले ही उठ पड़े थे। और, जैसे वे आये थे, वैसे ही चाँदनी में मेड़ों से होते हुए लौट गये। धपधप प्रकाश में भी निताई का करुण मुखड़ा मालूम हो रहा था। अपनी विशाल छाती फैलाये झूमते हुए चलने के वदले सिर झुकाये वह सुव्रत के पीछे-पीछे चला। सुव्रत उसके इस नये वन्धुत्व से तृप्त नहीं हुआ। पिछले दस साल से, सच पूछिए तो पूरी जवानी-भर से उनका यह वन्धुत्व रहा है, और यह वन्धुत्व प्रतिवाद पर खड़ा है। निताई को सुव्रत ने जैसा देखा था, गाँव में वह उसे वैसे ही उत्साहित ब्लॉक-अफ़सर के रूप में देखना चाहता है। वह तो प्रतिवाद की इस भूमिका को छोड़ने के लिए गाँव में आया है। जो अशान्त गुंजन पिछले दस वर्षों से उसके कानों में गूँजता रहा है, उसे शान्त करने के लिए आया है। भारतवर्ष में क्या कहीं कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ सत् होते हुए भी कारगर हुआ जा सकता है, जहाँ उसके पिता की तरह, मिस्टर दे की तरह, या (जो सुव्रत के लिए और भी भयंकर है) उसकी पार्टी के किसी-किसी नेता की तरह केवल वातों का फ़ानूस उड़ाकर ही जिन्दगी को खत्म नहीं करना पड़े?

एक लम्वा-सा आदमी रोशनी की उलटी तरफ़ से आ रहा था। निताई ने आवाज़ दी, "कौन है?"

"मैं मदन हूँ। ब्लॉक वावू?"

"यह क्या है?" मदन के वग़ल में कुछ देखकर निताई ने कहा।

मदन हँसा। उसने अजीव तरह से खींचकर गले से एक घड़घड़ आवाज निकाली।

"महुआ! अखवार का एक आदमी आया है साहव कलकत्ते से!....चौकीदार ने उसे पकड़ा था। जैसे ही कहा, कलकत्ते का हूँ कि छोड़ दिया।....चलेगी?"

"भाग यहाँ से।" निताई चीख उठा।

कुछ कदम बढ़ते हुए भी उन्हें निताई की हँसी सुनाई पड़ती रही।

सात

पत्थर पर फावड़ा चलाने से क्या फायदा? निर्मल ने सुव्रत से कहा था। लोग जिसे स्वीकार नहीं करना चाहते, उसके लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने में कौन-सी लोकनीति है? अँगरेज़ों के शासन के खिलाफ जबतक लोग उत्तेजित नहीं हुए, तबतक बंगाल का तरुण सम्प्रदाय किस प्रकार छटपटाता रहा! गुप्त समिति कायम करना, बम बनाना, पिस्तौल चलाना, उसके बाद जान की बाज़ी लगाकर चटगाँव अस्त्रागार की लूट। आज उन्हीं तरुणों का आत्म-विसर्जन एक चौंकाने वाली घटना है—बहुत हुआ तो अखबारों में रविवासरीय पृष्ठ पर रोमांचकारी कहानी या लोकप्रिय फिल्म। परन्तु आज का यह आत्मत्याग राजनीतिक नेताओं के गला कँपानेवाले भाषण के सिवाय और क्या देगा?

अवश्य सुव्रत इस दलील को नहीं मानता। उसकी राय में राजनीति में जिस रास्ते से कामयाबी मिलती है, वही एकमात्र रास्ता नहीं है। और, कामयाबी भी क्या? गान्धी को भुनाकर दस-पन्द्रह साल चलाया है, उसके बाद नेहरू को भुनाकर और भी पन्द्रह या उससे भी ज्यादा। उसके बाद? हमारे जीवन में वास्तविक समाजवाद चाहे न आये, भारत में जरूर आयेगा।

परन्तु तात्त्विक विरोध रहे, निर्मल को सुविधावादी कहकर वह जितना ही ठट्ठा करे चाहे, उसका वह सुविधावाद ही सुव्रत को आकर्षित करता है। निर्मल ने ठीक ही लिखा है, हम लोग क्या अपने बाप-चाचा की भूमिका की पुनरावृत्ति नहीं करेंगे? निर्मल की चिट्ठी पढ़कर वह खीजा था, पर सदा ही उसने ऐसे ही ठण्डे भाव से अपने सामने की समस्याओं को पकड़ने की चेष्टा की है। सुव्रत जब राजनीतिक उत्तेजना से आलोड़ित हुआ, उसने एक के बाद दूसरा जुलूस निकाला, घण्टों पार्टी की घरेलू बैठक में अपनी समालोचना से मुँह से झाग निकाला, उस समय बरसों निर्मल ने एक ही वक्तव्य प्रस्तुत किया, राजनीति को मैं ठीक-ठीक समझता नहीं। सुव्रत के काम की उसने कभी आलोचना नहीं की, तारीफ भी नहीं की। पक्ष में या विपक्ष में उसे कोई उत्तेजना नहीं। अपनी सीमा उसने बाँध रखी है। अपने ताऊ प्रबोध बाबू के बारे में भी वह, उनके बेटे का जो मत है. वह मत

नहीं रखता। प्रबोध बाबू के कहने और करने में जो दूरी उनके बेटे को दु:ख देती है, निर्मल के खयाल में वह अवश्यम्भावी है। 'तुम अगर उस कुरसी पर बैठते, तुम्हें भी ठीक वैसा ही बोलना पड़ता। चूँकि तुम्हारी अर्थनीति का ज्ञान और भी प्रखर है, इसलिए शायद बातों को और भी क़ायदे से कहते। और फिर मिनिस्टरों को करणीय भी क्या है—सेक्रेटरी जो लिखता है, उसपर दस्तखत करने के सिवाय ?'

बात को सुव्रत आजकल बिलकुल उड़ा नहीं दे पाता। यदि मत का प्रबल विरोध हो, तो पिताजी मन्त्रित्व से इस्तीफ़ा दे सकते हैं। लेकिन ऐसा न हो तो जैसा कि निर्मल ने कहा, सही करने के सिवाय और गला कँपाते हुए भाषण देने के अलावा और क्या करणीय है? कुछ है, मसलन, भवेन गांगुली-जैसों को नौकरी दिलाना, या बुलबुल के पति की तरह कुछ लोगों के तबादले की सिफ़ारिश। यहाँ भी तो क्षमता सीमाबद्ध है। होते केन्द्र के मन्त्री तो कुछ कर सकते थे। देशी-विलायती फ़र्म के आयकर की फाँकी देने की बाबत कमीशन में दो-तीन हजारी कुछ नौकरियाँ देने का अधिकार भी हाथ में होता। 'साले लोग हमें पता ही नहीं देते', किसी साहबी फ़र्म के बारे में अपने पिता की सखेद उक्ति सुव्रत को याद आयी।

निर्मल का निरुत्तेज सतर्क स्वभाव उससे एकबारगी नहीं मिलता, फिर भी बीच-बीच में उसकी विपरीतता ही उसे आकर्षित करती है। इसीलिए लक्ष्मीपुर आने के पहले निर्मल का एक काण्ड देखकर सुव्रत अचम्भे में आ गया था। काण्ड यानी बचपना! बालिग़ आदमी जिसे बहुत ही सहज में भूल जाता है, निर्मल उसी बचपना में मत्त हो उठा है। निर्मल के आत्मसचेतन चेहरे पर उस दबी लाज को जब-जब याद करता है, सुव्रत को तब-तब मजा आता है। दरअसल अभी भी नाबालिग़ और सेण्टिमेण्टल है, इसमें सुव्रत को सन्देह नहीं।

बात कुछ भी नहीं। सुव्रत के लिए निहायत कुछ नहीं। उसके यशोरवाले घर के पास एक मुसलमान वकील रहते थे। उनके परिवार से काफ़ी आदान-प्रदान था। प्रदेश के बँटवारे के बाद वे सज्जन पाकिस्तान में अधिकार की चोटी पर पहुँच गये। सुव्रत को ठीक-ठीक याद नहीं, लेकिन उसने अखबार में देखा है, वह जनाब कभी मुस्लिम लीग, कभी अवामी लीग, कभी और किसी लीग के नेता रहे और धीरे-धीरे ढाका तथा कराची में कभी मन्त्री, कभी स्पीकर, और कभी एम्बेसेडर हुए। कभी यह सुनने में आया, उनके नाम हुलिया है। फिर कई दिनों के बाद गवर्नर ने उन्हें दावत दी। ग़रज कि सुव्रत के पिता से भी अधिक प्रातःस्मरणीय एक राजनीतिक नेता के पद पर उन्नीत हुए हैं वे। और उनकी छोटी बेटी से निर्मल कुमारजी का प्रेम चल रहा है!

प्रेम के बारे में मज़ाक उड़ाते हुए भी सुव्रत स्थिर नहीं रह पाता, इसलिए कि जो हो रहा है, वह कुछ भी नही है। एक कमउम्र की लड़की का मतिभ्रम। बचपन की याद हर किसी को अच्छी लगती है। दस-बारह साल की उस लड़की को भी शायद निर्मल ने कई बार साइकिल की केरियर पर बिठाकर घुमाया है। उस लड़की का एक बड़ा भाई भी निर्मल का सहपाठी रहा है। वह भी कराची में किसी अखबार के मुख्य सम्पादक हैं। 'देखो जरा यह काण्ड' कहते हुए सलज्ज हँसी हँसकर निर्मल ने नीले कागज पर लिखे कई खत सुव्रत को दिखाये थे। बस रो-गाकर लिखने में सुव्रत ने कुछ चित्ताकर्षक नही पाया। 'बच्ची है' सुव्रत ने अप्रतिभ भाव से कई बार कहा था। या 'बँटवारा उस लड़की को बुरी तरह खला है।' या 'उसे कलकत्ते में पढ़ने की इच्छा थी'। लेकिन चिट्ठी पढ़कर सुव्रत के मन में यह सब कुछ भी नही आया था। 'न्युरोटिक', वह कहने जा रहा था, पर निर्मल के मुँह की ओर देखकर कह नही पाया। ज़रा रुष्ट होकर बोला था, "बँटवारे को लेकर मिनमिनाने से क्या हासिल ?"

"वही क्या कम है !" निर्मल ने सतर्क-सा जवाब दिया।

"तुम क्या उससे ब्याह करने की सोच रहे हो ?"

"यह सब क्या कह रहे हो तुम ! शी इज जस्ट ए पेन् फ्रेण्ड", निर्मल के गले में दबी उत्तेजना।

"इतना बिगड़ क्यों रहे हो ?"

"नहीं-नहीं, बिगड़ नही रहा हूँ, बिगड़ नही रहा हूँ।"

आठ

दो-तीन साल हुए, मुखर्जी के गुहाल के पास बीज और खाद-वितरण का केन्द्र खोला गया है। परेश नाम का जो छोकरा उसकी देख-भाल करता है, वह बड़ा उत्साही है। नजरुल-संगीत, द्विजेन्द्रलाल के स्वदेशी गीत, रवीन्द्र-संगीत गला खोलकर गाता है। पर, खाद या बीज नही पहचानता। आलू की खाद कुछ दिनों से आकर पड़ी है। बेचारा उसका खयाल नही रख सका। इधर आलू के खेत तैयार करने का समय निकल गया। मामले की खोज-खबर के लिए मुखर्जी सोनामुखी गये थे। लौटकर उन्होंने परेश को डाँटा। उसके बाद खाद-वितरण हुआ। लिहाजा इस साल आशानुरूप फसल की कम सम्भावना है।

गुड़ वनाने का काम भी अव तक ढीला था। मुखर्जी और नवीन के कोल्हु-आड़ में ही गाँव के ईख की पेराई होती है। कल रात से ही ईख की पेराई की आवाज़ आ रही है, स्त्री-पुरुषों का कोलाहल, वकवास, हवा में गुड़ वनने की गन्ध। खा-पीकर सुव्रत लेटे-लेटे अँगड़ाई ले रहा था। आसमान में वादल नहीं, फिर भी गुड़-गुड़ की आवाज आ रही थी कुछ-कुछ। ठण्डी हवा भी वह रही थी। शायद दूर कहीं वारिश हो रही हो।

कैप्स्टेन सिगरेट का एक टिन लिये मुखर्जी कमरे में आये। छप्पर से सिर लगेगा, इसलिए माथा झुकाये मुँह को वढ़ाकर वोले, "आप अभी तक हैं ? मैंने सोचा था, अव तक भाग चुके होंगे।"

उसके वाद सुव्रत के चेहरे के अजीव भाव को देखकर वोले, "क्यों, ग़लत कहा ? शौक़ में यह ग़रीवियाना कव तक चलेगा ?"

सुव्रत ने भौंहें सिकोड़ीं। तो क्या मन्त्री के वेटे का परिचय अखवार के पहले पन्ने पर गरम खवर की तरह निकल गया है ? पहले भी ऐसा हो चुका है। परहेज़ और ज़रा दुविधा मिले भय तथा स्तावकता से ढल-ढल भादो में वह कई वार वह चुका है। मुखर्जी के मुँह की ओर ताक-ताककर सुव्रत सोचने लगा, कल सवेरे ही वोरिया-वसना समेटना होगा क्या ? वैसी विपदा शायद नहीं है। खुले टिन को उसकी ओर वढ़ाते हुए मुखर्जी ने कहा, "इसे अपने ही पास रख लीजिए।"

"मज़े में तो हूँ। यह सव क्यों कर रहे हैं ?"

"आप ऐसा न कहें सर। कलकत्ते के हैं और गाँव में रह रहे हैं....सो, पन्द्रह-एक दिन तो हो गये....यह क्या मामूली वात है ! गाँव उजाड़कर लोग शहर जा रहे हैं, पोखर उजाड़कर मछलियाँ कलकत्ता जा रही हैं। अच्छा साहव, यह कलकत्ता जाना वन्द नहीं कर सकते ? आखिर गाँव-घर में भी तो लोग-वाग रहेंगे, क्यों ?"

उसके वाद जेव से वीड़ी निकालकर सुलगाते हुए वोले, "देखा न, कई घण्टे के लिए आकर दे साहव ने पूरे गाँव को कैसा जादू दिखा दिया !"

"यह जादू क्या वला है ?"

"इतने-इतने लोग, इतनी वात। यहाँ तो साहव, सभी मरे हुए हैं। सुवह होती है, शाम होती है। शाम होती है, सुवह होती है। ऐसे में दे साहव-जैसे आदमी के आ जाने से मन को वल मिलता है। जव यह सुनता हूँ कि सारा देश वड़ी तेज़ी से आगे वढ़ रहा है...."

"अवकी सरदियों में क्या वोया ?"

"वात पसन्द नहीं आयी शायद ?"

"पसन्द क्यों नही आयेगी। दे साहब पण्डित आदमी हैं। बहुत मुलझी बातें करते हैं।"

"कहिए, करते है न !" मुखर्जी की आँखें उत्साह से दमक उठी। उसके बाद उन्हें क्या याद आ गया। उनकी खालता कमीज में जेब नही है। कमीज के नीचे कपड़े की गाँठ से उन्होंने मुड़ा हुआ एक टुकड़ा कागज निकाला। कायदे से उसके भाँज को खोलते हुए शरमीली हँसी हँसकर बोले, "देखिए तो, यह ठीक है या नही ?"

सुव्रत अवाक् हुआ। ब्लॉक डेवलपमेण्ट अफसर के नाम अँगरेजी में लिखी एक अरजी पर अनमना-सा आँखें फेरते हुए बोला, "ठीक ही तो है।"

"नही-नही, अँगरेजी ठीक है न ? मेरा मतलब, भाषा ठीक है न ? जरा देखिए सर।" भले आदमी ने कुछ अधीर होकर कहा।

"सुव्रत ने हाथ के लिखे बड़े-बड़े अक्षरों पर फिर अनमनी-सी नजर डालते हुए कहा, "हाँ, ठीक ही तो है।"

"नही-नही, आप देख नही रहे है," मुखर्जी बाबू हठात् असहिष्णु हो पड़े। उसके बाद अपने बहुत ही आत्मसचेतन मुखड़े को नीचे झुकाकर विनम्र छात्र की तरह पूछा, "अच्छा सुव्रत बाबू, 'इफ' के बाद क्या 'देन्' होता है ?"

सुव्रत बुद्धू की नाईं मुखर्जी के मुँह की ओर ताकने लगा। देखा, मुखर्जी के चेहरे पर विनय की करुण भंगिमा है। मानो यही पूछने के लिए ही इस दोपहरी में कमरे में आना हुआ, यहाँ तक कि सिगरेट का टिन शायद इसी-लिए है।

"इफ् के बाद क्या देन् होता है ?" गला खखारकर मुखर्जी ने फिर पूछा।

"क्यों, हो या न हो, आपका क्या आता-जाता है इससे ?" सुव्रत ने उत्ते-जित होकर पूछा।

"बिलकुल आता-जाता है सर, बिलकुल आता-जाता है।" मुखर्जी ने शान्त गले से कहा, "सोनामुखी में एक आदमी ने कहा भी कि मेरा सब कुछ ठीक है, पर अँगरेजी....मतलब स्कूल में ठीक से पढ़ा तो नही है न, वरना मेरे एक चाचा, समझ लीजिए कलकत्ता पुलिस के डिप्टी कमिश्नर साउथ और एक....''

सुव्रत के कानो में और कुछ नही घुसा। एकाएक उसे लक्ष्मीपुर में रहना ही अलोना लगा। कलकत्ते के उस अकारण-गर्वित असहाय मध्यवित्त मर्दमानम का भूत इस राढ़ बंगाल के आदमी को खदेड़ा चल रहा है। यहाँ के लोगों की क्या इसके सिवा निजी कोई तसवीर नही है ? कोई भविष्य नही ?

सुव्रत ने हाथ उठाकर कहा, "आपने अट्ठारह मन धान उपजाया, आलू उपजाया, आप पूरे गाँव के आदर्श हैं। जाने किस फोकटिया ने आपसे क्या कह दिया और आप सोच रहे हैं।" उत्तेजना से सुव्रत का गला काँपने लगा।

मुखर्जी और भी सिटपिटा गये।

"हम करें क्या सर, कहिए! आखिर हमें काम तो करना है। अँगरेज़ी जानने से काम-काज में सुविधा होती है, इसी से कहता हूँ।"

"खेतिहर को भी अँगरेज़ी सीखनी होगी? खेतिहर के घर भी 'बावा ब्लैक शिप, हैव यू ऐनो ऊल'? अपना देश नाम की कोई चीज़ नहीं रहेगी? सब फाँका, फर-फर काग़ज़ का फ़ानूस?"

"नहीं-नहीं साहब, आप नाराज़ हो रहे हैं ख़ामखा। लीजिए, सिगरेट पीजिए।" मुखर्जी ने टिन से सिगरेट निकाली। उसके बाद धीमे-धीमे कहा, "आप तो बिगड़ गये और छुट्टी मिली लेकिन बिगड़ने से हमारा तो काम नहीं चलेगा। देश की हवा जिधर को बहती है, उसी ओर हमें भी चलना होगा।"

"देश की हवा अगर हमें बन्दर बनाये तो आप भी बन्दर बनेंगे?"

"यह सब क्या कह रहे हैं आप?"

सुव्रत ने अपने तईं कहा, "आप लोग ख़ुद ही नहीं जानते कि आप कितना बड़ा काम कर रहे हैं। अपनी भात-रोटी के लिए हम हर साल विदेश के आगे हाथ पसारा करते हैं। आप लोग हमें बचाने की कोशिश कर रहे हैं। आप लोग भी अगर इफ़् के बाद देन् करें तो देश कहाँ जायेगा?"

"क्या कह रहे हैं आप! ख़ैर, आराम कीजिए। हम लोगों का गुड़ बनाने का काम शुरू हो गया। गये हैं उस ओर?"

भले आदमी सावधानी से सर झुकाकर जैसे आये थे, वैसे ही सावधानी से चले गये।

नौ

गुड़ का काम ज़ोरों से शुरू हो गया है। गाछ की फाँक से नज़र आता है, दो बड़े अठचलिए के नीचे स्त्री-पुरुषों का जमघट। तीन विशाल-विशाल कड़ाहा में ईख के रस में आँच दी जा रही है। आस-पास आराम कर रहे हैं मुखर्जी के मजूरा जलधर, शक्ति, और भी कई जने। मदन का लड़का हाबा भी आ जुटा,

हैं। निगरानी करते फिर रहे हैं नवीन के दो चाचा। एक ओर नागरी[1] की ढेरी। बग़ल के छपरैल में ऊख की पेराई हो रही है। चाँद की मद्धिम चाँदनी में दस-बारह आदमी को ईख के बोझे के पास सुस्ताते देखा जा रहा है। पाँचेक बागदी औरतें इन्तज़ार कर रही हैं। गुड़-भरी नागरी माथे पर उठाकर शाली नदी के उस पार बाँसखोला पहुँचानी है। खेप-पीछे आठ आना।

जलधर की उम्र हो आयी है। मज़बूत नाटा-नाटा-सा गठन, पूरा सर गंजा। उम्र ठीक मालूम नहीं होती। इसी पर बातें हो रही थीं।

"पूछता है, उम्र क्या है। मैंने कहा, तीस-चालीस। है कौन वह ?"

"पुलिस होगे।" उबलते रस को चलाते हुए शक्ति ने कहा।

"फिर कहा, जब आँधी में राधा गोविन्द मन्दिर का शिखर गिरा, तब उम्र कितनी थी ? मैं उस समय हावा जितना बड़ा था। सुनकर साले बोले, आपकी उम्र साठ साल है।"

हाफ़पैण्ट पहने शक्ति उम्र की तुलना में देखने में छोटा लगता है। वह बोला, "क्या पता, क्या दावँ लगाये घूम रहे हैं। हो सकता है, पुलिस के आदमी हों। उम्र ज़्यादा सुनकर घर की कुर्की करायें।"

एक टुकड़ा चाँदनी कड़ाह के मुँहे पर पड़ने से चकमक। उस ओर देखते हुए जलधर ने कहा, "फिर कहा, कितने लड़के हैं ? कितने लड़के हैं, मैं क्या जानता हूँ ? मैंने कहा, आप क्या मेरे बाप के ठाकुर हैं ? कि लड़के को पालेंगे ?"

चूल्हे में लकड़ी का चैला डालते-डालते जलधर ने जमुहाई ली। मन ही मन बड़बड़ाया, "कौन-सी बीमारी हुई थी, मैं जानता हूँ भला ? आपके हेल्थ सेण्टर का डॉक्टर आया था। कोई हगते-हगते मरा, कोई बकते-बकते मरा। मैं क्या यह जानता हूँ ?"

"तुम्हारा रतन पेड़ से गिरकर मरा है।" शक्ति ने याद दिला दी।

"हाँ, रतन गया है पाँव फिसलने से। सोनामुखी ले गया था। हड्डी तोड़ ली थी या क्या हुआ, मर ही गया।"

"कब मरा वह ?"

"जिस बार काल्टू का बैल मरा।"

"आदमी मरा कि जी रहा है, भगवान् जानें।"

"हाँ।"

इसके बाद वे लोग इस तरह से बोलने लगे, जैसे मौत उनकी पड़ोसिन हो। जिस पड़ोसिन से उनकी आमने-सामने मुलाक़ात न होने पर भी जिसकी उपस्थिति

१. गुड़ रखने का मिट्टी का एक बरतन।

मकानों के पीछे में

का अनुभव वे लोग हमेशा करते हैं। वास्तव में शक्ति-जलधर के निकट जन्म और मृत्यु में कोई फ़र्क़ नहीं है। दोनों ही नदी के पानी की तरह सदा उनके वदन पर पछाड़ खाते रहते हैं। सुव्रत की सांख्यिकी उनके लिए दुर्बोध्य है। किसके कितने लड़के हैं, किसने क्या किया, क्या नहीं किया, कौन कैसे मरा, यह सब अप्रासंगिक है। सबको इस धराधाम में कई दिन के लिए धूल में खेलना है, उसके बाद 'विदाई लेनी है। उनमें से कोई रतन की तरह हठात् गाछ से पाँव फिसलकर विदाई लेता है, इसीलिए याद रह जाता है। नहीं तो ये घटनाएँ ऐसी रोजमर्रे की हैं, इतनी स्वाभाविक कि याद रखने योग्य नहीं।

"टगर क्या कहती है?" जलधर ने फिर जमुहाई लेकर पूछा।

"इस साल नहीं होगा। घर में एक पैसा नहीं है।"

"वह लँगड़ा ही लेंगे उसे।"

"मैंने कहा, हम दोनों एक घर देखें। दोनों खटेंगे, खायेंगे।....साली बीबी बनेंगी।"

"उम्र है न!" ईख की ढेरी से टिकते हुए जलधर बोला, "उम्र रहने पर सभी बीबी हैं, सभी बादशा। हम सब तो बूढ़े हो गये।" इसके बाद बाहर चाँद की रोशनी में धप-धप सफ़ेद धान के गोले की ओर देखकर कहा, "तेरी टगर-जैसी तीन को रखे हुए हूँ।"

शक्ति ने जोर से कहा, "तुम लोगों की जब उम्र थी, लोग गेहूँ खाते थे।"

"दुर्!"

"अधपेटा खाकर रहते थे?" शक्ति का गला ऊँचा हो गया।

"दुर्, दुर!"

"तुम्हारा समय होता तो दस को रखता, दस को।" शक्ति ने ताली ठोंक-कर कहा।

जलधर अभी ताड़ी के नशे में है। ऐसी हालत में औरत रखने की बात करता है। जब अन्न के लिए ऐसा हाहाकार नहीं था, तब और भी अन्य बातों की तरह औरत रखना भी सहज था, यही उसका कहना था। ऐसा कहने में यदि बीच-बीच में रुकावट आयी तो बिगड़ उठता है। बड़बड़ाया, "वह लँगड़ा ही टगर को लेंगे, हां।"

शक्ति ने अचानक गला धीमा करके कहा, "उस लँगड़े से सौ-दो सौ रुपये लो। तुम्हें बाप कहूँगा। सोनामुखी में एक साइकिल-रिक्शा खरीदूँगा। यों ही चुन-चुनकर खाऊँगा कै दिन?"

"तू टगर को लेकर भागेगा? फिर तुम्हें देंगे ही क्यों?"

शक्ति एकटक जलधर की ओर ताकता रहा। उसके बाद आहिस्ते-आहिस्ते

बोला, "एक साल में कुछ नहीं कहने का। एक साल गेंदा के पास रहे। उसके बाद मैं आऊँगा।"

जलधर का नशा फीका होने लगा। उसको चमकती चाँदी या चाँदनी। निंदाया भाव जाते रहने से आँखें भी झक-झक करने लगी।

"उसके बाद ?"

"उसके बाद देखा जायेगा," शक्ति ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

"मदन क्या कहेगा ?"

"वह बेटा बोंड़ा साँप है, ताड़ीखोर। वह कर नहीं सकेगा कुछ।"

जलधर ने बीड़ी सुलगायी। गुड़ में रावा हो रहा था। अच्छी खुशबू आ रही थी। बीड़ी में कश लगाते-लगाते जलधर ने कहा, "अच्छा, कहूँगा।"

उधर जब गुड़ में आँच लगायी जा रही थी, टगर, कालो की माँ, गेंदा की दीदी, टगर की और भी दो-तीन चेली-चाटी गुड़ की नागरी बस-पड़ाव ले जाने के इन्तजार में थीं। दो-एक मच्छर पीं-पीं कर रहे थे।

"वे सबके सब वैसे ही हैं। वह जो वहाँ जलधर बैठे हैं, वह भी वैसे ही।" कालो की माँ के स्वर में आक्षेप नहीं। यह गोया जलवायु-जैसी स्वाभाविक घटना है। कालो की माँ जमाने से कालो के बाप के साथ नहीं रहती। लेकिन कोई मुसीबत आन पड़ती है तो वह आता है। कालो की माँ यही बतिया रही थी। कालो जब पेट में आया था, कालो का बाप अपनी घरवाली को छोड़कर बग़ल के गाँव की एक उसी की उम्रवाली विधवा के साथ भाग गया था। उसके बाद जब उसके चेचक निकला, किसी ने देखा-सुना नहीं, तो दरद-पीर लिये कालो की माँ के पास आया।

साँझ के बाद सब नागरी एक-एक करके क़रीने से रखी गयी। चाँद है, चलने में कठिनाई नहीं होगी। औरतों का दल धीरे-धीरे चला गया। टगर अछता-पछताकर उठी। आग की आँच से दूरी पर जलधर का चेहरा दीख रहा है। शक्ति की भी आवाज़ आ रही है। टगर को लगता रहा, वे दरअसल एक ही आदमी हैं। शक्ति ने उससे कहा है, वह सोनामुखी या दुर्गापुर चला जायेगा। साइकिल-रिक्शा चलायेगा। यदि पड़ता नहीं पड़ेगा तो बस की कण्डक्टरी करेगा। लेकिन घर बसाने के इस वायदे के पीछे और भी एक आदमी मानो बैठा है, जलधर की तरह जिसने बीवी को छोड़ दिया है। मर्दों के इस द्वैतरूप—एक ओर उसका प्रबल आग्रह, दूसरी ओर उसकी अनासक्ति या दूसरी आसक्ति—टगर के मन में एक अस्पष्ट दबाव पैदा करने लगी। माथे के निठुआ को ठीक करके झटके से उसने गुड़ की नागरी को उठा लिया। एक नागरी को बग़ल में उठाया। और, अभ्यस्त पैरों वह अँधेरे-प्रकाश में निकल पड़ी।

पचास-साठ हाथ के फ़ासले पर उकड़ूँ होकर क्या तो बैठा था खेत की मेड़ पर। नागरी के अन्दर गुड़ छलक उठा। टगर ने भँवें सिकोड़ीं। सामने के रास्ते ने बस-पड़ाव की ओर मोड़ लिया है। कालो की माँ वग़ैरह नज़र नहीं आ रही थीं। मन्द प्रकाश में रास्ते के मोड़ पर कुछ अर्जुन गाछ दैत्यों-जैसे इकट्ठे खड़े।

उकड़ूँ बैठा आदमी उठ खड़ा हुआ। उस नाटे आदमी का टेढ़ा होकर खड़ा होना—टगर के वदन में आग लग गयी। उसने होंठ काटा। पिच् से थूक फेंका।

गेंड़ा लँगड़ाते-लँगड़ाते टगर के सामने आकर खड़ा हुआ। डर से वह प्रायः काँप रहा था। भयभीत स्वर में वह फुसफुसाकर बोला, "शक्ति के साथ मत जाना, मत जाना टगर। वह तुझे राह में बिठा देगा। तुझे रेल-लाइन की बस्ती में ले जायेगा। उसके बाद भाग जायेगा।....टगर....टगर...."

उत्तेजना से गेंड़ा टगर के पैरों के पास बैठ पड़ा। टगर चिल्ला उठी, "उठ जा।" भार लेकर एक ही जगह खड़े रहने से उसकी बाँह दुख रही थी। गेंड़ा के उठ खड़े होते ही टगर ने गुड़ की नागरी को हाथ में लिया। अभ्यस्त उँगली से दबाकर उसके ढक्कन को खोला। गेंड़ा मन्त्रमुग्ध उसकी ओर ताकता रहा। उसके बाद कुछ सोचने से पहले ही एक अँजुरी गरम गुड़ लेकर टगर ने उसके मुँह पर लथेर दिया। उसके बाद एक झटके से नागरी को खींचकर वग़ल से हनहनाती हुई बढ़ गयी। गाल लहर रहा है या नहीं, गेंड़ा को इसका खयाल नहीं। चाँदनी से आलोकित उस अर्जुन गाछ के नीचे खड़ा, सामने के रास्ते के मोड़ पर खो रही धुंधली-सी नारी-मूर्ति की ओर वह टुकुर-टुकुर ताकता रह गया।

दस

भाषा क्या है? भाव का विग्रह या भाव के घर में चोरी का सबसे सार्थक षड्यन्त्र? हमारे इन्द्रियों की अतन्द्र क्रिया से हमारी जो भाव-तरंगें मस्तिष्क के गर्भगृह में पछाड़ें खाती हैं, सोते-जागते—भाषा क्या उन्हें वास्तविक रूप देने के लिए है? अथवा उस भाव को इस्पात की किसी मजबूत लकीर में आँकने की साध है—एक आकाशचारी कल्पना? बल्कि आदमी को जीवन-चर्या में भाषा के प्रयोग के दृष्टान्त निकाल-निकालकर क्या यह नहीं कहा जा सकता कि भाव के

विपरीत चलने का नाम ही भाषा है ?

प्रेमी जब कहते हैं, 'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ', तो क्या ः इसका अर्थ क्या यह है कि तुम्हारे शरीर में ऐसा कुछ है· आँखें, चिकनी चमड़ी, उत्तुंग छाती, या इनमें से कुछ भी रेखा, दाँतों की पाँत फैलाकर हठात् हँस उठना, एकटक ॥ तक का गढ़न—यह सब मुझमें काम का सचार करता है ? इन सारे अंगो क क्रिया-कलाप से मैं उष्णता महसूस करता हूँ, मेरे लहू में वेग पैदा होता है ?

या मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, क्योंकि तुम मेरे जीवन का प्रायश्चित हो। मैं तो जीवन में कुछ कर नही सका, कर भी नही सकूँगा। सो तुम्हारे मिलन से अगर उस आत्मदीनता का पाप, उस ग्लानि के असह्य एकाकित्व का कुछ अंश दूर हो। तुम्हें प्यार करता हूँ, इसलिए कि मेरे प्रति तुम्हारा विश्वास मुझे अपने आपको ठगने में मदद देता है, इस जीवन को किसी सीमा तक सहनीय कर देता है।

या मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, क्योंकि तुम्हारी दोनो आँखो में अपना सर्वनाश नहीं, अपनी सन्तान की दो आँखें देखता हूँ। मेरी यह नश्वर देह पचभूत में मिल जायेगी, जैसे मेरे बाप-दादे, उनके बाप-दादे असंख्य गुजन-कलरव का इतिहास छोड़कर पचभूत में मिल गये है। हम अलबर्ट आइन्सटीन नही हैं, रवीन्द्रनाथ ठाकुर नहीं हैं, लेनिन नही है। हम लोगों के इस धराधाम के प्रेम का कोई विमूर्त रूप नही है, कालातिरिक्त कोई हस्ताक्षर नही है। जभी तुम्हारे पास आता हूँ, तुम्हें भार्या के रूप में पाना चाहता हूँ। जब मेरे पाँवो के चिह्न इस राह पर नही पड़ेंगे तब मेरा अस्तित्व, यह 'मैं' समस्त सौर-जगत् के खेलो में खेला करेगा, इस बोध की प्रशान्ति हमारे जी को नही भरती। उस समय मेरे मन में आ सकता है, किस शून्य से आकर मैं किस शून्य में खो जाऊँगा। उसके बदले मैं एक और भी सीमित सपना, पकड़ी-छुई जा सके ऐसी एक बात सोचना चाहता हूँ—अपने बेटे-पोतो की घर-गिरस्ती, जिसमें मैं जीवित रहूँगा, जैसे मेरे पिता-परदादे हममें जीवित हैं।

मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, इसमें यही तीन क्यों, और भी तीस प्रकार के भाव हो सकते हैं। लेकिन इन तीन शब्दो के म्यान में हम इतने भावों को किस तरह घुसायें ? फिर तो तीनों ही खोली भयंकर शब्द के साथ फट जायेंगी। इतनी सारी भावनाओं के आक्रमण से जो भाषा निकलेगी, वह प्रायः असंलग्न, अर्थहीन होगी; बहुत हुआ तो, वह मनोवैज्ञानिकों का कच्चा माल हो सकती है, पर भाषा की दृष्टि से वह मृत है। लिहाजा भाषा के माने ही खासे परिमाण में आत्मवाक्य है, या कबूतर का खास एक दरबा, जिसमें घुसकर हमारे भाव-वायु राहत की

ते हैं। और तब हम उस भाव के सौकुमार्य, उसके विशेष ढांचे, उसकी अनोखी शक्ति की प्रशंसा करते हैं। मगर हक़ीक़त में भाव के प्रचण्ड रूप को वह खो चुकी होती है। वह सत्य की सही शक्ल को हमारे सामने रख नहीं पाती है। बल्कि सत्य के चेहरे के नाम पर वह हमारी इच्छा की पूर्ति में सहायक होती है।

राजनीति में भी क्या भाषा की यह बहुत बड़ी बेबसी हमारे जीवन में रोज़-रोज़ प्रकट नहीं होती ? 'तुम लोग देश के लिए आगे आओ'—इस बात का क्या मतलब है ? इसका क्या यह मतलब है कि कुछ लोग, जो देश के स्नायुतन्त्र की घाटियों पर तैनात हैं, उनके या उनके गुट के या उनके बन्धु-बान्धवों, सगे-सम्बन्धियों की मदद के लिए आगे आयें ? यानी जिसमें वे और भी अच्छी तरह से खा-पीकर निश्चिन्त सो सकें, हमें इसके लिए आगे आना, ज़रूरत पड़ने पर ज़िन्दगी को क़ुर्बान करना होगा ?

अथवा अर्थनीति की भाषा—जीवन का मनोन्नयन, जैसे, हमारा एकमात्र लक्ष्य जीवन का मनोन्नयन ही है। इसके माने क्या यह है कि हम, जिन्होंने नीम के दतवन और गोंयठे की राख से दाँत मलकर बत्तीस पाटी को बरक़रार रखा था, वे उन्नत अवस्था में दोनों शाम पेस्ट-ब्रश से दांत मलकर चालीस पार करते ही दांत उखड़वाने के लिए डॉक्टर के पास दौड़ें ? या एक बार भी इस्तिरी न करना पड़े, ऐसा बुशशर्ट पहने बैरा को बुलाने के लिए घण्टी दबाते-दबाते पैंतालीस की उम्र में दिल के दौरे से टें बोलकर बीमा कम्पनी से बीवी-बच्चे को बहुत-से रुपये दिलवा दें ? मनोन्नयन का मतलब क्या है ? पैदल के बजाय मोटर से चलना, फूस के घर के बदले पक्के मकान में रहना, बँगला की जगह अँगरेज़ी बोलना ?

भाषा को लेकर कैसी हरकतें ! कैसी वाहियात बातें ! हालांकि आदमी ऐसी असहाय अवस्था हैं, सत्य को पकड़ने के लिए उसने हज़ारों-हज़ार साल से इस यन्त्र को बनाया है, और, उस यन्त्र ने एक विराट् राक्षस बनकर उस सत्य को निगल लिया है। हक़ीक़त में आज हालत यह है कि एक मशहूर पानीय का इश्तहार और किगलियर की पंक्ति—एकाकार हैं। समझ ही में नहीं आता, कौन असली है, कौन नक़ली। जो नक़ली है, वह असली से भी ज़्यादा झक-झक करता है।

लक्ष्मीपुर के कृषि-अफ़सर का दोष क्या है। वह बेचारा टेरस कल्टीवेशन—इन दो शब्दों को जी-जान से पकड़े हुए है, डूबते के तिनके की तरह, क्योंकि ये ही दो शब्द तो उसके बच्चों को स्कूल भेजने में मदद कर रहे हैं। उसकी पत्नी के बदन को साड़ी दे रहे हैं। ये दो शब्द मानो एक-एक कौर भात हैं।

इन शब्दों को वह अगर ढंग से न बोल सके तो उसे रोटी नहीं मयस्सर होगी। उसके बच्चों का स्कूल जाना बन्द हो जायेगा, पत्नी पल में एक विपण्ण नारी हो जायेगी।

उसके मिनिस्टर-पिता का भी तो कृपि-अफ़सर-जैसा ही हाल है। सोचकर देखिए तो उनके आस-पास मेल से बेमेल ही ज्यादा है। प्रबोध बाबू को बहुतेरी सरकारी हस्तशिल्प संस्थाओं का उद्घाटन करना पड़ा है। और, शुरू-शुरू में सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ही उन्हें लगा कि असल में यह सब धोखा-धड़ी है। तांतियों की शोचनीय अवस्था का समाधान इस तरह से होगा भी, इसमें सन्देह है। उसके बाद सोचने लगे, क्या किया जाये। लेकिन दूसरे रास्ते में इतनी रुकावटें हैं, इतनी प्रचलित धाराओं के विरुद्ध जाना पड़ता है, ऐसे अन्याय के सामने आना पड़ता है कि उससे मन्त्री रह सकना सम्भव नहीं। गरज कि कुछ करना चाहो तो मन्त्री नहीं रह सकते। प्रबोध बाबू ने आरम्भ के साल से ही यह तय कर लिया कि उन्हें मन्त्री रहना है, तभी से 'स्वाधीनता के बाद से डेग-डेग अग्रगति है', मनोरंजन के लिए गाँव-गाँव में सृष्टियज्ञ : 'हम सत्य के साधक हैं, भारतवर्ष की संस्कृति के वाहक', 'सिर्फ़ नारों से देश का निर्माण नहीं होता, देश के निर्माण के लिए काम करना होगा,' 'देखना होगा कि हम अतीत की धारा को कितना समृद्ध कर पाये हैं', 'दुनिया के चारों ओर हमने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है—क्या अमरीका और क्या सोवियत रूस।' वह इसी तरह की बातें बोलते चले गये। ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे हैं, ये बातें मानो उनपर सवार होती जा रही हैं। पहले थोड़ी-सी जीभ की जड़ता थी, बीच-बीच में निजत्व दृष्टि से देखने की चेष्टा झलकती थी। उन्होंने देखा, उससे ठीक 'इफेक्टिव' नहीं हुआ जाता। 'इफ़ेक्टिव' होने के लिए मन-प्राण से बातों की माला गूँथनी चाहिए। एक के बाद दूसरे रंग-बिरंगे फूलों की एक के बाद दूसरी माला। क्या रंग उनका, कैसी बहार! शब्दों की यह माला मानो उन्हीं का विजय-माल हो। यानी कहा जा सकता है, प्रबोधसेन के माने कोई आदमी नहीं, कोई विशेष विचार नहीं, यहाँ तक कि कोई विशेष कर्म नहीं। प्रबोधसेन शब्दों की एक माला है, जो माला नये गन्ध-रंग में हम लोगों के सामने झूलती है।

या फिर प्रातःस्मरणीय अखबार के संवाददाता की बात ली जाये—जो किसी घटना को महत्त्व दे भी सकते हैं, नहीं भी। और उनकी ख्याति का अधिकतर भाग तो इस शब्द-प्रयोग का कृतित्व ही है, जो कृतित्व इतना जोरदार है कि सफ़ेद स्याह दीखता है और स्याह सफ़ेद। इस क्षमता को जो लोग तिल का ताड़ करने की क्षमता समझते हैं, वे इस क्षमता को बहुत विशेष महत्त्व नहीं

देते। यह है सत्य की नाक में नकेल डालना। बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि कोई-कोई प्रसिद्ध सांवादिक एक ही घटना को पाँच अखबारों में पांच प्रकार से लिखते हैं। यह मानो मनुष्य के ब्रह्म में पहुँचने की अवस्था हो, एक ही विषय को पाँच तरह से देखा जाता है, एक ही राजनीतिक दल को एक साथ कई तरह से देखा जा सकता है—प्रगतिवादी, प्रतिक्रियावादी, उदारपन्थी, पुरानपन्थी। सत्य को लेकर गेंद की तरह खेलने की इस अपार क्षमता के कारण ही क्या अख़बार को फ़ोर्थ स्टेट नहीं कहा जाता? उनकी जो क्षमता है, वह सत्य की नाक में नकेल डालने की क्षमता है। बेचारा सुव्रत क्या करे। चारों ओर इस शब्द की ही जययात्रा है। उसके पिता ही क्यों, सबने शब्द को अपने-अपने स्वार्थ-साधन के सबसे समर्थ हथियार के रूप में अपनाया है। सत्य का प्रतिबिम्ब नहीं, हमारे मस्तिष्क में जो उच्छ्वास है भावों का, उसका सफल चित्रकल्प नहीं, भाषा का प्रयोजन मात्र इसलिए है कि वह सत्य को कितना खेला सकता है, मात्र इसी सफलता के लिए उसकी चाहत है।

कृषि-अफ़सर की बातों में सुव्रत के लिए सरलीकरण का प्रबल झोंक प्रकट हुआ है। उसे लगा कि ऐसे कुछ शब्दों के सहारे अपने देश की फ़सल नहीं बढ़ायी जा सकती। लेकिन वास्तव में कृषि-अफ़सर का क्या दोष? सुव्रत अगर किसी दिन कलकत्ते के हाइकोर्ट में उपस्थित हो तो शब्दों पर विधिजीवियों की ग़ज़ब की क्षमता देख वह कहीं अधिक अभिभूत होगा। फांसी के मुजरिम की रिहाई हो गयी—इसका मतलब यह नहीं कि उसने खून नहीं किया है। फरियादी कौंसुल खूब जानते हैं कि उनका मवक्किल खूनी है। पर असीम कुशलता के बल पर, क़ानून के काँटों-भरे रास्ते के बीच में जो पतली-सी, चिकनी कोलतार की राह है, वह उसी राह से चलाकर मुजरिम को निकाल लाये हैं, और, यों निकाल लाने का मामला ऐसा एक कृतित्व है कि जूरी और जज, दोनों ही उसपर मुग्ध हैं। असामी ने खून किया, नहीं किया, यही बड़ी बात नहीं है, उसे किस प्रकार सारी बाधाओं को पार कराकर ले आया गया—यह बड़ी बात है।

प्रेमिक प्रबोध बाबू, राजनीतिक नेता, कृषि-अफ़सर, कूटनीतिक पत्रकार, जरनैल क़ानूनजीवी, समाज के हर तबक़े के लोग, जिनका रोज़ अखबारों में गुण-कीर्तन होता है, ट्राम में, बस में जिनके कार्य-कलापों की चर्चा होती है, वे सभी तो जी रहे हैं, या कमा-खा रहे हैं, अपने-अपने शब्द-प्रयोग की सफलता पर। लक्ष्मीपुर के ग़रीब कृषि-अफ़सर ने ऐसा कौन-सा दोष किया!



स्यालदा

एक

सुबोध डॉक्टर ने जरा सवेरे-सवेरे दुकान बन्द की। बाग-बाजार स्ट्रीट में उनका पुराना दवाखाना है। सरदियों की साँझ बाहर धुआँ और कुहासा से आच्छन्न। स्टेथिसकोप के बक्स को बन्द करते-करते सहसा वे ठिठक गये। यह समय उनका सबसे प्रिय समय है। रोगियों की भीड़ नहीं, घर लौटने पर जिस अप्रीतिकर अवस्था का सामना ज्यादातर दिन करना पड़ता है, उससे वह दूर हैं। बगल के कैम्प चेयर पर बैठकर सुबोध डॉक्टर ने कुछ मिनटों के लिए आँखें बन्द की। और, बचपन में देखे कलकत्ते की खूब धुंधली-सी याद, उसके बाद लड़ाई में मेसोपोटामिया, अरब, तुर्की। उन्हें खजूर खाने की बड़ी इच्छा हुई। वैसे रसदार और उतने बड़े आकार के खजूर कलकत्ते में खास नहीं दिखाई पड़े। घोड़े की पीठ पर लम्बे-लम्बे झूलेवालों के साथ रेगिस्तान में कई साल मजे के बीते। फिर देश लौट आने के बाद एक दोपहर की बात खूब याद है। डलहौसी स्क्वायर में बस से जा रहे थे कि एक विकट आवाज हुई। पचास हाथ के फ़ासले पर वाटसन साहब की गाड़ी पर गोली चली। चारों ओर भगदड़ मच गयी। पुलिस ने सबको पीटना शुरू किया। उसके बाद नौकरी छोड़कर वह टेररिस्टों के साथ जा जुटे। बड़ी बुरी तरह, पिस्तौल के साथ, रँगे हाथों पकड़ा गये। सात साल की सजा। आँखें खोलकर सुबोध डॉक्टर दायें हाथ की कलाई को घुमा-घुमाकर देखने लगे। जेल में अँगरेजों की मार का दाग अभी तक छूटा नहीं है। हठात् उनका दिवास्वप्न टूटा। आवाज दी, "परेश, परेश!"

परेश मुँह बनाकर हाजिर हुआ। उसे पता है, इस वक्त स्वादेशिकता का फ़ुहारा छूटेगा। घर पर उसने अपनी नयी बीवी को बार-बार समझाया है कि सवेरे-सवेरे दुकान बढ़ाने के बाद भी उसे लौटने में क्यों देर होती है। 'बुड्ढे की उम्र जितनी बढ़ रही है, देश-देश करने का उसका बुढ़भस उतना ही बढ़ रहा है,' लेकिन उसकी स्त्री को यह कैफ़ियत मंजूर नहीं।

"अच्छा परेश, आखिर हम लोगों ने इतने दिन किया क्या? चारों ओर यह इतनी ग़रीबी, भूख, इतनी तरह का पाप, जाल, मक्कारी। इसी के लिए हम लोगों ने पड़े-पड़े अँगरेजों की मार खायी!"

परेश ने टोका नहीं, कहीं बातों में बात बढ़ जाये और उसे अपनी बीवी के

आगे और लम्बी कैफ़ियत पेश करनी पड़े।

"देखो जरा, यह श्रीदाम। इनके साथ लुक्काचोरी खेला गया। कोई बच्चा कहे कि तुम्हारे माथे पर पाखाना करूँगा, तो क्या वही मानना पड़ेगा? कुछ उल्लुओं ने कहा, ये हिन्दू-मुसलमान इतने अलग हैं कि दो अलग देश नहीं होगा, तो ये बस नहीं सकेंगे। अरे, इतने दिनों तक हिन्दू-मुसलमान साथ रहे, तुम साले कहाँ थे? ये सेल्फ़ स्टाइल्ड लीडर्स हैं, ये सब ट्रेटर्स!"

सुबोध डॉक्टर की आवाज़ ऊँची हो गयी। उनका नुकीला मुँह और भी रूखा, बूढ़ा-सा लगने लगा। और परेश मन ही मन बोला, "गैस, गैस। सारी ज़िन्दगी अपने को गैस देकर गुज़ार दी।" प्रकट में बोला, "इस तरह जोश में न आयें, तबीयत खराब होगी।"

"बोलने से सुबोध डॉक्टर की तबीयत नहीं खराब होती। किसी ने कभी सोचा भी था कि बड़े बाबू सुरेन बनर्जी को हरा देंगे? तुम्हारे चीफ़ मिनिस्टर विधानचन्द्र राय को हम बड़े मालिक कहते थे। बड़े मालिक ने बात कब की है जी? चीफ़ मिनिस्टर होने के बाद। हम कई छोकरों ने ही तो विधानचन्द्र को जिता दिया।"

डॉक्टरकी स्वादेशिकता को परेश चाहे जितनी ही नेक नज़र से देखे, इस क़िस्म की बात (खास करके मुख्यमन्त्री को खास नाम से पुकारना या उनको 'तुम' कहना) उसे कुछ अभिभूत किये बिना नहीं रहती। उसने ज़रा डरते-डरते कहा, "एक बार चीफ़ मिनिस्टर से मिलिए न।"

सुबोध डॉक्टर फट पड़े, "क्यों, क्यों मिलूँ? देश-सेवा के लिए मुझको पेन्शन दी—इसलिए? देखो परेश, आज़ादी आने के बाद से कुकुरमुत्ते की तरह सारे देश में देश-प्रेमी उग आये हैं। जिसने कभी भी देश के लिए नहीं सोचा, सिर्फ़ अपने पेट की खिदमत की, वह मिनिस्टर है, देश-नेता है। हवाई-जहाज से वे डेलिगेशन में देश-विदेश घूम रहे हैं। मैं सूखकर मर जाऊँ, तो भी ऐसे देश-प्रेमियों से हज़ार मील दूर रहूँगा!"

"इससे कुछ नहीं होने का डॉक्टर साहब। कुछ भुक्खड़, बेबस लोग दवा-खाने में भीड़ लगायेंगे। मुफ़्त में इलाज करायेंगे और फ़िर आप पर ही त्योरी चढ़ायेंगे। और, जो अपना उल्लू सीधा करनेवाले हैं, वे अपना उल्लू सीधा कर लेंगे।" बड़े गहरे आत्मविश्वास के साथ परेश बोला।

"उल्लू सीधा करना ही तो देख रहा हूँ। दिल्ली में, कलकत्ते में, देश में तमाम उल्लू सीधा करना। तुमसे पटरी नही बैठ रही है, बस, चालबाजी से तुम्हें हटा दिया। बहुत आलोचना करते हो तो मिनिस्टर बना दिया तुम्हें। और ज़्यादा ज़्यादती की, ठूंस दिया जेल में।....और, ये कुछ अखबार हैं। बचपन में

गाँव में कवि-गान होता था। बड़ा-बड़ा कवियाल आता था। कर्ण, अर्जुन, राम, रावण—जिधर भिड़ा दो, उधर ही गायेगा। मौक़ा मिलना चाहिए। ये अख़बार भी हूबहू वही हैं।"

सुबोध डॉक्टर की ऐसी ज़ोरदार बातों को सुनने का आदी होते हुए भी बीच-बीच में परेश को खल जाता। घर में डाँट पड़ेगी, यह हिसाब बिगड़ जाता। वह दबी उत्तेजना से बोला, "कुछ ख़याल न करें सर, आप ठीक कम्युनिस्टों की तरह बोलते हैं डॉक्टर साहब।"

"फ़िजूल की बात मत करो, फ़िजूल की बात मत करो।" सुबोध डॉक्टर चिल्ला उठे, "साठ साल जैसे निकाल दिये, बाक़ी कई साल भी वैसे ही निकल जायेंगे।"

उसके बाद हठात् शान्त स्वर में बोले, "लेकिन परेश, हम लोग शायद बूढ़े हो गये। हम लोगों ने जिस तरह से देश के लिए सोचा है, उस तरह से सरकार भी नहीं सोचती, कम्युनिस्ट भी नहीं सोचते। बल्कि, देश का जब बँटवारा हुआ, किसी भी मियाँ ने तो टें-पों नहीं की। और इन थोदामों को लेकर सरकार भी व्यापार कर रही है, कम्युनिस्ट भी व्यापार कर रहे हैं। 'देश' कहने में, 'देश के लोग' कहने में पहलेवाली वह ममता नहीं है। मिनिस्टर से कहो, वे साख्यिकी सुनायेंगे, देश किस प्रकार आँधी की गति से बढ़ रहा है, उसकी फ़िहरिस्त पेश करेंगे। और तुम अपने वामपन्थियों के पास जाओ, वे पेंच कसेंगे कि उनकी पार्टी किस तरह से मज़बूत होगी।...बीच-बीच में कैसा तो भय होता है मुझे। शायद देश के लोगों ने ऐसा ही चाहा था, ऐसा ही चाहते हैं, यह गिथ-पिच और ताली-पट्टी। देश के नाम यह बातों का चकमा है।"

परेश अब ऊबा-सा दीखा। उदास, मुँह बनाये वह खड़ा रहा। उस ओर देखकर सुबोध डॉक्टर के भी मुँह का भाव बदल गया। "बड़ी रात कर दी तुम्हें परेश, बड़ी देर हो गयी तुम्हें। जानते हो, ये बातें छाती पर बहुत सवार रहती हैं। कहकर कुछ हल्का हो लेता हूँ।"

सुबोध डॉक्टर उठ गये। परेश झटपट खिड़कियों की छिटकिनी लगाने लगा। फिर कोई बात शायद निकल आये इस आशंका से आराम कुरसी को दीवार की ओर सरका दिया। सुबोध डॉक्टर टप्‌टप् करके हल्के क़दमों अन्धकार और धुएँ में खो गये।

रोज़ की भाँति दरवाज़े में ताला लगाकर परेश कम्पाउण्डर बग़ल की एक दुकान में चाय पीने गया। वहाँ क़दम रखते ही रेडियो की घोषणा कान में पहुँची—'आस्ट्रेलिया वन हण्ड्रेड एण्ड सेवण्टी फ़ाइव फॉर टू।' क्रिकेट के लिए अब ख़ास उत्साह नहीं रहने पर भी परेश ने बग़लवालों से उत्साह से कहा, "वन्

हण्ड्रेड सेवण्टी फ़ाइव फॉर टू। वाह अच्छा खेल रहा है तो !"

चाय के प्याले से घूँट लेकर उसने राहत की साँस ली। सुवोध डॉक्टर के अप्रीतिकर सान्निध्य से हटकर अब वह अपनी दुनिया में आया।

दो

"आज भी नहीं आया !" घर में दाखिल होते-होते सुवोध डॉक्टर ने कहा।

"तो क्या हुआ ! पानी में थोड़े ही गिरा है !" प्रमदा देवी खाट के पास से उठकर आयीं। खाट के पीछे, एक कोने में ठाकुर-घर बनाया गया है। खाट के नीचे आलू-परवल की टोकरी। कई सहिजन सर ऊँचा किये हुए हैं। खाट के और एक ओर किसी तरह से मेज लगायी गयी है। वहाँ निर्मल के छोटे भाई परिमल के पढ़ने की व्यवस्था है। दीवार में तैंतीस करोड़ न सही, देवी-देवताओं की लगभग सौ तसवीरें और कैलेण्डर। दीवार के जो हिस्से खाली हैं और जहाँ काठ के बीमवर्गा हैं, उसके आस-पास नोना और चित्ती। उसपर चूना पोतने की वेकार कोशिश से कहीं चाप-चाप नीला, कहीं काला। वाहर एक नल का पेंच कट जाने की वजह से रात-दिन पानी गिरते रहने का शब्द।

गाँव से साथ लायी हुई विशाल रंगमिटी आलमारी, उसकी फांक में छलक आये कपड़ोंवाली अलगनी के सामने कपड़ा बदलते-बदलते डॉक्टर सुवोध ने कहा, "है क्या वहाँ ? मुझे डर लगता है, किसी साधु वावा के पाले तो नहीं पड़ गया !"

प्रमदा देवी आकर खाट पर वैठीं। दोनों वेला रसोई की मेहनत, पूजा-अरचा करके इस समय उन्हें आधे घण्टे के लिए छुट्टी रहती है। खाट पर वैठते ही वोलीं, "चीनी चुक गयी है।"

"चुक गयी, तो मैं क्या करूँ ?"

"तो फिर चाय वन्द कर दो।"

"वही करूँगा।"

"तुम भला कभी करोगे यह ? उधार करके चाय पीओगे।"

सुवोध डॉक्टर ने उधर कान न देकर कहा, "निर्मल किसी साधु-वाधु के पाले पड़ गया क्या ?"

"पड़ जाये तो ठीक ही है। सिनेमा और अड्डे से...." नींद के मारे पलकें

राइट इन द वर्ल्ड।"

निर्मल से इतनी दूर तक नहीं जाया जाता। इतनी दूर तक जाना उसे अपनी बुद्धि वृत्ति का विसर्जन लगता है। पुराने जमाने के पिता संशय से क्षुब्ध होकर नये ज़माने के बेटों पर बड़ी बेरहमी से व्यंग्य करते हैं। "मुझे लगता है, भवेन के बजाय तू ही अपने ताऊजी का प्राइवेट सेक्रेटरी बन जा। तूने अँगरेज़ी-फँगरेजी सीखी है, बारीकी से विचार कर सकता है। उस कम्बख्त के तो पेट में बम भी मारो, तो भी कुछ नहीं निकलने का।"

"यह आप मुझपर अन्याय कर रहे हैं बाबूजी।" निर्मल ने आहत स्वर से कहा।

"तू जिस रास्ते पर जा रहा है, वह रास्ता उसी ओर का है।"

दबी उत्तेजना से निर्मल ने कहा, "आपके रास्ते पर चलना हो, तो मुझे कम्युनिस्ट बनना होगा। और कम्युनिस्टों से मेरा आउट-लाइन का मेल है। उनके भीतर पैठने पर उनकी बात मैं नहीं समझ सकता, वे मेरी बात नहीं समझ सकते। आप यक़ीन मानिए, यह सुव्रत—हमने एक साथ पढ़ा है, खेला किया है। मुसीबत पड़ने पर उससे राय-सलाह के लिए जाता हूँ। वैसा सत् लड़का मेरे जाने-सुने में एक भी नहीं है। किन्तु एक जगह पर हम दोनों एकबारगी अलहदा हैं।"

"इसलिए कि तुम अवसरवादी हो। तुम्हें महत्त्वाकांक्षा है, उसे नहीं है।"

"अवसरवादी हूँ नहीं, पर शायद होऊँगा।"

सुबोध डॉक्टर की उत्तेजना दप्प से बुझ गयी। उन्होंने बहुत ही उदास होकर बेटे की ओर निहारा। उन्होंने जब सरकारी नौकरी छोड़कर अपना दवाख़ाना शुरू किया, तो निर्मल चार साल का बच्चा था। उस युग में विवेकानन्द के विचार लोग खूब पढ़ते थे। उन्हें भी लगभग कण्ठस्थ था। वह मन ही मन दुहराया करते थे, 'इण्डिया नीड्स ए थाउज़ेण्ड विवेकानन्द।' स्वयं तो अब वे वैसा शायद नहीं हो सकेंगे, पर बेटे को निरवच्छिन्न समझौताहीन सत्य के संग्राम में वैसा एक अतन्द्र सैनिक के रूप में कल्पना करके उन्हें खुशी होती थी। यह एक हजार विवेकानन्द किस प्रकार से देश को चलायेंगे, उनकी नियन्त्रित कार्य-पद्धति कैसी होगी, इस सम्बन्ध में उन्हें कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। लेकिन वह एक अनोखे भारतवर्ष, जहाँ मनुष्य की साधना में सत्य ही अन्त तक विजयी होता है, की छवि को अपने मानस-लोक में प्रत्यक्ष किया करते थे।

उनके सपनों का वह सुदूर प्रसारी अरण्य हठात् उजाड़ मैदान हो गया, जब उनके बड़े भाई राजनीति में आये। बेहिसाब पैसा खर्च करके एक ज़बरदस्त चुनाव संगठन के द्वारा वह नदिया के ग्रामांचल से विधान-सभा में और बंगाल के

राजनीतिक भाग्याकाश में एक धूमकेतु की तरह उगे। सुबोध डॉक्टर आँखें मलते हुए उस उजाड़ मैदान में सूने आसमान की ओर ताकते हुए घड़फड़ाकर उठ बैठे थे। उसके बाद निर्मल को लेकर उनका जो भी रहा-सहा सपना था, वह भी धीमा होता आ रहा है।

"तुझे स्वामीजी की बात याद है? स्वामीजी ने क्या कहा था?" वह बच्चे की तरह बोल उठे।

और करुणामिश्रित हँसी तथा समवेदना से निर्मल ही बाप-जैसा लग रहा था। "आज यह सब अब कोई नहीं कहता बाबूजी। वोट लेने के समय कहना पड़ता है, बाद में लोग भूल जाते हैं।" निर्मल ने कहा।

"तो...," अपने हाथ की कलाई को आँखों के सामने घुमाते हुए सुबोध डॉक्टर ने कहा, "अँगरेजों की मार के ये दाग झूठे हैं? हम लोगों ने जो सोचा, जो किया, सब अजूबे! कुछ गर्मख्वावों को सिंहासन पर बिठाने के लिए हमने अपना सर्वस्व दिया?"

"आप भूल कर रहे हैं बाबूजी। पावर करप्ट्स्। पावर पाने से आप भी बदल जाते।"

"डोण्ट एप् योर ताऊजी," सुबोध डॉक्टर भभक पड़े। स्वाधीनता मिलने के बाद कुकुरमुत्ते की तरह तमाम देश में जो राजनीतिक उग आये हैं, ये बातें उनसे कहो। हम वैसी राजनीति पर विश्वास नहीं करते, करेंगे भी नहीं।"

"सुव्रत भी कहता है, यह आजादी झूठी है।"

"झूठी तो है ही। जिस देश में मिनिस्टर की चिट्ठी पर लड़के स्कूल-कालेज में दाखिल होते हैं, नौकरी में प्रोमोशन होता है, उस देश की आजादी झूठी नहीं है?"

"सभी देशों में होता है। अमरीका में भी होता है, रूस में भी होता है, ब्रिटेन में भी होता है।"

"निर्मल, यह आर्म-चेयर पॉलिटिक्स नहीं है। देश एक बहुत बड़ा सांघातिक व्यापार है। अपने समय में हम सब इसपर सोचते रहे थे, गरज कि आलोड़ित होते रहे थे। तुम लोग क्या करोगे? सिर्फ केरियर, इसे-उसे धर-पकड़कर कुछ सौ रुपये ऊपर उठने की जी तोड़ कोशिश।"

"हम उत्पादन करेंगे, संगठित करेंगे, स्टैण्डर्ड ऑव लीविंग ऊँचा करेंगे।"

सुबोध डॉक्टर ने लम्बा निश्वास फेंका, "यू आर लॉस्ट निर्मल! तुझ पर तेरे ताऊजी की तरह बातों का भूत सवार है। मुझपर भी।...और बाजार में कैसे मजे-मजे की बातें निकली हैं! अखबारों के पन्नों पर रोज किलबिल करती रहती हैं। तू फॉरेन एक्सचेंज सेव नहीं करेगा?"

निर्मल विह्वल होकर विद्रूप से विस्फारित आँखों बाप की आँखों की ओर ताकने लगा। उसके बाद धीरे-धीरे सर हिलाकर बोला, "आपको समझ नहीं पा रहा हूँ।"

"महज़ बातों से सत्तू नहीं भीगता है रे, आँखें खोलकर एक बार आदमियों की ओर देख।"

"देख तो रहा हूँ, पर आप-जैसा सोच नहीं सकता।....अवश्य बंगाल की अवस्था ज़रा बेक़ायदे है। उसका ज़िम्मेवार है बँटवारा।"

"उसके लिए देश के लोग ज़िम्मेवार नहीं हैं।"

"फिर कौन ज़िम्मेवार हैं, कहिए।"

सुबोध डॉक्टर ज़रा चुप हो रहे। दीवार की ओर ताककर धीरे-धीरे बोले, "देश के लिए मन में एक सपने का होना ज़रूरी है। केवल एफ़िसिएन्सी से तेरे ताऊजी तक बना जा सकता है। उससे ज़्यादा कुछ नहीं।"

अपने बाप का यह शान्त स्वर निर्मल को भला लगा।

पति के पास खाट के बाज़ू से टिकी प्रमदा तन्द्राच्छन्न थीं। लेकिन वह सो नहीं रही थीं। कुछ दिनों से दिन भर की खटनी के बाद साँझ को उनकी हालत ऐसी हो जाती है। एक प्रबल ऊँघ में अतीत और वर्तमान मिल जाता है। जैसे, अभी वह ऊँघते-ऊँघते असल में फ़रीदपुर में मछली काट रही हैं, अपने गाँव-वाले घर के आँगन में। हँसुए पर बैठे-बैठे उनकी कमर दुख गयी है। घूँघट की फाँक से अपनी बीस बरस की उमर के सुडौल गोरे हाथों को आप ही मुग्ध होकर देख रही हैं। बग़ल में दो देवरानी भी मछली काट रही हैं। आठ-दस बित्ता भर-भर की 'कवै' मझली देवरानी एक-एक को माटी पर पटकती है और गालियाँ देती हैं, 'दईमारी मछली के मरण नहीं होता, मरण नहीं होता।' सामने मछली की तीन-चार ढेरियाँ—रैना, पावता, कलबौंसी, भेदा, कवै, पोठिया—और भी जाने कौन-कौन सी मछली थी, प्रमदा भूल गयी हैं।

"उलट जायेगी, उलट जायेगी," प्रमदा हठात् चीख उठीं।

सुबोध डॉक्टर खीज उठे। "फिर नींद में चिल्लाने लगी? आधी रात को देखता हूँ, उठकर बैठ गयी हो। तुम कोई विटामिन खाओ। ताख पर है, कई दिनों से कह रहा हूँ।"

दरअसल प्रमदा ने अपनी मझली देवरानी को सावधान कर दिया। वह नाव लिये पाखाना जा रही थी, मगर ऐसी सनकी है कि बरामदे से अपना मोटा शरीर लिये एकबारगी कूद पड़ी नाव पर। नाव टलमला उठी। सँभालने

से एक ओर को झुक गयी। बरामदे के नीचे ही गले-भर पानी। गिर पड़े तो कोई बात नहीं, देवरानी मछली की तरह तैरती है, लेकिन इस सवेरे-सवेरे पहर उसे बहुत काम है, अभी-अभी पूजा की व्यवस्था करनी है।

"उलट जायेगी, उलट जायेगी," प्रमदा फिर चिल्ला उठी।

न:, सँभाल लिया। मझली देवरानी डाँड़ खेने लगी। तीस-चालीस हाथ दूर पर आम के पेड़ों की फुनगियाँ जाग रही हैं। देवरानी उसी ओर निकल गयी।

कुछ देर से एक मच्छड़ प्रमदा के बायें गाल को लक्ष्य बनाकर चक्कर काट रहा था। जैसे ही उसने काटा खुजाते हुए वह उठ बैठी। पानी का वह बँधा घाट खो गया। घाट की जगह सुबोध डॉक्टर अपनी गंजी खोपड़ी में कंघी कर रहे थे। दो गुच्छे बाल का बेहद जतन।

सीढ़ी पर पाँवों की आहट।

"कौन?" पल के लिए कंघी करना बन्द। आवाज ऊपर की ओर खो गयी।

"निर्मल क्या बरानगर में गांजा पी रहा है?"

घड़ी के काँटे की तरह प्रमदा की तन्द्रा छूट गयी, "आलू नहीं है, खयाल है?"

"नहीं है तो नहीं है।" दो गुच्छे बालों में भी सुबोध डॉक्टर ने लहर-सी बनायी। उसके बाद दरवाजे पर ही टँगी विवेकानन्द की तसवीर को देखकर उन्होंने आँखें बन्द कीं।

"कहाँ चले?"

"सार्वजनीन में, कम्बख्त लोग सेनगुप्त को बाद देंगे।"

"तो क्या हुआ?"

"तुम भी मेरे कम्पाउण्डर की तरह बोल रही हो। सुनो, स्टार थिएटर में निमाननी प्ले कर रही हैं, हम लोग रोज जाते थे। अरे, यह जो अभी आर्ट करके खूब नामी हो गया है, अरे वह यामिनी राय। सब एक साथ जाते थे। प्ले करते-करते निमाननी के हाथ-पाँव में झिनझिनी पड़ गयी है। हम सभी ग्रीनरूम में गये। सेनगुप्त पाँव दबा रहा था। उसने हमें देखा, पर हिला नहीं जरा भी। हाथ नहीं उठा सेनगुप्त का। इसको कहते हैं चरित्र बल। यह क्या एसेम्बली का भाषण है!"

सीढ़ी के धुएँ को ठेलते हुए एक आदमी ऊपर आ रहा है।

"माँ, आ गया मैं।"

निर्मल का चेहरा खूब ताजा। गंगा के किनारे इन कई दिनों में सेहत का

सुधारना बेकार नहीं गया, यह स्पष्ट है।

"किसी माताजी का शिष्य-विष्य तो नहीं बना?" सीढ़ी से उतरते हुए सुबोध डॉक्टर ने कहा।

प्रमदा चुपचाप। माँ की ओर देखकर निर्मल ने हँसने की कोशिश की, "चुप क्यों हो?"

"तुम्हारी तरह नाचती फिरूँगी? तुम्हारे बूढ़े बाप से सौदा-पाती मँगवाती हूँ, इसका खयाल है?" मोड़ पर से ज़रा आलू ले आओ। दुकान अभी खुली है।"

निर्मल ने एक बार खोया-खोया-सा माँ की ओर देखा, फिर बाज़ार वाली थैली हाथ में लेकर निकल गया।

तीन

साहित्य पढ़ाने के मामले में निर्मल के सामने सदा एक अदृश्य बाधा रह जाती है। एक प्रातःस्मरणीय अँगरेज़ी के प्राध्यापक की मशहूर उक्ति है—'छात्र केली-बहू[1]-जैसे हैं।' उसके लिए यह मानना कठिन है। जिस युग में एक-एक योजना में हर साल गज़-फ़ीता से यह मापा जाता है कि देश आगे की ओर कै हाथ कूदा, उस युग में साहित्य पढ़ाने की और किसी मजबूत भीत की ज़रूरत है। साहित्य-चर्चा का क्या खूब प्रयोजन है? उन्नीसवीं सदी के बंगाल में, फ़िलहाल इंगलैण्ड या रूस में शायद हो कि इसके कोई मायने हों। लेकिन पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में मन्त्रियों के स्वर से, अखबारों में व्याह के विज्ञापन से, नौकरी की दुनिया में इतना अधिक तकनीक की जययात्रा का स्वागत है तथा साहित्य-भावना इतनी बार आलस्य के नाम से चिह्नित है कि लड़कों का छाती फुलाकर साहित्य पढ़ने या पढ़ाने की इच्छा का न होना ही स्वाभाविक है। उसके कॉलेज में जो लोग अँगरेज़ी पढ़ाते हैं, पार्टी के कार्यकर्ता गौतमसेन, विदेश-व्याकुल प्रदीप्त मित्र, जो टोकरियों कच्ची कविता बँगला त्रैमासिक में लिखता है और सोचता है कि विष्णु दे तथा सुधीन दत्त के बाद ही बँगला कविता में उसका स्थान है, उनमें से कोई भी छाती फुलाकर साहित्य नहीं पढ़ाता। निर्मल पढ़ाता है मरता हुआ-सा। जभी उसके स्वर में बीच-बीच में डूबते हुए की चीख झलक जाती है।

---

१. दुर्गापूजा में केले के थम्भ को पहना-ओढ़ाकर बहू बनाया जाता है।

बरानगर से लौटने के कई दिनों बाद ही निर्मल के *'अच्छी तरह से पढ़ाने' की सदिच्छा की कसौटी हो गयी। आँखें झुकाकर कॉलेज की* कालापन लिये बादामी दीवारों को पार करते-करते उसके कानों में उद्धत कण्ठस्वर आया : 'निर्मल ने खूब मंझा दिया, देखा न ?' निर्मल 'सौं' करके दीवार के पास से हट आया। खटमल परिवार नियोजन के विश्वासी नहीं, यह कॉलेज के आदिकाल से पोताईहीन, वर्णविहीन दीवारों पर उनका जमाव देखते ही समझ में आ जाता है। उस छोरे ने साफ-सीधे निर्मल का नाम लेकर पुकारा नहीं, इसलिए निर्मल ने मन ही मन उसे धन्यवाद दिया। और फिर दोष भी किसे दे वह ? वह खुद भी जब बी. ए. का विद्यार्थी था, तो उसने एक बार बँगला के प्राध्यापक की चादर जोर से खींचकर कहा नहीं था, 'आपकी चादर सर फ़ाइन है' ? निर्मल को बाइबिल की एक पंक्ति याद आयी, 'दी सेम मेजर विल् बी मीटेड अन् टू यू।'

यह छोटा क्लास है, इसीलिए गनीमत है। दो सौ सिरों और चार सौ आँखों का अप्रतिहत दीवार से माथा ठोंकना नहीं। स्पेशल क्लास, जिन्होंने टेस्ट में *अच्छा किया है—कॉलेज के* उस उज्ज्वल भविष्य के सामने उसकी सदिच्छा की परख हो जाये। पन्द्रह लड़कों का नाम पुकारने में अधिक समय नहीं लगा। *"कविता के प्रसंग में एक मामूली आलोचना करूँगा, इससे तुम्हारी परीक्षा का* कोई सम्बन्ध शायद नहीं है....पर" (निर्मल ने एक बार अपना होंठ काटा। जरूरत क्या थी ? शेली का 'पैन्थिज़म', कीट्स का 'हेलेनिज़म', वर्ड्सवर्थ का और कोई इज़्म—यही तो बना-बनाया राजपथ है, जो उसके प्रातःस्मरणीय अध्यापकों ने चौड़े, लाली रेड रोड की नाईं उनके सामने बिछा दिया है, उसी पर से पचास मील की गति से अपने अध्यापन की गाड़ी बेतें उड़ा ले जाना ठीक नहीं था क्या ?) एक बार खाँसकर बोला, "लेकिन साहित्य की बात समझने से शायद हो कि कुछ काम में आ सके।"

(जहाँ परीक्षा के अंक ही छात्र-शिक्षक के बीच का एक मात्र सेतु है, वहाँ ऐसा आवेदन जरा अप्रासंगिक नहीं है ?)

पीछे उलटकर निर्मल बोर्ड पर लिखने लगा :

O Rose, thou art sick :
The invisible worm
That flies in the night
In the howling storm.

खल्ली टूटी। एक-दो मन्तव्य कान में आया, "सिर्फ़ वेस्ट ऑव टाइम, हम विद्वान् नहीं बनना चाहते, परीक्षा पास करना चाहते हैं।" निर्मल ठिठका। ये बातें कहने की जरूरत है ? उसने सिर उठाया। *ऊब*, अवसाद, विमूढ़ता—सब

मानो आँखों में छा गयी हैं। मन ही मन एक बार वह बोल गया, छात्र केला-वट्ट-जैसे हैं। कोरिडोर में मानो महाशून्य में गौतमसेन का मुखड़ा तैरते हुए निकल जाता है। "फिर वही सब्जेक्टिव वर्ल्ड में अपना प्रोजेक्शन ? ए रोड दैट लीड्स नो व्हेयर।" गौतम का वह स्वाभाविक परम पिता का कण्ठस्वर कानों में गूंजता रहा। निर्मल उलटकर खड़ा हुआ। लोकल ट्रेन में दाद का मलहम बेचनेवाले का गहरा स्थैर्य और विनय अपनाने की कोशिश की। क्लास की प्रतिकूल अवस्था में उसने अपने को दाद का मलहमवाले के पर्याय में खड़ा कर-करके बल पाया है। कविता के मलहम की दर आजकल गिर गयी है। उसके पीछे बड़े-बड़े बिजनेस हाउस की सहायता नहीं है। परन्तु विलियम ब्लेक या ऐण्ड्रू मार्वेल साहब की कविता का मलहम या हयकटा तेल मन के बहुतेरे रोगों को चंगा करने में सक्षम है। फिर भी खूब सावधान, नक़ली पर विश्वास मत कीजिए। शेली का पैन्थिज़्म, कीट्स का हेलेनिज़्म—यह सब बँधा-बँधाया रद्दी नक़ली माल है। यह है गौतमसेन का रास्ता, हेड ऑव दी डिपार्टमेण्ट होने का रास्ता। यह सब याद करने से इम्तहान पास किया जा सकता है, पर इससे मन का रोग चंगा नहीं होता। कविता अब पनपता गाछ नहीं, बासी बेलाफूल की माला है। निर्मल ने फिर एक बार कलेजा भरकर साँस ली, फिर एक बार खल्ली तोड़कर लिखा—

Has found out thy bed
Of crimson Joy,
And his dark secret love
Does thy life destroy.

निर्मल ने अँगरेजी में धीमे स्वर से अपनी कविता का मलहम बेचा। छात्रों ने प्रायः करुणा से उसकी बात सुनी, जैसे लोकल ट्रेन के यात्री अपने मजेदार गप्प को दुखिया बनाकर भी कैनवासर के स्वर से आकृष्ट होते हैं। सामने की बेंच पर कई लड़कों ने नोट लिया। एक लड़का मुड़-सिकुड़कर लिखने लगा, गोया निर्मल की हरेक बात को बक्से में ताला-कुंजी में बन्द करेगा। उधर देखकर जरा मायूस होने पर भी निर्मल रुका नहीं। "एक बिलकुल प्रारम्भिक बात, भाषा और भाव के अंगांगी सम्बन्ध की चर्चा हम करेंगे। विभिन्न युग में विभिन्न भाव का उदय और एक ही युग में अलग-अलग मनःस्थितियों के कवि। विशेष कवि के व्यक्तित्व ने विशेष रचनाशिल्प का आश्रय लिया है और सच पूछिए तो विशेष भाव की सृष्टि की है। इसीलिए कविता की मृत्यु नहीं, क्योंकि जभी वह सार्थक है, तभी वह नये भाव और भाषा का सम्पृक्त-समन्वित रूप है। एक ही प्रेम, एक ही मृत्यु, एक ही भगवद्भक्ति—उसपर विलियम शेक्सपियर,

विलियम ब्लेक या ऐण्ड्रू मार्वेल। ,जैसे,...." निर्मल फिर बोर्ड की ओर मुड़ा। फिर पीछे से दबी आवाज की लहर। निर्मल ने देखा है बोलना, हाथ-पाँव हिलाना, आँखें उठाकर देखना—यह सब मिलकर शायद मन पर एक दबाव डालता है, पीठ फेरते ही वह दबाव बढ़ जाता है। "बहुत बकबक कर रहा है रे...." शायद उस छोरे का स्वर, जो सालोंभर गले में मफलर डाले रहता है। "बड़ा इनवॉल्व्ड है, ठीक पिन् पोइण्ट नहीं कर पा रहा है," यह शायद अमलका है—इस क्लास का सम्भवतः सबसे अच्छा लड़का। निर्मल को फिर ठेस लगी, पिन् पोइण्ट का क्या मतलब? यह क्या बिजनेस हाउस के बोर्ड की बैठक है, जहाँ तीन या चार ड्रिलिंग मशीन लगाने के लिए टेण्डर मँगाना होगा? फिर उसने खल्ली चलायी—

O, let the world should task you to recite
("हमें अब तीन ही महीने बाकी है सर!")
What merit lived in me, that you should love,
After my death, dear love, forget me quite,
("सिर्फ़ स्टण्ट!" "चालाकी से महत् कार्य नहीं होता!")
For you in me can nothing worthy prove;
Unless you would devise some virtuous lie,
To do more for me than mine own desert,

निर्मल वाराह वेग से घूमकर खड़ा हो गया। अन्तिम तीन पंक्तियाँ लिखते समय पीछे की दोनों बेंचों के टूट जाने की नौबत। ताल-ताल पर पाँव घिसने के साथ-साथ बदन हिलाना मानो कविता की यति के साथ संगत हो। विलियम शेक्सपियर ने 'ओ' करके दौड़ लगायी। निर्मल काठ का मारा-सा। आहत जन्तु की कातरता उसकी आँखों में नहीं, बल्कि वह एक वितृष्णा का पहाड़ हो। आँखों में अवज्ञा, ठुड्डी और भी नुकीली, होंठो पर व्यंग्य। यह अवज्ञा मानो सामने के लड़कों की ओर देखकर नहीं; जिनके पाँव अभी भी हिल रहे थे इधर-उधर, जो निर्मल के हठात् मुँह फेर लेने के साथ-साथ अपने अंग-संचालन को ब्रेक लगाने में अभी भी लाचार हैं। यह अवज्ञा है अपने आपको देखकर। यह पाँव पटकना, बदन हिलाना और अब यह मुँह उठाना मुसाहिबी—यह सब मानो उसके कविता पढ़ाने की बहुत बड़ी व्यर्थता की प्रतिच्छवि है। इसी के आईने में निर्मल अपने को एक व्यर्थ का मनुष्य पाता है। इससे तो....निर्मल सोचता है....इससे तो भवेन गांगुली होने में आपत्ति क्या?

निर्मल ने घड़ी की तरफ़ देखा। दसेक मिनट बाकी थे। दसेक मिनट ता-ना-ना-ना करके काट देने में ही हुआ। लेकिन वह आज की हार को ठोंक

मान नहीं ले पा रहा था। बिगड़ उठा है। उसने एकाएक वर्ड्सवर्थ के क्लासिज़्म पर बोलना शुरू कर दिया। "वर्ड्सवर्थ टीयर ओपुन ए पैसेज टु इनफ़िनिटी बाइ ट्रिवियल मीन्स।" उसके बाद अँगरेज़ी शब्दों के हीरे की कनी छींटने लगा, जैसे, "स्पेक्ट्रल फ़ीगर्स थ्राविंग विथ टेमुलस वाइटेलिटी, मेटाफ़िज़िकल परसेप्शन ऑव युनिटी इन डाइवरसिटी" या "इण्टुइटिवनेस ऑव डिस्कवरी गिविंग कॉमनप्लेस ए टच् ऑफ़ रोमाण्टिक ग्लेमर।"

निर्मल जैसे नशे में हो, बोलता चला गया और क्लास में क्रान्ति-सी हो गयी। छात्र भी जैसे सुरूर में उसके वाक्यामृत को पीने लगे। चारों ओर निस्तब्धता, सिर्फ़ लिखने की खस-खस आवाज़। बाग़-बाज़ार में गंगा के किनारे भट्ठीखाने की एक बचपन की स्मृति निर्मल के मन में धुंधली-सी तिर आयी। जिन शब्दों की वास्तव में कोई प्रतिध्वनि नहीं, जो कसी-कसी कविताओं की कली नहीं, रात जगे बासी फूलों की माला है, जो बहुत हाथों से बदलती हुई आयी है, दस साल पहले जो उसके मास्टर साहब ने कही, उसके तीस साल पहले किसी अँगरेज़ समालोचक ने कही, बहुतों की तरह निर्मल ने उन्हीं काग़ज़ी-गुलाबों को क्लास में सजाया। और, चामत्कारिक परिणाम निकला। लड़के ताबड़तोड़ लिखने लगे, श्रद्धा से निर्मल की ओर ताका। निर्मल घड़ी की ओर देखकर व्यंग्य की हँसी हँसा। तीन साल पहले, विश्वविद्यालय के प्रश्नपत्र का यह अन्यतम प्रश्न था। उसकी नज़र फिर गन्दी दीवारों की तरफ़ गयी। सबके सब शब्दों के भट्ठीखाने में बैठे हैं!

टीचर्स रूम में आकर निर्मल हाँफने लगा—परिश्रम के कारण नहीं, व्यर्थता के कारण। आखिर उसे जम्हाई पर जम्हाई आने लगी—सारे बदन से। ज़रा आराम से टिक जाने को कुरसी की लड़खड़ाती टाँगों के बारे में सजग होते ही गौतमसेन का मुँह उसके कन्धे पर उतर आया, "क्यों ब्रदर डॉनक्विकजॉट, किस तरह से क़िला फ़तह कर रहे हो?"

उसके बाद, आजकल शिक्षित मध्यवित्त भारतीय अपने जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण बातों को जैसी दोग़ली भाषा में व्यक्त करते हैं, गौतम वैसे ही बोलता गया। "यह सब पीस्‌मिल सोल्युशन नहीं चलने का ब्रदर, दी फ़ोरमोस्ट थिंग इज़ रिवोल्युशन, और बाक़ी जो है, वह है व्रतचारी का 'चल, चलायें कुदाली'। साहबों के ज़माने में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट जिस तरह से हाफ़पैण्ट पहनकर जलकुम्भी उखाड़ा करते थे, वैसा ही अनरीयल।"

निर्मल ने पहले भी तर्क किया है, जिसके चलते दो-तीन दिन बोलचाल बन्द रही। गौतम के गोरे मुंह के बाँके व्यंग्य की धार उससे कम नहीं हुई। क्रान्ति के बहाने मास्टर साहब ठीक से पढ़ायेंगे नहीं या परम्परागत धारा का ही अनु-

सरण करेंगे, यह दलील निर्मल कभी नही मान सकता, यद्यपि उसके स्वाभाविक मिज़ाज की धार से इस असत्य को गौतम और भी अधिक सत्य और अर्धसत्य के साथ खासे अच्छे ढंग से मिला दे सकता है। साम्यवाद और काम से जी चुराना—ये दोनों अगल-बगल ऐसे बेमेल लगते हैं कि यह रूप निर्मल के आगे सूट-टाई वाले, चन्दन लिपे कपालवाले किसी तमिल ब्राह्मण-सा प्रतीत होता है, जो तुरग-गति से अँगरेजी बोलता है, लेकिन वह अँगरेजों के लिए दुर्बोध्य है। अथवा निर्मल गौतम की बात का कोई जवाब न देकर सिगरेट पीते हुए सोचता, साम्यवाद और मानसिक आलस्य का जैसा मेल है वैसा ही मेल क्या उसके साहित्य पढ़ाने की अभिलाषा कॉलेज के पारिपार्श्विक में नहीं है?

"यह सब न करके कॉलिज में एक कलचरल सब-कमिटी करो ब्रदर," गौतम ने कहा।

यह गौतम की नयी बात थी। निर्मल ने नज़र उठायी, "सब-कमिटी?"

"हाँ। कलकत्ते के पिछले चुनाव में छब्बीस सीटों में इतनी सीटें वाम-पन्थियों ने जीती, जो बंगाली होते हुए भी साम्यवाद पर आस्था रखते हैं। लेकिन हमारे वैल्यूज़ की ओर से वही सुचित्रासेन और उत्तमकुमार, साहित्य में भी वही इनऊँण्टाइल विमूढ़ता। बँगला पुस्तक के मायने हैं, सारी बुद्धि का विसर्जन, युनिवर्सिटी के बारे में तो प्रश्न ही नहीं उठता, ए डेड व्हेल वाशूड ऐशोर—हम सब कौए की तरह उसके धड़ पर चोंच मार रहे हैं।"

गौतम जब बोलने लगा, तो निर्मल को पता चला, उसके राजनैतिक मत-वाद के कट्टर विरोधी होते हुए भी कॉलेज के प्रिन्सिपल क्यों उसकी इतनी खातिर करते हैं—क्लास में फाँकी देने के बावजूद वह छात्रों और सहकर्मियों का क्यों इतना प्रिय है?

"अच्छा गौतम, तुम यहाँ क्यों पड़े हुए हो?" गौतम की गोरी लम्बी उँगलियों का नचाना देखते हुए निर्मल ने कहा, "तुम जिधर भी जाओगे, चमकोगे...."

"क्योंकि आइ बिलीव इन रिवोल्युशन," गौतम ने कुछ इस तरह से कहा, गोया वह पत्र-प्रतिनिधि को इण्टरव्यू दे रहा है।

निर्मल का उत्साह दर्प से बुझ गया। उसने थके हुए-से स्वर से कहा, "रिवोल्युशन का अर्थ तो कलचरल सब-कमिटी, क्लास में फाँकी...."

"सो तुम उस दृष्टि से देख सकते हो, पर हम देख रहे हैं कि पुराना कूड़ा-कतवार हम लोग ही हटा रहे हैं, सभी स्तरों में देश के भविष्य-निर्माण का उत्तरदायित्व हम ही ले रहे हैं, शिक्षक, छात्र, मध्यवित्त, किसान—सारी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ बदल गयी हैं—हिस्ट्री इज ऑन आवर साइड....।"

"आवर माने ?"

"माने हम, हमारी पार्टी, हमारा फ़्रण्ट, सभी डेमोक्रेटिक पीपुल्स ऑव दी वर्ल्ड,...।"

निर्मल ने गोया समझने की कोशिश की। उसके बाद धीरे-धीरे बोला, "ऐसा ही ताऊजी भी कहते हैं। यक़ीन मानो, हूबहू यही बात—सिर्फ़ तुम्हारी डेमोक्रेसी में अमरीकी सरकार नहीं आती और ताऊजी की डेमोक्रेसी में रूसी सरकार नहीं आती। मगर तुम लोगों का कहना बिलकुल एक है। तुम दोनों ही सारी दुनिया को दो स्वर्गों में ले जा रहे हो।"

गौतम हठात् बोल उठा, "अपने ताऊजी की न कहो। ही इज़ एन इडियट।"

निर्मल का चेहरा सख़्त हो आया। उसके बाद धीरे-धीरे बोला, "हो सकते हैं। लेकिन उनका और तुम लोगों का कहना एक ही है।....और, सच ही तो,....आवडी कांग्रेस सेशन का प्रस्ताव और तुम्हारी पार्टी कांग्रेस का प्रस्ताव बहुत जगहों में शब्दों का ज़रा हेर-फेर है। मुझे क्या लगता है, जानते हो—तुम शायद हँसो—बातों का सब अर्थ खो गया है, सिर्फ़ उनकी आवाज़ है।"

गौतम फिर चिल्ला उठा, "तुम्हारे इन वुझौवलों, फ़िलासाफ़िकल ऐब्सट्रक्शन से कुछ आता-जाता नहीं। हिस्ट्री इज़ डिटरमिण्ड बाइ कंक्रीट ऐक्शन।"

"वह ऐक्शन क्या है ?"

"ऐक्शन माने...." गौतम ने कुछ देर आगा-पीछा किया। निर्मल ने कहा, "ऐक्शन माने, ताऊजी कहेंगे, जन-जागरण और तुम लोग कहोगे जन-आन्दोलन।"

"तुम क्या सचमुच ही कह रहे हो निर्मल, कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी में, कांग्रेस और सभी वामपन्थी दलों में कोई पार्थक्य नहीं है ?"

"शायद हो कि कहीं हो। लेकिन उनके कहने में कहीं विभिन्नता नहीं है। दोनों ही लैण्ड रिफार्म चाहते हैं। दोनों ही उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहते हैं।"

"वे नहीं चाहते, हम चाहते हैं।"

निर्मल ने ज़ोर से साँस लेकर कहा, "यह शायद बाद में समझ में आये, आज से सौ साल बाद। इस बीच तुम दोनों ही तमाम भारतवर्ष में एक ही बात कहते चले जा रहे हो। मुझे वह एक ही बात लगती है।" निर्मल का थका चेहरा चमकने लगा। इतनी देर के बाद मानो उसे कहीं पनाह मिली।

गौतम ने खिजलाकर कहा, "कौन-सी बात ?"

"बातों का अर्थ सब खो गया है। सिर्फ़ उनकी आवाज़ है।"

चार

यदि यह कहें कि चिट्ठी के ज़रिये किसी आदमी को पाया जा सकता है, तो यह बात बड़ी शौकिया-सी लगती है। क्योंकि, इसी तरह तो अगल-बग़ल बसते हुए भी आदमी क्या अपने बीच की दुर्लंघ्य दीवार को फाँद सकता है? वह हर घड़ी क्या दीवार फाँदने का पैंतरा नहीं बाँधता—पर मानो दीवार ठीक-ठीक फाँदी नहीं जाती। शरीर के किसी अंग को विकलता से पास-पास आया नहीं जा सकता। बहुतेरे डॉनक्विकज़ोट कोशिश किये जाते हैं—हज़ारों हज़ार समागमों या लाख से भी ज्यादा चुम्बनों से, पन्नों चिट्ठी लिख-लिखकर या कूद-फाँद करके बच जाने के द्वारा। कोई-कोई नोच-खरोंचकर 'हाउँ-हाउँ' करके मिलना चाहते हैं। लेकिन मानो बाधाओं की लहर पर लहर हो सामने। कविता में बड़े मजे से चला लिया जाता है। 'लाख-लाख युग हिये-हिये राख ल'—अहा, अख़बार की हेडलाइन हो जैसे—बग़ल में लिये फौरन चाय की दुकान में जाकर उद्दीप्त हो उठें। मगर लाख-लाख युग क्यों, एक ही युग में कितना चढ़ाव-उतार, किस क़दर बेहिसाब पैंतरे, कैसी आठों पहर की मानसिक कवायद! हिया क्या हिये के ऊपर होता है? नहीं। जवानी के गरम खून की हवा हर दशक में या उससे भी पहले पलटती है। क्या केवल वितृष्णा के अवसाद से ही हिया हिया से विरूप होता है? बल्कि हिया आकर्षित होता है त्रिभुवन के नये-नये प्रसाद से। जो सत्य को शब्दों के किसी लोहे के बरतन में रखने के प्रयासी हैं, वे कहेंगे, अस्तित्व के इन कॉमिक या ट्रैजिक रूप के कारण ही दरअसल आदमी अकेला है। पर अकेला या दुकेला या हज़ार लोकेला, यह समाजतात्त्विक की निर्मूल युक्ति से कहा न जा सकने पर भी यह कहने में शायद कोई बाधा नहीं कि आदमी के आपस की बीच की दूरी को दूर करना बड़ा बेढंगा मामला है।

वास्तव में ये बातें कुछ ऐसी 'अहा—अहा रे' नहीं कि निर्मल की अजानी हों। चिट्ठी में कविता करने से उसे बचपन से ही विराग है। यहाँ तक कि कराची या ढाका के बजाय उस लड़की को चिट्ठी दिल्ली या पटना से आती, तो शायद उसकी प्रतिक्रिया और तरह की होती। जिस विधान से उसने अन्य अनेक के साथ एक दिन रेडियो में सुना कि देशवालों के रसोईघर और सोने के कमरे के बीचो-बीच रस्सी तानकर दो देश बनाया जा रहा है, और कोई लुंगी या कोई

धोती पहनता है, कोई गोमांस खाता है कोई नहीं खाता, इस आधार पर औचक ही एक देश के दो टुकड़े हो गये, कुछ लोगों ने हठात् सोचना शुरू किया कि देश के और कितने ही लोग इन सारे अनर्थों की जड़ हैं, तभी से देश के बँटवारे के विरुद्ध, वास्तव में अशिक्षित लोगों के इस सिद्धान्त के विरुद्ध उसके मन में एक क्रोध था। उस लड़की की चिट्ठी ने उसे शुरू से ही खींचा था, क्योंकि बाँगला देश के प्रति ममता से भरी हुई उन चिट्ठियों में एक जलन थी, जो ऐसी-वैसी नहीं। उस जलन का शायद कोई शरीर नहीं, परन्तु दूसरे बहुतेरों की तरह निर्मल सोचता था, इस जलन को शायद कभी शरीर मिलेगा।

वही बात थी, इसलिए राजू को एक 'हैण्डीकैप' था। यह सुविधा नहीं रही होती, तो उसकी शुरू की तरफ़ की आठ-दस पन्नों की विराट्-विराट् चिट्ठियों को निर्मल दाढ़ी बनाने के उपयोग में चाहे न लाता, पर उनका कोई विशेष पता नहीं होता। लेकिन यह सच है कि बिलकुल साधारण उम्र की भावुकता से भरी प्रायः भिनभिनाती चिट्ठियों में भी उस लड़की की वयस्कता की छाप हठात्-हठात् मिल जाती थी। जैसे, "और यह लिखने की बुरी आदत—यह कैसा अभिशाप है, मैं अकेले ही जानती हूँ। लेखक सृजन की प्रेरणा से लिखते हैं। मुझ-जैसी वेहया की भाँति कौन लिखता है? अर्थ नहीं, उद्देश्य नहीं, कुछ अक्षरों में भरोसा टटोलते फिरना।....अच्छा निर्मल भैया, दार्शनिकों ने स्मरणातीत काल से देह से आत्मा की मुक्ति की कामना क्यों की है? मैं यह जो हर पल कहा करती हूँ, हाय ईश्वर, आत्मा से मुक्ति चाहती हूँ मैं। उससे 'फ्रेंच लीव' लेने की कोशिश तो की ही जा सकती है, जैसे अपने अनजानते लोगों की निन्दा करती हूँ, जिसे नहीं समझती, उसपर प्रकाश डालने की कोशिश करती हूँ, लेकिन जानें कहाँ अन्दर झीमती हुई आँखें टुकुर-टुकुर ताकने क्यों लगती हैं?....मनुष्य ने जनम-भर ऐसी व्यर्थ की बातें क्यों कही हैं—कहा है, अँधेरे से प्रकाश, भूल से सत्य—मेरा सिर, मैं देखती हूँ इल्यूशन में, मन के गड़े सपनों में ही जीवित रहने की, जूझने की प्रेरणा थी।"

चिट्ठी से ही एक और बात स्पष्ट है, वह लड़की बीमार है। उसकी बीमारी कुछ कच्चे मन की बहक होते हुए भी बहुत कुछ शारीरिक है। वह मन-प्राण से आरोग्य चाहती है, यह भी स्पष्ट है। शारीरिक स्वस्थता के लिए छटपटाहट ने निर्मल को छुआ है। ठीक प्रेमिका नहीं, बहुत बार वह लड़की किसी बीमार बहन-सी लगती, जो उनींदी रात ज्वर-तप्त आँखें पसारकर बिताती है। और स्वास्थ्य के लिए उसकी यह आकुलता बीच-बीच में उसे एक अठपहरी चेहरा देती है, जो निर्मल को आकर्षक लगता है। जैसे, हाल में उसने किसी चिट्ठी में लिखा है—"मुझे सख्त होकर खड़ा होना ही पड़ेगा। पीड़ाहीन माथा लिये, ज्वर-

विहीन रात को जाग उठकर पृथ्वी की ओर निहारना कितनी बड़ी बात है, यह मैं तुम्हें समझा नहीं सकूँगी। और कुछ न हो चाहे, उतना-सा ही पर्याप्त है। निर्मल, दो व्यक्तियों के विरतिहीन प्रेम की खींचातानी में कितनी जीवनी-शक्ति, कितने तेज का क्षय होता है, इसे बाद देकर अगर मैं स्वस्थता अनुभव करूँ, तो तुम मुझे ठण्डा, मरा हुआ व्यक्ति समझोगे? मेरे जीने का रास्ता अगर घास-पत्ता, धूप-छाँह, पुस्तकें और नियमानुवर्तिता हो, तो जड़ कहोगे मुझे?

"तुम्हें अब अनचीन्हा या दूर का नहीं लगता। और मुझे तो समझा न? निर्मल, हम उन लोगों-जैसे नहीं होंगे, जो सिर्फ़ एक बसेरा बाँधते हैं, बचे-खुचे गगने, जीवनी-शक्ति व्यय करके, घर-गिरस्ती के लिए आवश्यक शान्ति का क्षय करके। निताई के लिए भी झमेला झेलेंगे हम। तृप्ति पाने के लिए कष्ट उठायेंगे। राजी?"

वास्तव में दो-तीन वर्षों में निर्मल उस लड़की के प्रति व्यंग्य के भाव से ऐसे एक मनोभाव के बीच आ खड़ा हुआ है, जिसे ठीक प्रेम-व्रेम शायद नहीं कहा जा सकता। एक प्रबल कौतूहल से आच्छन्न है वह। और उसके इस आच्छन्न भाव ने कुछ दिनों से उसे प्रायः असामाजिक कर दिया है। बालीगंज प्लेस जाकर 'मुकुमणि' से गप-शप, उसके पति की खोपड़ी गंजी क्यों हुई, इस दुःख में शरीक होने की चेष्टा, ताऊजी का उसे विलायत भेजने का आग्रह, उसके पिता का एकाएक रिफ्यूजियों के लिए मत्त हो उठना, उन सबकी कैम्प-कॉलोनी में जा-जाकर मुफ़्त में इलाज, यहाँ तक कि उसके पिता की कई महीनों से दिल की बीमारी, दमे का कष्ट, कॉलेज में गौतमसेन की कल्चरल सब-कमिटी में 'पूँजीवादी दुनिया में संस्कृति चर्चा बनाम समाजतन्त्र में संस्कृति का विकास' पर चर्चा-आलोचना—यह सब कुछ भी निर्मल को पकड़े नहीं रख सका। यहाँ तक कि गाँव से लौटने के बाद सुव्रत से भी उसकी विशेष बातचीत नहीं हुई। सुव्रत की उत्सुक आँखों को देखकर उसने दृष्टि फेर ली है। खाली क्लास में वह पागल की भाँति आँखें बन्द करके 'मेटाफ़िज़िकल परमेश्वान ऑव युनिटी', 'इण्टिग्रेटेड होल', को-रिलेशन ऑव टाइम एण्ड स्पेस'—प्रचुर अंगरेज़ी लेखक-समालोचकों की बदौलत ये जो लच्छेदार बातें बाज़ार में आयी हैं, उन्हें बकता चला जाता है। ये बातें उसकी जीभ से निकलकर बीच-बीच में हाथ-पाँव-मुँह निकालकर नाचते हुए उसकी ओर देखकर मुँह चिढ़ाती हैं। क्षण-भर के लिए निर्मल ठिठक जाता, आँखें बन्द कर लेता, फिर अंग-प्रत्यंग के चलने की अन्तर्निहित गति के दबाव या मोमेण्टम से होंठ खोलकर एक के बाद दूसरा शब्द छिटकता रहता। एक भूखे आदमी की तरह घर लौट आता। उसके बाद, पिता जब अपने दवाखाने चला जाता, तो निर्मल उन चिट्ठियों को लेकर बैठ जाता। और, उन सब चिट्ठियों के पढ़ते-पढ़ते

उसके चारों ओर की ठोस वास्तविक परिस्थिति और वहाँ के चलते-फिरते लोग-बाग उसे वायवीय लगते और जो अशरीरी अस्तित्व चिट्ठी की पंक्ति-पंक्ति में झाँकता है, उसे छुआ जाता, पकड़ा जाता है।

राजू ने एक तसवीर भेजी है, 'बहुत बन-ठनकर खिचवायी है'—फ़ोटो के पीछे लिखा है। माथे का गढ़न छोटा, फबता-सा, इसीलिए शायद आँखें बहुत बड़ी लगती हैं। और भी बड़ा लगता है मुँह का फैलाव। मुँह का फैलाव ज़रा बड़ा ही है। पतला, हलका चेहरा, कुछ अधिक हलका, पूरा शरीर नहीं देख पाने के बावजूद ठीक स्वास्थ्यवती युवती की कल्पना करना कठिन है। सिल्क की साड़ी के बदले कोई सादी हाफ़ कमीज पहनने पर उसे शायद और फबती। क्योंकि उसकी गरदन, उसके उत्सुक दृष्टिपात में ऐसी एक पारम्परिकता की कमी है, जो तरुणी-जैसी नहीं। वह लड़की मानो अपने को देखने नहीं कहती, खुद ही देखना चाहती है। खिड़की से बाहर ताकनेवाली वे आँखें एक ओर निर्मल को जैसे खींचती हैं, दूसरी ओर वैसे ही ज़रा अवाक् भी करती हैं। जैसे, एयर होस्टेस का चेहरा। उनकी पोशाक, चाल-चलन में एक कामकाजी छन्द देने की चेष्टा। परन्तु उनके अलग चेहरे पर ग़ौर करने से निर्मल को लगा है कि उस कर्मतत्पर भाव को आच्छादित करता हुआ 'मुझको देखो' भाव ही प्रबल है। यह भाव नारीत्व का इतना अंगांगी है कि इसके अभाव में निर्मल को कुछ बुरा नहीं लगता, ऐसा नहीं। या इसकी चिट्ठियों के सहारे उसके मन में जो एक सपना जम गया था, उसे चोट लगती है। लड़का का चेहरा ऐसा है कि उसपर मानो विशेष स्वप्न नहीं देखा जा सकता। वह जो नहीं है, ऐसे किसी भूषण से उसे भूषित नहीं किया जा सकता या उसको लेकर कुछ ज्यादती नहीं की जा सकती।

परन्तु बीच-बीच में इस निरवयव चिट्ठी और तसवीर के विरुद्ध निर्मल की अन्तरात्मा विद्रोह कर उठती। उसने पत्र लिखना बन्द कर दिया है। इसपर उसके इस मौन पर उधर से व्यंग-भरी चिट्ठी आयी है। उसने जो राजू को लेकर सपना देखना चाहा है, यह बात शायद खुल गयी है और इसके लिए बार-बार परिहास किया गया है। बीमारी के दबाव से परिहास शायद कुछ अधिक गहरा हो गया है। "मेरे जीने का पथ यदि घास-पत्ता, धूप-छाँह, पुस्तकें और नियमानुवर्तिता हो, तो मुझे जड़ कहोगे तुम ?" तो फिर चुप मत रहो। यह उद्भिद-जैसा जीवन लिये (उद्भिद्-जैसा शब्द निर्मल का नहीं, शायद उसने मार्क्स की किसी चिट्ठी से लिया है) अपने अशरीरी शरीर की उपस्थिति से व्यर्थ ही बरसों से निर्मल को तंग क्यों करना—निर्मल ने मन ही मन दलील दी। वह प्रेत भी नहीं चाहता, परी भी नहीं चाहता, चाहता है मनुष्य। और, मनुष्य के बन्धुत्व का जो पैटर्न, घर-संसार का जो पैटर्न तैयार किया है, वह उसमें खड़ा होना

चाहता है। राजू ने ठीक ही लिखा है, "दो व्यक्तियों के बीच विरतिहीन प्रेम की खींचातानी...." मगर उसे आपत्ति तो यही है, इस अशरीर सम्पर्क में प्रेम का भी कोई सम्पर्क नहीं। राजू एक बार कलकत्ता आये। आपस में वे एक बार ठीक से बात करें। तभी यह समझ में आयेगा कि वे एक-दूसरे के लिए प्रयोजनीय हैं या नहीं। नहीं तो यों दो जने का समय नष्ट करने से क्या लाभ? महापुरुष न हो, साधारण मनुष्य के लिए भी जीवन का मूल्य बहुत अधिक है। निर्मल चाहता है, वे अपने को यों नष्ट न करें। ठीक ऐसे नहीं सही, पर उसने अपने मन की बात जताने की कोशिश की है अपनी चिट्ठी में, लेकिन उधर से ठीक उत्तर नहीं आया। 'यह जो तुम्हारी चिट्ठी के द्वारा मैं जी भरकर सांस लेने का भरोसा पा रही हूँ, फिर कुछ-कुछ दुनिया की ओर ताक रही हूँ, इसका क्या कोई मूल्य नहीं?' निस्सन्देह उसका मूल्य है, पर....खैर, निर्मल ने राहत की साँस ली। मानो उसके जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या किनारे हुई। राजू आ रहा है। दीदी को कलकत्ता आने के लिए पटाकर उसी के साथ आ रहा है। निर्मल उत्सुक होकर शनिवार की ओर निहारने लगा। इतने दिनों के बाद वह समझ सकेगा कि उनकी चिट्ठियों के शब्द उसके क्लास की तरह रोज-रोज के मजाये शब्दों की तरह ही मरे हुए, निरर्थक हैं या वे शब्द सचमुच ही बोलते हैं।

पाँच

ईस्ट बंगाल मेल रोज ही लेट रहती है। यह निश्चित नियम है, इस गाड़ी का जाना-आना साधारण गाड़ियों के चलने के नियम से बाहर है। इसपर जो लोग सवार होंगे, वे यह मान ही लेंगे कि रेलयात्री की साधारण मर्यादा उन्हें नहीं मिलने की। चेकपोस्ट, कस्टम्स या दूसरे विभाग के किसी तमगावाले आदमी को पान-सिगरेट खिलाना-पिलाना, गाड़ी से उतार नहीं दिया जा रहा है, इस *अवर्णनीय अवसर* को देने के *कारण* टिकट के अलावा चाय के लिए रुपया देने की तैयारी, यह तो मामूली बात है, जैसी मामूली बात है बक्सा-पिटारे टटोलना। कानों से अगर औरतों की बालियाँ खोल ली जायें, या 'आपकी कलम तो बड़ी अच्छी है" कहकर कोई कर्मचारी किसी मुसाफिर की जेब से। कलम निकालकर अपनी जेब में खोंस लें, तो विरोध करने की गुंजाइश नहीं। यह सारा कुछ ज़रा-सा भी अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि सोने के कमरे

और रसोई-घर के बीच दीवार उठाकर देश का बँटवारा ही देश के नेतागणों के लिए अस्वाभाविक नहीं है।

ये बातें निर्मल ने कई बार सुनी हैं, लेकिन स्यालदा स्टेशन के गन्दे परिवेश में खड़े रहते-रहते यह समाजतात्त्विक व्याख्या सान्त्वना नहीं देती। निर्मल ने नाक पर रूमाल रखा। पूरे प्लैटफ़ॉर्म पर पूर्व-बंगाल के रिफ़्यूजी स्त्री-पुरुष, शिशु। फ़िलहाल उनमें चेचक का प्रकोप बढ़ा है। उसके लिए या विभिन्न प्रकार की दुर्गन्धों को दबाने के लिए तमाम ब्लीचिंग पावडर छींटा गया है। और, वह सब मिलाकर सारे प्लैटफ़ॉर्म पर एक ऐसी रुँधी धातव बू है कि निर्मल का दम घुटने लगा। उस असहनीय भीड़ में हठात्, 'बचके, बचके' चीखते हुए गरजते इंजन की ही तरह बीच-बीच में क़ुली लोग गरदन पर आ गिरते। जाड़ा बीतने को है, पर अभी ही इन्तजार में खड़ी भीड़ के दूसरे लोगों की तरह निर्मल को तर्-तर् करके पसीना छूटने लगा। निर्मल की आँखों में एक सिगरेट कम्पनी का विज्ञापन तैर गया। चोगा-पैण्ट पहने एक प्रेमी अपने दोनों बेढंगे लम्बे पाँवों को जोड़कर प्रेमिका के सामने खड़ा है, एक हाथ में फूलों का गुच्छा और दूसरे में अलग-छू पकड़े सिगरेट। निर्मल ने सिगरेट सुलगायी।

कल सुव्रत से उसकी बातें हुई हैं। निर्मल को लगता है, जैसे वह एक वायवीय अस्तित्व के पीछे दौड़ा रहा है, सुव्रत भी क्या वैसे ही एक अदृश्य अवास्तव भविष्य के पीछे-पीछे नहीं दौड़ रहा है? इसके दौड़ने का फिर भी एक मतलब है। यह एक रक्त-मांस के पीछे दौड़ रहा है। परन्तु सुव्रत का यह दौड़ना तो प्रायः एक ऐडवेंचर है। सुव्रत राजनीतिक पार्टी में आया है, इसलिए कि देश के लोगों के चेहरे को वह समझना चाहता है और भरसक मदद करना चाहता है। निर्मल को लगा, वे दोनों एक ही जगह पर खड़े हैं। अपनी सीमित व्यक्तिगत अभिज्ञता से यह जैसे शब्दों के घेरे को तोड़ना चाहता है, सुव्रत की कोशिश भी वैसे ही अपनी पार्टी की कुछ लोहे-सी समाजतात्त्विक व्याख्या में जान लाना चाहती है। कम से कम सुव्रत ने गाँव के अनुभव को इसी प्रकार से निर्मल को बताया था। गाँव के 'पीपुल', ठीक गौतम सेन के 'पीपुल' नहीं हैं। सुव्रत जिस गाँव में रहा था, उसके लोगों का आगे-पीछे है. उन्हें सुख-दुख, ताप-प्रताप का बोध है। लेकिन गौतमसेन के गाँव या देश के अधिवासी बातों के महज पुतले हैं। वे गौतम की जेब से निकलकर उछल-कूद करते हैं और फिर गौतम की जेब में ही लौट जाते हैं।

और जिस कारण से गौतम का आचरण सुव्रत को अचम्भे में डालता है, वह है, ऐडवेंचर के सम्बन्ध में उसका मुँहचोर नहीं होना। सुव्रत की महज रूढ़ भाषा में नहीं, ऊपरवाले के अधिकार से गौतम ने भर्त्सना की है—

इन 'पीपुल' के लिए ऐम्पटुवशन पर, परन्तु उससे उसे होश नहीं। निर्मल के चिकोटी काटने पर सुव्रत ने एक बार सिर्फ़ कहा था, "आर्थर क्वेस्लर होने के समर्थन में मेरी हज़ार दलीलें हैं, पार्टीबाजी करने के खिलाफ़ हज़ार तरह की युक्तियाँ हैं। पर भारतवर्ष इतना ग़रीब है। इस ग़रीबी के विरुद्ध खड़ा होना पड़ेगा। हमारे बाप-दादों से नहीं हो सका। हमें कोशिश करनी होगी।"

पसीने से निर्मल की कमीज़ का कालर भीग गया। खड़े रहते-रहते कमर दुखने लगी। पायचारी करने से शायद आराम मिलता। पर इस नरक में पायचारी करना शौकीनी-सा लगा उसे। एकाएक वह एड़ी-चोटी अवसाद से भर गया। इस अनिश्चितप्राय अपरिचित एक व्यक्ति के लिए उसका यों इन्तज़ार करना क्या बालक सुलभ नहीं है? अपनी जिस समालोचक की बंकिम दृष्टि को वह सजग रखने को सदा सचेष्ट है, उस दृष्टि से अपनी ओर ताकने पर इस तीस साल की उम्र में एक 'पेन् फ्रेण्ड' के लिए इतना उतावला होना क्या सोहता है? और फिर उस लड़की को चिट्ठियों के द्वारा जहाँ तक जानता है, उससे उसे किसी पैटर्न में डालना मुश्किल है। न्यूरोटिक कहकर उसे छोड़ा नहीं जा सकता, भावुक समझकर नेक नज़र से देखा नहीं जा सकता और शारीरिक स्वस्थता के नाते कोई उत्सुक तरुणी कहकर निश्चिंत भी नहीं सोचा जा सकता। वास्तव में राजू को चिट्ठी के ज़रिए जितनी ही बार उसने काबू करने की कोशिश की है, उतनी ही बार हार हुई है; उतनी ही बार वह फिसलकर निकल गया है। वे अगल-बगल खड़े ही हों तो क्या वह उसे पकड़ सकेगा। या सहज भाषा में कहें, तो पकड़कर रख सकेगा? उन दोनों के बीच की रोक क्या सिर्फ़ पाकिस्तान-हिन्दुस्तान है? कोई दूसरी दुर्लंघ्य बाधा नहीं है क्या?

और....एक कालगुलम आतंक ने निर्मल को विह्वल कर दिया। मानो अभी तक वह मन के आनन्द से पानी मथ रहा था—अभी-अभी कोई आयेगी, उसे पकड़ने के लिए। उस लड़की का चेहरा कैसा है? बचपन की उस धुंधली स्मृति को छोड़ दे, तो बस एक तसवीर का सहारा। वह तसवीर ही दोनों के इस अवयव-हीन सम्पर्क का सेतु है। लेकिन इस प्रचण्ड भीड़ में, जहाँ प्रायः हर चेहरा एक ही-सा है, एक ही-जैसा थका, पसीने से तर, विह्वल—वहाँ एक कम उम्र की लड़की को वह पहचान कैसे लेगा? बल्कि एक अपरिचित लड़की के पीछे दौड़कर वह इस प्लैटफ़ॉर्म पर एक नये पुलिस-केस का मौका नहीं देगा? उद्भ्रान्त की नाईं निर्मल ने तसवीर के बारे में सोचने की कोशिश की। परन्तु वह मुखड़ा मरलिन डिएट्रिच या ग्रेटा गार्बो का ही होता तो इस भीड़ में एक ही मर लगता। इस प्रचण्ड भीड़ के प्रबल दबाव से हर व्यक्ति उद्विग्न है। एक धूसर

विवर्ण चादर से मुँह ढाँके मानो सब चल रहे हैं या खड़े हैं। और, यह तो गोएन्दा विभाग का कर्मचारी नहीं—जो जेब में तसवीर लिये रेल-स्टेशन, एयरपोर्ट, बन्दरगाह पर प्रतीक्षा करते हैं और गिद्ध-दृष्टि द्वारा तसवीर से अपरिचित व्यक्ति के चेहरे का मेल खींच निकालते हैं। एक ट्रेन से एक दल लड़के और लड़कियाँ उतरीं। लड़कों के पहनावे में नोकदार पतलून और टेरेलिन की क़मीज़। लड़कियाँ फूहड़-सी, लम्बी-लम्बी टाँगों पर रत्ती-भर चूतड़, जार्जेट की साड़ी में प्रदर्शन। उनकी ओर ताककर निर्मल ने अकुलाकर सोचा, इन्हीं में से शायद कोई उनकी मानसी है। वह मनोयोगपूर्वक जासूसी निगाह से उनकी ओर देखता रहा। सहसा 'बचके, बचके' करता हुआ एक गरजता इंजन प्रायः उसकी गरदन पर आ रहा। निर्मल ने अपने को हटा लिया। वह वहाँ और खड़ा नहीं रहा। भीड़ को ठेलते हुए गेट के पास पहुँच गया। रेल का जो कर्मचारी अभी तक ईस्ट बंगाल मेल की सूचना दे रहा था, उसने अनमने-से निर्मल की ओर देखकर कहा, "अभी भी चालीस मिनट सर!"

निर्मल खड़ा नहीं रहा स्टेशन से बाहर आया और दक्खिन की तरफ़ जाने-वाली एक बस पर सवार हो गया।

"क्यों राजकुमार, कहाँ डुबकी लगा रखी थी?" खुकूमणि और भी गोरी दिख रही है, और भी गोल-गाल लग रहा है उसका चेहरा।

"रात में रोटी खा रही हो?" निर्मल के स्वर में वही स्वाभाविक व्यंग्य लौट आया। वह मानो फिर चारों ओर के बालसुलभ आचरण में मुखियागिरी करने का मौक़ा पाकर भीतर-भीतर धन्य हो गया है। खुकूमणि से बात करते-करते उसका आत्मविश्वास लौट आया। कुछ देर पहले जो युवक अपनी पत्नी की बान्धवी के लिए बड़ी बेसब्री से इन्तज़ार कर रहा था, वह एक और ही देश का है मानो। निर्मल से उसका कोई सरोकार नहीं।

अपने स्वाभाविक रुआँसे गले से खुकूमणि बोलने लगी, जीभ चाटने लगी, बीच-बीच में ग़ज़ब की अँगरेज़ी बोल जाने लगी। और निर्मल ने उसके पास बैठकर राहत की साँस ली। इतनी देर के बाद वह अपनी पहचानी हुई दुनिया में लौट आया है।

"बम्बई की एक कम्पनी ने एक फूड निकाला है, यही जैसा बेबी-फूड, वैसा ही। एक महीने में तुझे तन्वी बना देगा।" बोलकर निर्मल को आराम लगा।

खुकूमणि ने उच्छ्वसित होकर कहा, "तुम लोग कुछ करो, हाँ! मुझसे अब और नहीं बनता। लगातार दोनों जून रोटी खा रही हूँ। दोपहर को आँखें ठेलकर नींद आती है। आपकी पसन्द सुनते-सुनते आँखों की पलकें सट जाती

हैं। मुन्ने को खास जिद नहीं। भरपेट खिला दो। उसके बाद वह अपने-आप खेलते-खेलते सो जाता है। और बाबूजी ने यह मकान बनवाया है, दवाखाना हो मानो। तमाम दोपहर नींद से जूझती हूँ। कैसी सजा! उसके बाद आईने में शकल देखती हूँ। गाल और भी सूजे, पलकें और भी भारी। कोई उपाय करो तुम लोग।" जरा देर चुप रहकर वह फिर उत्साह से चिल्ला उठी, "हाय राम, तुम्हें तो असली खबर ही नहीं दी!"

"पति का तबादला?"

"बाबूजी ने कहा है, क्यों?"

"ताऊजी क्यों कहने लगे? तेरी शकल देखकर ही समझ में आता है। मारे लाड़ से कैसी फूल रही है तू!"

"हाय राम, यह कैसी बात! रोने से भी फूलती हूँ।....सोचते-सोचते अब अच्छा नहीं लगता है। उनसे भी कहा है। मोटे लोग क्या आदमी नहीं होते? मोटी हो गयी हूँ, तो क्या हुआ! तुम्हारा क्या घाटा है?"

"विलायत में आजकल ब्यूटी किसे कहते हैं, जानती है न?" निर्मल के स्वर में फिर स्वाभाविक व्यंग्य, "जिन लड़कियों के आगे भी कुछ नहीं, पीछे भी कुछ नहीं!"

"हाय राम, यह कैसी बात! यह कैसी बात!" औंधी पड़कर सुकूमणि लोट-लोटकर हँसने लगी। और उस आँख-मुँह लाल करनेवाली हँसी में निर्मल ने भी साथ दिया।

"इतनी हँसी किस बात की?" प्रबोध सेन कमरे में आये। निर्मल का मौजी और चटुल मिजाज उन्हें पसन्द है। उन्होंने दीवार से लगी आरामकुरसी पर धीरे-धीरे देह को पसार दिया।

"एसेम्बली का झमेला चुक गया आपका?"

"हु:। बस एक ही बात। यह नहीं हुआ और वह नहीं हुआ। बारह-तेरह साल से यही एक बात! ठीक तो है भैया। अगले चुनाव में खड़े होकर जीतो। और फिर देश में स्वर्गराज्य बनाओ। रोकता कौन है?" प्रबोध सेन ने लम्बा निःश्वास छोड़ा।

"सुबोध की छाती का दर्द ठीक हो गया?" आँखें बन्द करके उन्होंने सवाल को फेंक दिया। और निर्मल के उत्तर की अपेक्षा में रहे बिना ही बोले, "पागलपन है! वैसे अँधेरे सड़े घर में कोई बाप के साथ रहता है भला!"

निर्मल फिर अपने पिता-ताऊ—इन दो प्रतिद्वन्द्वियों के जगत् के सामने खड़ा हुआ। बहरहाल ताऊजी की ओर से आक्रमण गौर करने योग्य है। उन्होंने क्या ऊँचे महल में किसी महत्व के मामले में लंगी खायी है और अभीष्ट सिद्ध नहीं होने

से स्वाभाविक हँसी खो बैठे हैं ? निर्मल को यह याद आया कि पिछले कई दिनों से अखबार नहीं देखा है।

प्रबोध सेन ने आँखें खोलीं। अपनी मोटी जुड़ी हुई भँवों को उठाकर भतीजे की तरफ़ देखते हुए बोले, "अपने बंगाल में हम 'आदर्श-आदर्श' करके ही गये। यह रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, रामकृष्ण—ये नहीं होते तो हमारे लिए अच्छा था। हम चारों ओर की इतनी मार नहीं खाते पड़े-पड़े। इसके बजाय अगर हमने चूरा साबुन, कील, सूते की कल—कोई भी चीज, जो लोग रोज़-रोज़ व्यवहार करते हैं, जीने के लिए जिसकी ज़रूरत है—ऐसी कोई चीज़ तैयार करके बेचने का ढंग अपनाया होता, तो ऐसे दीवालिया नहीं होते। बंगाल का होगा क्या ? जिनके जीये कुछ होता, वही छोकरे रातदिन 'नहीं चलेगा, नहीं चलेगा' कर रहे हैं और बाहरी लोग धीरे-धीरे हमें उखाड़कर जमते जा रहे हैं।"

"आप तो पिताजी की तरह बोल रहे हैं !" निर्मल ने अवाक् होकर कहा।

"बिलकुल नहीं।" प्रबोध बाबू ने भौंहें नचायीं, आँखें सिकोड़ीं। स्वर ऊँचा करके बोले, "मैंने जिनके बारे में कहा, सुबोध ने पूरी दीवार में उनकी तसवीरें टाँग रखी हैं। सभा-समिति में जब भाषण देता हूँ, तो मैं भी उनके बारे में बहुतेरी बातें कहता हूँ। तुम्हारे पिता से भी अच्छी तरह से कहता हूँ, क्योंकि वह सब पहले से ही तैयार रहती हैं। परन्तु उसकी एक भी बात का मैं विश्वास नहीं करता।"

निर्मल चुप रहा। वह कुछ विह्वल भी दीखा। किसी व्यक्ति के बारे में उसके मन में एक निश्चित नक़्शा रहता है। उसके ताऊजी उस के मन के नक़्शे से निकले आ रहे हैं। बातों पर ताऊजी क्या सच ही विश्वास करते हैं ?

निर्मल की ओर स्थिर दृष्टि से ताककर प्रबोध सेन ने फिर कहा, "सच ही मैं विश्वास नहीं करता। कल एक पार्टी में....इरिगेशन के वह नये केन्द्रीय मन्त्री ....नाटे, काले-से....क्या नाम है ?....उनसे कह रहा था....आइ कन्सिडर इट ए मिसफॉरच्युन दैट बेंगॉल इज टु बर्डण्ड विथ द हेरिटेज ऑव नाइनटीन्थ सेंचुरी। पश्चिम बंगाल सिकुड़ा बैठा है और सारे प्रदेश मारकर निकलते जा रहे हैं। सभी बातों में—क्या सरकार, क्या व्यापार, क्या पढ़ना-लिखना। दिल्ली युनिवर्सिटी में गया था—लड़के-लड़कियों को देखकर प्राणों में बल आया। बिलकुल साहब-मेम की तरह अँगरेजी बोल रहे हैं।"

ताऊजी की अन्तिम बात पर निर्मल को ज़रा हँसी आने पर भी उनके वक्तव्य की दृढ़ता ने निर्मल को स्पर्श किया। उसे फिर लगा कि इस वक्तव्य से उसकी काफ़ी एकात्मकता है। इस रास्ते से सोचने से शायद अच्छी राह पकड़ी जायेगी। इस कथन में जो ज्वाला है, वह निष्फल आक्रोश में ही समाप्त नहीं।

परन्तु साथ ही साथ उसके अन्दर से सुबोध डॉक्टर बोल उठते हैं, "बंगाल के ऊपर से आँधी तो कम नहीं गुज़री।"

"पंजाब पर से भी गुज़री है। दिल्ली के आसपास पंजाबी रिफ़्यूजी की ओर देखो और स्यालदा में पड़े इन अधमरे लोगों को देखो। एक ओर आत्म-विश्वास और एक ओर भिखमंगी।"

"इसके लिए तो सरकार भी जिम्मेदार है," फ़्ट् करके बात निकल पड़ी।

प्रबोध सेन ने फिर जुटी भँवों को सिकोड़ा, "पिता की बात को मत दुहराओ निर्मल, तुम नाबालिग नहीं हो। खुद जो सोचते हो, सो कहो। सरकार का हज़ारों प्रकार का दोष है। पर हमारा अपना दोष नहीं है क्या? सारी राजनीतिक पार्टियाँ इन रिफ़्यूजी लोगों को लेकर व्यापार कर रही हैं, नहीं कर रही हैं?"

"कोई-कोई करती है।"

"सभी पार्टी, सभी पार्टी! प्रबोध सेन किसी की परवा नहीं करता। आज मन्त्रिमण्डल में हूँ। जरूरत हुई तो कल छोड़ दूँगा। कैलकेटा बार विल् वेलकम मी विथ ओपुन आर्म्स।"

निर्मल चुप रहा। सुकुमणि उठ गयी थी। पत्थर के गिलास में एक गिलास दूध लेकर पिता के सामने रखकर बोली, "इतना चीख़िए-चिल्लाइए मत। छोटे भैया के आते ही आप भाषण शुरू कर देते हैं।"

"हम और हैं ही कितने साल! यही लोग तो फ्यूचर हैं।" दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोले, "सुबोध और अपना सुव्रत चन्दर—बिलकुल एक टाईप का। वही पुराने आदर्श का यह पीठ, वह पीठ। उसके शौक़िया गाँव घूमने के पहले मैंने कहा था, कम्युनिस्ट अगर होना चाहते हो, तो आक्सफोर्ड-केम्ब्रिज जाओ। वहाँ से कम्युनिस्ट होकर आने पर लोग मानेंगे। यहाँ गाँव-गाँव घूमने से तुम्हें कौन पूछेगा? और तुम्हारा बाप....मेरे पास सारी खबर पहुँचती है निर्मल। तुम उनसे कहना, रिफ्यूजियों से इतना न घुले-मिले। सुना, तुम्हारे बाप को बागजोला कैम्प में ले गया था, जानते हो तुम?"

निर्मल ने अस्पष्ट भाव से कहा, "क्या जानें, ठीक नहीं जानता। बाबूजी के दवाख़ाने में बहुत तरह के लोग ही तो आते हैं!"

"बीच-बीच में तुम्हारे बारे में जब सोचता हूँ, तो लगता है, तुम भी अपने को वेस्ट कर रहे हो। उन लोगों ने जान में किया है, तुम अनजानते कर रहे हो....मैं यह नहीं कहता कि तुम्हें बुद्धि-विवेक नहीं है। वह क्षमता तुममें है, इसलिए मुझे दुःख होता है।"

भतीजे को एक नज़र देख लिया, फिर बोले, "एक बड़े ऐडवर्टाईज़िंग कम्पनी में नौकरी है। करोगे?"

निर्मल ने अपने ताऊजी की तरफ़ ताका। क्या कहे, यह सोचकर एक बार आगा-पीछा किया। उधर से मुँह फिराकर प्रबोध बाबू ने कहा, "अभी ही जवाब देने की ज़रूरत नहीं। थिंक ओवर इट। एक महीने में कह दो, तो चलेगा। वे लोग शायद साल-भर बाद एक बार विलायत भेजेंगे। उसके बाद एक हायर पोस्टिंग देगी कम्पनी। मैं अभी ही तुमसे जवाब नहीं माँग रहा हूँ।"

उठते-उठते उन्होंने कहा, "कल सवेरे फिर एयरपोर्ट। बर्मा का नू आ रहा है। खुकूमणि, खाना परोसने को कहो। दो दिन से ज़रा पेट गड़बड़ है। सिर्फ़ भात और मछली का झोल। बस।"

निर्मल भी उठ खड़ा हुआ। खुकूमणि बोली, "वाह, तुम बैठो, मैं तुरत आ रही हूँ।" मगर निर्मल उस दिन नहीं बैठा।

छह

दुतल्ले बस की सीढ़ी पर बड़ी देर तक खड़ा रहना पड़ा निर्मल को। स्यालदा के पसीने और भीड़ की स्मृति बस के चारों ओर के लोगों के दबाव से फिर उसके मन में जाग उठी। जासूसों में जिस तरह से मुँह पर रूमाल दबाकर या वैसे ही किसी इशारे के ज़रिये दो अपरिचित लोगों के बीच योग-सूत्र स्थापित किया जाता है, वैसे ही किसी उपाय का सहारा लिया जाता तो कैसा रहता? उसकी चिट्ठियों की मित्र मुँह पर रूमाल रखकर या जूड़ा बाँधते-बाँधते रेल से उतरती और वह बेझिझक दौड़ पड़ता। असल में आत्मग्लानि से निर्मल को अपने आप को और भी करुण, बेक़ायदे देखने की इच्छा हो रही थी। राजू की चिट्ठी की वे पंक्तियाँ जो बड़ी ही जीती-जागती-सी लगी थीं, उसका मुँह चिढ़ाने लगीं। बड़ी देर के बाद खिड़की के पास एक जगह पाकर निर्मल धप्प से बैठ गया। फुरफुर हवा में आँखें झिपने लगीं। तन्द्रा-जैसी हालत में निर्मल ने सपना देखा कि राजू मुँह पर रूमाल रखकर गाड़ी से उतर रही है। निर्मल ने बढ़कर उसका हाथ पकड़ना चाहा कि प्लास्टिक के टूटे खिलौने की तरह राजू का हाथ खुलकर उसके हाथ में आ गया, प्लास्टिक का माथा गरदन से अलग होकर लुढ़कने लगा। कहाँ से एक रिफ़्यूजी लड़का दौड़ा आया और धाँय से उसमें एक शॉट दाग दिया। माथे के उस बॉल के शून्य में उछलकर औचक ही निर्मल के मुँह पर लगते ही निर्मल की झपकी टूट गयी। एक झटका देकर बस हठात् रुक गयी।

दो स्टाप के बाद ही पांच माथा का मोड़।

घर के सामने छोटी-सी भीड। उधर ध्यान दिये बिना ही निर्मल आगे बढ़ा। परेश कमाण्डर ने उसकी ओर उदास चेहरे से ताका। मुहल्ले के जो कुछ लड़के आपस में जमघट कर रहे थे, वे भी एकाएक चुप हो गये। किसी-किसी ने उत्सुक होकर उसकी ओर ताका। निर्मल ने सोचा, हो न हो मोहन-बगान-ईस्ट बंगाल के खेल पर वितर्क हो रहा है। वह कतराकर अन्दर जाने लगा कि मुहल्ले के रतन ने आकर कहा, "दादाजी गिरफ्तार हो गये।"

"कौन ?" निर्मल चौंक उठा।

परेश उसके सामने आकर बोला, "डॉक्टर साहब को पुलिस पकड़ ले गयी।"

"मतलब ?"

"आज सबेरे बागजोला कैम्प में फ़ायरिंग हुई है। चार आदमी मारे गये हैं। डॉक्टर साहब कैम्प में गये थे। उन्हें वहीं से पकड़ ले गयी है।"

निर्मल कुछ क्षण हक्का-बक्का हो रहा। परेश कहता गया, "डॉक्टर साहब के नाम पर दंगा करने का केस ठोक दिया है। पुलिस कैम्प में रिफ्यूजियों को गिरफ्तार करने गयी थी। डॉक्टर साहब ने रोका। वह बेचारा श्रीदाम गोली से मारा गया।"

"ताऊजी को खबर दी गयी है ?"

"नहीं-नहीं, वह मना कर गये हैं। मैंने हाजत में भेंट की है। मुझसे बोले, "जेलखाने की आदत है मुझे। लेकिन अपने भैया को कहने से मना किया है।"

परेश से कुंजियों का झब्बा लेकर निर्मल सीधे दवाखाने गया। फोन उठाया कि रुकुमणि बोली, "क्यों जी, इतनी रात को क्यों ?....बाबूजी को ? क्यों ? मैं तो हूँ। मैं क्या कुछ नही समझती ? बाबूजी का जितना फोन आता है, मुझे ही उठाना पड़ता है हुजूर !"

"ताऊजी से कह दे, बाबूजी गिरफ्तार हो गये हैं।"

"अरे, यह क्या ? क्या होगा ?"

"कुछ नहीं होगा। तू उनसे कह न। मैं फ़ोन पकड़े हुए हूँ।"

बड़ी देर हो गयी। कान में फ़ोन लिये निर्मल देखता रहा, दीवार, फर्श की सुराखों, कोने-अतरे से निकलकर जीव-जगत् कैसे महोत्सव में मस्त हैं। दीवार पर फर्र-फर्र तिलचट्टे उड़ रहे हैं। दो लम्बे बादामी कीड़े अब तक बड़े ध्यान से विवेकानन्द की अंगरेजी की एक मोटी किताब पर खड़े होकर जबड़े हिला रहे थे। अचानक रोशनी और आवाज पाकर वे थिर हो गये। एक जरनैल छिपकिली एक मझोले आकार की छिपकिली के पीछे तड़बड-तड़बड दौड़ी।

निर्मल ने अपने ताऊजी की तरफ़ ताका। क्या कहे, यह सोचकर एक बार आगा-पीछा किया। उधर से मुँह फिराकर प्रबोध बाबू ने कहा, "अभी ही जवाब देने की ज़रूरत नहीं। थिंक ओवर इट। एक महीने में कह दो, तो चलेगा। वे लोग शायद साल-भर बाद एक बार विलायत भेजेंगे। उसके बाद एक हायर पोस्टिंग देगी कम्पनी। मैं अभी ही तुमसे जवाब नहीं माँग रहा हूँ।"

उठते-उठते उन्होंने कहा, "कल सवेरे फिर एयरपोर्ट। बर्मा का नू आ रहा है। खुकूमणि, खाना परोसने को कहो। दो दिन से ज़रा पेट गड़बड़ है। सिर्फ़ भात और मछली का झोल। बस।"

निर्मल भी उठ खड़ा हुआ। खुकूमणि बोली, "वाह, तुम बैठो, मैं तुरत आ रही हूँ।" मगर निर्मल उस दिन नहीं बैठा।

छह

दुतल्ले बस की सीढ़ी पर बड़ी देर तक खड़ा रहना पड़ा निर्मल को। स्यालदा के पसीने और भीड़ की स्मृति बस के चारों ओर के लोगों के दबाव से फिर उसके मन में जाग उठी। जासूसों में जिस तरह से मुँह पर रूमाल दबाकर या वैसे ही किसी इशारे के ज़रिये दो अपरिचित लोगों के बीच योग-सूत्र स्थापित किया जाता है, वैसे ही किसी उपाय का सहारा लिया जाता तो कैसा रहता? उसकी चिट्ठियों की मित्र मुँह पर रूमाल रखकर या जूड़ा बाँधते-बाँधते रेल से उतरती और वह बेझिझक दौड़ पड़ता। असल में आत्मग्लानि से निर्मल को अपने आप को और भी करुण, बेक़ायदे देखने की इच्छा हो रही थी। राजू की चिट्ठी की वे पंक्तियाँ जो बड़ी ही जीती-जागती-सी लगी थीं, उसका मुँह चिढ़ाने लगीं। बड़ी देर के बाद खिड़की के पास एक जगह पाकर निर्मल धप्प से बैठ गया। फुरफुर हवा में आँखें झिपने लगीं। तन्द्रा-जैसी हालत में निर्मल ने सपना देखा कि राजू मुँह पर रूमाल रखकर गाड़ी से उतर रही है। निर्मल ने बढ़कर उसका हाथ पकड़ना चाहा कि प्लास्टिक के टूटे खिलौने की तरह राजू का हाथ खुलकर उसके हाथ में आ गया, प्लास्टिक का माथा गरदन से अलग होकर लुढ़कने लगा। कहाँ से एक रिफ़्यूजी लड़का दौड़ा आया और धाँय से उसमें एक शॉट दाग दिया। माथे के उस बॉल के शून्य में उछलकर औचक ही निर्मल के मुँह पर लगते ही निर्मल की झपकी टूट गयी। एक झटका देकर बस हठात् रुक गयी।

दो स्टाप के बाद ही पाँच माथा का मोड़।

घर के सामने छोटी-सी भीड़। उधर ध्यान दिये बिना ही निर्मल आगे बढ़ा। परेश कमाउण्डर ने उसकी ओर उदास चेहरे से ताका। मुहल्ले के जो कुछ लड़के आपस में जमघट कर रहे थे, वे भी एकाएक चुप हो गये। किसी-किसी ने उत्सुक होकर उसकी ओर ताका। निर्मल ने सोचा, हो न हो मोहन-बगान-ईस्ट बंगाल के खेल पर वितर्क हो रहा है। वह कतराकर अन्दर जाने लगा कि मुहल्ले के रतन ने आकर कहा, "दादाजी गिरफ्तार हो गये।"

"कौन?" निर्मल चौंक उठा।

परेश उसके सामने आकर बोला, "डॉक्टर साहब को पुलिस पकड़ ले गयी।"

"मतलब?"

"आज सवेरे बागजोला कैम्प में फ़ायरिंग हुई है। चार आदमी मारे गये हैं। डॉक्टर साहब कैम्प में गये थे। उन्हें वहीं से पकड़ ले गयी है।"

निर्मल कुछ क्षण हक्का-बक्का हो रहा। परेश कहता गया, "डॉक्टर साहब के नाम पर दंगा करने का केस ठोंक दिया है। पुलिस कैम्प में रिफ़्यूजियों को गिरफ़्तार करने गयी थी। डॉक्टर साहब ने रोका। वह बेचारा श्रीदाम गोली से मारा गया।"

"ताऊजी को ख़बर दी गयी है?"

"नहीं-नहीं, वह मना कर गये हैं। मैंने हाजत में भेंट की है। मुझसे बोले, "जेलख़ाने की आदत है मुझे। लेकिन अपने भैया को कहने से मना किया है।"

परेश से कुंजियों का झब्बा लेकर निर्मल सीधे दवाख़ाने गया। फ़ोन उठाया कि खुकूमणि बोली, "क्यों जी, इतनी रात को क्यों?....बाबूजी को? क्यों? मैं तो हूँ। मैं क्या कुछ नहीं समझती? बाबूजी का जितना फ़ोन आता है, मुझे ही उठाना पड़ता है हुज़ूर!"

"ताऊजी से कह दे, बाबूजी गिरफ़्तार हो गये हैं।"

"अरे, यह क्या? क्या होगा?"

"कुछ नहीं होगा। तू उनसे कह न। मैं फ़ोन पकड़े हुए हूँ।"

बड़ी देर हो गयी। कान में फ़ोन लिये निर्मल देखता रहा, दीवार, फ़र्श की सुराखों, कोने-कतरे से निकलकर जीव-जगत् कैसे महोत्सव में मस्त है। दीवार पर फर्र-फर्र तिलचट्टे उड़ रहे हैं। दो लम्बे बादामी कीड़े अब तक बड़े ध्यान से विवेकानन्द की अँगरेज़ी की एक मोटी किताब पर खड़े होकर जबड़े हिला रहे थे। अचानक रोशनी और आवाज पाकर वे स्थिर हो गये। एक जर्नैल छिपकिली एक मझोले आकार की छिपकिली के पीछे तड़बड़-तड़बड़ दौड़ी।

"कौन, निर्मल ?" खाँसकर एक भारी गले की आवाज़ टेलिफ़ोन पर आयी।

"कहाँ ? बागजोला में ? बंगाल पुलिस ?....बड़ी रात हो गयी। खैर, मैं आई. जी. को फ़ोन कर रहा हूँ। छोटी बहू से कह दो, कोई चिन्ता न करें।"

"पुलिस ने राइटिंग केस ठोंक दिया है।" निर्मल ने ज़रा उत्तेजित भाव से ही कहा।

"सो तो करेगा ही, जिसका जो काम है।....सवेरे ही छूटकर आ जायेगा।"

प्रबोधसेन ने फ़ोन छोड़ दिया। ठन्-ठन् करके लापरवाही से रिसीवर रखने की आवाज़ और उनके निस्पृह स्वर से निर्मल को लगा, उसका उत्तेजना न दिखाना ही अच्छा था। सच तो, इस बुढ़ापे में रिफ़्यूजियों को लेकर इस गरमा-गरमी की क्या पड़ी थी बाबूजी को ?

"फ़ोन करने क्यों गया था ?" घर लौटते ही माँ ने पूछा।

"ठीक किया है, खाना दो।"

उस रात निर्मल ने फिर राजू का सपना देखा। वे दोनों मैदान में अँधेरे में बैठे हैं। इधर-उधर आग जल रही है। गोली की आवाज़ भी सुनाई पड़ रही है। लेकिन वे दोनों वह सब कुछ भी नहीं सुन रहे हैं, नहीं देख रहे हैं। करवट लेने में चौकी मचमचा उठी। गरदन घुमाकर उसने टेबिल घड़ी की तरफ़ देखा। साढ़े तीन।

"बाबूजी क्या लौट आये ?" नींद में ही निर्मल ने पूछा।

"नहीं।" उस कमरे से जवाब आया। प्रमदा देवी सोयी नहीं हैं।

तड़के ही सुबोध डॉक्टर छूट गये। तमाम रात नींद नहीं आयी। और साथ-साथ नहीं सोया थाने का छोकरा ओ. सी. निवारण मजुमदार।

निवारण तर्रार छोकरा है। इम्तहान में कभी फ़ेल नहीं किया। उसके बाद किसी देशवरेण्य फुटबॉल क्लब की बी. टीम का खूब ज़ोरदार सेण्टर फ़ारवर्ड। खेल-खेल की धुन में जब बाईस साल पार करके क्लब की ए. टीम में जाने का जीवन-सपना प्रायः सफल होने को आया, तो अचानक बाप की मृत्यु ने उसे भागते हुए बॉल की गति से 'धाँ' करके पुलिस सब-इन्सपेक्टर की लाइन में फेंक दिया। वहाँ से एक पुलिसी त्रिप्लव करके पहली रिक्रूटमेण्ट परीक्षा में अवाक् कर देने वाला नम्बर पाकर इन्सपेक्टर होकर निकला। मगर फ़िलहाल उसके उत्साह में भी भाटा पड़ गया है। निवारण ने यह उपलब्धि की है कि नौकरी के लिए एक विशेष स्तर पर पहुँचने के लिए जिस दावँ-पेंच की ज़रूरत है, वह उसकी पहुँच के बाहर है।

कल रात बारह बजे एक असिस्टेण्ट सब-इन्सपेक्टर ने दौड़ते हुए जाकर उसे

जगाया, "सर, एस. पी. आपको बुला रहे हैं।" और, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के कर्कश और अकुलाये स्वर से निवारण के लिए यह बात छिपी नहीं रही कि जिस बूढ़े को उन लोगों ने कल साँझ दबोचा था, वह कम्बख्त व्ही. आइ. पी. है।

रात रहते-रहते ही निवारण ने आलमारी में जतन से रखते प्याले में चाय भेजी। गाँठ का पैसा खर्च करके मोड़ की दुकान से खरीदकर बासी निमकी और गुलाबजामुन भेजा।

रात में जेठिया मिल के सामने छुरा मारने के दो केस थे। वह झमेला चुका-चुकाकर रात बारह बजे सोया था। बदन टूट रहा था। शरीर को खींच-खाँचकर किसी तरह से उठकर निवारण खुद ही कुंजियों का गुच्छा लिये हाजत के सामने जा खड़ा हुआ। वह आदमी रात को जैसे बैठा था, वैसे ही बैठा हुआ है। चाय और मिठाई सामने पड़ी है। खीज से निवारण का मिजाज और भी खराब हो गया।

कुंजियों की आवाज से सुबोध डॉक्टर ने सिर उठाकर देखा। हाजत का दरवाजा खोलकर निवारण ने कहा, "आइए सर!"

रात जगने की वजह से सुबोध डॉक्टर का मुँह और भी नुकीला लगा। गंजी खोपड़ी पर कई सफ़ेद बाल खड़े। "कहाँ जाना होगा?" बैठी हुई आवाज में बोले।

"जी, अपने घर। मैंने वैन लाने को कहा है। मैं आपको पहुँचा आऊँगा।"

"लेकिन मुझपर रायटिंग का केस जो है?"

"जी, वह सब कुछ नहीं। आप बाहर आइए।"

सुबोध डॉक्टर बाहर निकले, तो निवारण ने सामने की कुरसी उनकी ओर बढ़ा दी। उसके बाद चैन की साँस लेकर उसने सिगरेट सुलगायी।

"जी, हमारे इन्टेलिजेंस की रिपोर्ट जरा गलत थी सर! आपको तक-लीफ हुई। और हमें भी नाहक ही यह झमेला।—अब एक प्याला चाय पीजिए।"

सुबोध डॉक्टर की 'ना-ना' अनसुनी करके ही निवारण ने चाय का आर्डर दिया, "गरम पानी से प्यालों को अच्छी तरह से धो देने को कहना।" फिर धीरे-धीरे क्लान्त गले से बोला, "अभी जमाना पलट गया है सर! अभी छुरे के साथ रँगे हाथों भी खूनी को पकड़ने पर उसे कुरसी पर बिठाकर चाय पिलानी पड़ती है। शायद हो, किसी व्ही. आइ. पी. का भतीजा निकल आये। आप ही कहिए, झमेले की जरूरत क्या! फिर आधी रात को फ़ोन, दौड़ो-धूपो।"

"आप गलती कर रहे हैं, मेरे कोई अपने-सगे नहीं हैं।"

निवारण ने कहा, "मुझे सब मालूम हो जायेगा।....लेकिन सर, यह जान लें, इन व्ही. आइ. पी. लोगों के कारण देश का सत्यानाश हो रहा है। आप चोर-डकैत पकड़ेंगे कि राजनीति करेंगे ?"

"कह तो रहा हूँ, मेरा कोई नहीं है। आप यह सब क्यों सुना रहे हैं ?"

निवारण ने गम्भीर होकर कहा, "इस बुढ़ापे में क्यों झूठ बोल रहे हैं ? उस रोज़ मेरे एक मित्र की बात सुन लीजिए। बेचारा हबड़ा में शराब चुलाने के कारबार में हाथ देने गया था। नौकरी जाने की नौबत! करेंगे क्या आप ! यहाँ जितनी भी मिलें हैं, उन सबका मैनेजमेण्ट गुण्डे पालता है। हम लोगों को इसकी पक्की खबर है। थाने का भार लेने के बाद पिछले साल दो गुप्त हत्याएँ हुईं। पकड़ ठीक ही लिया। मुक़दमे में नहीं टिका। मिल-मालिक हाईकोर्ट से जरनैल बैरिस्टरों को ले आया। परिणाम हुआ कि व्यर्थ ही मजिस्ट्रेट का कड़ा स्ट्रिकचर खाया।....लीजिए, चाय पीजिए।"

निवारण की बातें सुनते-सुनते सुबोध डॉक्टर अभी तक एक दबे क्रोध से जल रहे थे। क्रोध उन्हें लड़के पर था। यह रूल की ठोकर और 'तू' सम्बो-धन जो हठात् चाय के प्याले और 'सर' में बदल गया, इस मैजिक के पीछे निर्मल के मारफ़त उन्होंने अपने बड़े भाई का हाथ भाँप लिया। लेकिन प्याले से चाय का घूंट लेते हुए कुछ प्रकृतस्थ भी हुए। पिछले चौबीस घण्टे में उनके चारों ओर तूफ़ान की तरह जो घटनाएँ घट गयीं, उन्हें अब वह समझ रहे हैं। लेकिन होगला के जंगल में श्रीदाम के विराट् लम्बे शरीर की याद बार-बार उन्हें विभ्रान्त कर देने लगी। कल पुलिस से रिफ़्यूजियों का जो खण्डयुद्ध हुआ, उन्हें पूरा का पूरा अजूबा ही लगा। वह ज़ोरों की चीख, टीयर गैस का धुआँ, खुले मैदान में यहाँ-वहाँ की छावनियों के इस-उस ओर से उद्भ्रान्त चीत्कार, आर्तनाद, उसके दो-तीन घण्टे पहले रिफ़्यूजी नेताओं की ललकार और ठीक धीर गति से बाँध के ऊपर से राइफ़लधारी पुलिसवाहिनी के आविर्भाव के साथ-साथ तरह-तरह के बहाने बनाकर उनका खिसक पड़ना—यह सब उन्हें सपने-सा लगने लगा।

"हम लोग सर, सब समय हैं—कांग्रेस में भी हैं, कम्युनिस्ट होने से भी हैं। हम ही सर, पीपुल हैं। हमें गाली देकर क्या होगा ? लोग अगर चोरी करें, डकैती करें, क़ानून तोड़ें, छुरा मारें, नशेबाजी करें, सोडे की बोतल उड़ायें, परायी स्त्री को लेकर भागें—आप क्या करेंगे ? बदन सहलायेंगे ? गान्धीजी की वाणी सुनायेंगे, लेनिन को उद्धृत करेंगे ? आदमी का स्वभाव बदल सकते हैं ?"

"देश कहाँ है ?" हठात् चाय के प्याले से मुंह उठाकर सुबोध डॉक्टर ने

पूछा।

"देश ? घर मेरा ? जी, मैं भी रिफ्यूजी हूँ। घर है फरीदपुर। पर अभी तो पाकिस्तान माने तुरकी।

"पाकिस्तान माने तुरकी ?" सुबोध डॉक्टर ने हैरान होकर ताका।

"और नहीं तो क्या ! उस देश से हमारा नाता क्या है, कहिए ? वह सब सोचने से लाभ क्या ?"

"यहाँ के छोरे-छोकरे यही कहते हैं क्या ?"

"जी सर, बोलने में किसी को झिझक है ? मगर घटना यही है।....हम लोगों के लिए—जो उम्र में कुछ बड़े हैं—उनके लिए जरा तकलीफ़ तो होती है ! बचपन में श्मशान घाट से नाव चुराकर उस पार फुटबॉल खेलने आया करता था। चाँदनी रात में मधुमती पार होना ! साथ में एक लड़का था। फ़र्स्ट क्लास बाँसुरी बजाता है....वह और चीज है।"

"ये सारी बातें भूल सकोगे ?" सुबोध डॉक्टर का क्लान्त मुखड़ा जरा उत्तेजित हुआ दीखा।

निवारण मानो अब तक ज्यादा बोल रहा था, इस अफ़सोस से वह अपने-आपको ही डाँट उठा, "इनसान को सब-सहकर जीना तो है।....वह सब भूल गया हूँ।....मेरे बच्चे एक तरह से काफ़ी अच्छे होंगे। ये सब देश-प्रेम के लिए दिमाग़ नहीं खपायेंगे।

फिर कल रात जैसे कठोर ढंग से पूछता था, वैसे ही पूछा, "आप उन क्रिमिनल्सों के बीच गये क्यों थे ?"

"डॉक्टरी करने के लिए।"

"और कहीं...." निवारण ने अपने को सँभाल लिया। "खैर, खैर....बागजोला के रिफ्यूजी बिलकुल क्रिमिनल्स हैं। बहुतों के नाम पर केस है। उधर फिर मत जाइएगा।"

सुबोध डॉक्टर बिगड़कर बोले, "फ़ायरिंग की कोई जरूरत नहीं थी। बिलकुल पोइण्टलेस। पुलिस मैंने बहुत देखी है। मगर इस तरह भड़ककर अन्धाधुन्ध गोली चलाना मैंने पहली बार देखा।"

"इस मामले में आप उपदेश न दें।....याद रखें, बड़े भाई व्ही. आइ. पी. नहीं होते तो इस केस में मजिस्ट्रेट छह महीने जेल की सजा ठोक देता।....चलिए। वैन आ गया।"

खुले वैन में ऊँघते हुए सुबोध डॉक्टर जब घर की ओर चले, तो सुबह की रोशनी भली तरह निखरी नहीं थी। तमाम रात के अवसाद, प्रायः तमाम दिन के अनाहार से उनकी चिन्ताएँ उलझ गयीं। बीच-बीच में उनकी आँखों के सामने

कई चेहरे तैर जाने लगे। गाड़ी में ऊँघते-ऊँघते कभी-कभी उन्हें भ्रम होने लगा, वागजोला कैम्प में रिफ़्यूजी लोगों के तिरपालवाले डेरे में पटसन के खेत के सामने तो वह नहीं बैठे ! मन में एक तसवीर के उभर आते ही इस अवसाद में भी सुबोध डॉक्टर हँस उठे। कल की फ़ायरिंग के बाद तत्काल हुई विधवा महिला जब किसी स्थानीय नेता के पैरों पछाड़ खाकर गिरी, तो नेताजी पास खड़े फ़ोटोग्राफ़र की ओर ताकते रहे। उस महिला को पैरों पर से नहीं उठाया। फ़ोटोग्राफ़र छोकरा भी एक ही काइयाँ था, वह कैमरे के शटर को दबा नहीं रहा था। और उस रोती-बिलखती महिला को पैरों पर रखे भले आदमी दो मिनट तक खड़े रहे। क्या हालत है ! बीते चौबीस घण्टे की अभिज्ञता से सुबोध डॉक्टर के सामने यह बात बिलकुल ज्वलन्त है कि मन्त्री, अखबार, राजनीतिक पार्टी के नेता—सबके ही लिए ये बेबस, विह्वल लोग असल में पण्य हैं, अपनी सफलता को और भी सुदृढ़ करने के लिए ये एक-एक नॉट-वोल्टू हैं।

"मॉड्ल-माड्ल, एड़ी-चोटी माड्ल," सुबोध डॉक्टर बुदबुदाये।

"गिर जाइएगा मिस्टर सेन, मज़बूती से पकड़कर बैठिए।" निवारण ने और भी क्या-क्या कहा। सुबोध डॉक्टर समझ गये कि छोकरा उन्हें आप्यायित करना चाहता है।

श्रीदाम परसों उनकी डिसपेन्सरी में आया था। बीस दिन से बेटी को बुखार है। छूट नहीं रहा है। एक बार देखने जाना होगा उसे। उसने ज़रा उद्विग्न होकर बताया था, दण्डकारण्य में उन लोगों को भेजने की बात पर कुछ झमेला चल रहा है। "हम क्या अखबार पढ़ते हैं कि जानें ?" श्रीदाम वग़ैरह अखबार नहीं पढ़ते। पढ़ते भी हैं तो समझते नहीं। सरकार दण्डकारण्य भेजने के लिए दबाव डाल रही है। और रिफ़्यूजियों के नेता—उनमें भी दो गुट, वामपन्थी तथा नमोशूद्र समाज के मण्डल का एक गुट। श्रीदाम की बातों से लगा, ये दोनों गुट दण्डकारण्य जाने में अड़चन डाल रहे हैं। मगर सीधे सरकार को अपना विचार बताते नहीं। इसी ताक में मण्डल सोच रहा है कि वह मन्त्रिमण्डल में घुस जायेगा और वामपन्थी सोच रहे हैं कि अगले चुनाव में इस इलाक़े से जीत कर नयी सरकार बनायेंगे। गोली चलने के बाद स्थिति के शान्त होने पर एक डिगडिग लम्बे बूढ़े की बात याद आती है उन्हें। जब नमोशूद्र मण्डल कहते हैं, "हम दण्डकारण्य जाने को भी नहीं कहेंगे, मना भी नहीं करेंगे", तब वह लम्बा-सा बूढ़ा आदमी चुकुमुकु बैठे लोगों के भीतर से उछलकर बोल उठा था, "आप लोग एक ही बात कहें सर ! इतनी बात मत बोलें। साफ़ कहिए कि दण्डकारण्य जायें या नहीं जायें; पुलिस आये, तो उसका सामना करें कि नहीं करें ! एक साथ इतनी बातें कहने से सब उलझ जाती हैं सर ! कहिए, हम सब क़तारों में

खड़े हो जाते हैं। आप लोग हमें गोली से मार डालिए।"

खुली ट्रक पर हवा में डॉक्टर की गंजी खोपड़ी के सफ़ेद बालों का गुच्छा खड़ा हो गया। सुबह की हवा में वह जरा सो लेना चाहते हैं, पर सो नहीं पा रहे हैं। बिलकुल नेताविहीन, राजनीतिक पार्टी, समाज-सचेतन कार्यकर्ता या सरकारी कर्मचारियों के सम्पर्क से दूर उन दो-तीन हजार दलित लोगों का क्षोभ, हताशा और अश्रुसिक्त अपलक आक्रोश—सुबोध डॉक्टर की छाती में जम-से गये। जिनके शौर्य के साहस और आत्मविश्वास के क़िस्से बचपन से उन्हें मुग्ध करते आये—पूर्व बंगाल के उस नमोशूद्र समाज की महज दस-बारह ही साल में ऐसी भूतिया परिणति हुई है, इस बात ने उन्हें हतप्रभ कर दिया। कल सवेरे जब वह कैम्प में घूम रहे थे, पटसन के खेतों के पास से हाथ में दवा का बैग लिये तिरपाल से घिरे ऊँचे-नीचे डेरों में जा-जाकर चिकित्सा कर रहे थे, उस समय भी विराटकाय लम्बे-चौड़े कुछ लोगों को देखकर उनके मन में उनका बचपन तैर आया था। उनकी चौड़ी कलाई, कन्धा, चमड़ा बदन पर ढल-ढल कर रहा था। कुछ वर्षों के कैम्प-जीवन की ग्लानि उनके आँख-मुँह पर थी, पर एक आन शायद उन्होंने तब भी नहीं छोड़ी। लाशें एक-एक करके हिन्दू सत्कार समिति की गाड़ी पर लद रही थीं, तो उन्होंने रोने की एक आवाज नहीं सुनी। गाड़ी के चले जाने के बाद गला-भर ऊँचे तिरपाल के तम्बुओं में उनके स्त्री-बच्चे धूल में लोट रहे थे। एक आदमी एकाएक चिल्ला उठा, "पुलिस को हमने हटा दिया, हमने—ये बीस के," कहकर उस आदमी ने छाती ठोंकी। गहरे अवसाद में सुबोध डॉक्टर जग उठे। इस क्षोभ और प्रतिरोध का भविष्य क्या है?

सहसा उन्हें गहरी आत्मग्लानि का अनुभव हुआ। उनके भाई का एक चालू कथन—पंजाबी और बंगाली रिफ्यूजी की तुलनात्मक समालोचना उन्हें याद आयी। बागजोला कैम्प के उस एकाकी आदमी की तरह उन्हें चीख उठने का जी हो आया, "सरकार के उन बूढ़े मुन्नों ने इन लोगों के लिए क्या किया?" सुबोध डाक्टर सच ही चीख उठे।

निवारण ने झुककर पूछा, "मुझसे कह रहे हैं सर?....और दस मिनट। बस, आ ही पहुँचे।"

सुबोध डॉक्टर गुम होकर बैठे रहे। सोचने लगे, ये बिचारे गोली, अख़बार और मरी हुई सहानुभूति की ही खुराक हो रहे। जैसे दलित थे वे, वैसे ही रह गये।

निवारण की आवाज कानों में आयी, "बाग़बाजार आ गया सर! अब किधर?"

तन्द्रा और अवसाद में सुबोध डॉक्टर जग गये। आहिस्ते से बोले, "बायो-

वाली गली।"

गली के मुँह पर ही निर्मल मिल गया। निर्मल, परेश कम्पाउण्डर, रतन—मुहल्ले के और भी दो-चार लड़के खड़े थे। ट्रक के रुकते ही परेश ने हाथ बढ़ाकर सुबोध डॉक्टर को उतरने में सहारा दिया। पर वह आप ही ऊँचे पा-दान से उछलकर उतर पड़े। निर्मल आगे आया कि वह चिल्ला उठे, "तू.... एक....," अकाल कुष्माण्ड कहने जा रहे थे। लेकिन सन्न से माथा चकरा गया। पाँव लड़खड़ा गये। निर्मल ने मज़बूत हाथों पिता को थाम लिया।

सुबोध डॉक्टर को जिस बात का भय था, वही हुआ। कुछ दिनों से साँझ को उन्हें दवाखाने में साँस की तकलीफ़ होती थी, छाती की धड़कन बढ़ जाती थी। कभी-कभी कार्डियोग्राफ़ करा लेने की बात मन में नहीं आयी हो, ऐसी बात नहीं। परन्तु जिस बीमारी का इलाज नहीं, उस बीमारी का निर्धारण करने से क्या लाभ? बल्कि इसका परिणाम यह होगा कि जीवन को जिस गति से चलाते आये हैं, उसमें बाधा पड़ेगी। धीरे-धीरे चलना होगा। और, उनकी पत्नी का जीवनादर्श अर्थात् इस संसार के सारे ही क्रिया-कर्म एक अमोघ नियम से चलते हैं, मनुष्य मात्र एक निमित्त है। गीता के इस प्राचीन और लोभनीय मतवाद को मानकर टुक्-टुक करते बाक़ी दिनों को काट देना होगा।

उनके ही मित्र का लड़का घोंतू—विदेश से हृदय रोग का विशेषज्ञ होकर लौटा है। अच्छा नाम किया है। निर्मल ने उसे बुलाया। इस स्थिति में डॉक्टर लोग जो करते हैं, घोंतू ने भी वही किया। कहा, "नमक मत खाइए, चलना-फिरना अभी बिलकुल बन्द।"

विलायत से लौटने के बाद घोंतू ने फिडेल कास्ट्रो-जैसी दाढ़ी रखी है। लम्बा चेहरा। दाढ़ी और रिमलेस चश्मे में जब वह धीरे-धीरे बोल रहा था, तो प्रमदा देवी अपने स्वाभाविक सन्तान-वात्सल्य से झकमक उस कई हजारी व्यक्तित्व की ओर स्नेह से ताक रही थीं। फ़िक्र मत कीजिए। ताऊजी को दौड़-धूप करने से रोकिए। देश में इतने लोग हैं। नेतागण हैं। वे देश को ठीक से चला लेंगे। सोचने की क्या बात है?"

चश्मे को नाक पर उठाकर एक सुई देकर बोला, "ताऊजी, आप टेन इयर्स यंगर दिख रहे हैं।"

छाती में दर्द होते हुए भी सुबोध डॉक्टर को हँसी आयी। यश फैलाने की प्रत्येक ही विद्या छोकरे ने हासिल कर ली है।

घोंतू ने निर्मल की ओर ताककर कहा, "एक-एक दिन के बाद मुझे फ़ोन कर देने से ही काम चल जायेगा। मैं आकर देख जाया करूँगा।"

उसके बाद आँखें मूँदे हुए सुबोध डॉक्टर की ओर मुखातिब होकर बोला,

"आपके बारे में बचपन से ही पिताजी से कितनी कहानियाँ सुनता आया हूँ। मेसोपोटामिया में किसी कैम्प में साहब को पीटा था। इट साउण्ड्स लाइक ए फेयरी टेल्।"

सीढ़ी से धड़ाधड़ उतरते हुए निर्मल से कहा, "लगता है, स्ट्रोक है। लेकिन उस जमाने के हैं। आजकल तो चालीस में ही। तुम अपनी बड़ेबाजी कम करके अभी कुछ दिन पिता की सेवा करो।"

तमाम दोपहर सुबोध डॉक्टर लाश की तरह पड़े रहे। नींद की दवा खायी थी, शायद इसीलिए। उसी नींद में उन्हें बागजोला कैम्प का शोर सुनाई पड़ा। गोली चलने के बाद का वह निष्फलक आक्रोश उनके कलेजे पर जमा रहा। उसके भार से वह हाँफते रहे। तीसरे पहर की तरफ एक बार आँखें खोलीं। खाट के पास पत्नी पूजा पर बैठी थी। निर्मल ने आकर एक खुराक दवा पिलायी।

पत्नी से बोले, "प्रमोद, तुम्हारी ही जीत। लगता है, हमारे करने को कुछ नहीं।"

पति के बगल में बैठकर प्रमदा देवी उनका एक हाथ पकड़े रहीं। धीरे से बोलीं, "जो करनेवाले हैं, वह करेंगे।"

"यह तो तुम अँगरेजों के अमल में भी कहती थी," हाँफते-हाँफते सुबोध डॉक्टर ने कहा।

"अभी तुम बोलो मत। तकलीफ़ बढ़ेगी।" प्रमदा देवी ने पति की गंजी खोपड़ी पर बालों को सँवार दिया।

करवट बदलते-बदलते सुबोध डॉक्टर को नींद आ गयी। शायद विपदा टली। लेकिन इस तरह से सोये हैं कि बगल के कमरे से उधर देखकर निर्मल को डर लगा। तिरछे में नाक और कपाल और भी नुकीले लगते हैं, जैसे वह सब रक्त-मांस का कुछ नहीं है। रात में कई बार उठ-उठकर निर्मल इस कमरे में आया। पति का एक हाथ पकड़े प्रमदा देवी नींद में बेख़बर। निर्मल और भी नजदीक आया। रोगी का निःश्वास-प्रश्वास बहुत ही धीमा।

सात

दूसरे दिन सवेरे सुबोध डॉक्टर स्वस्थ-से दीखे। उन्होंने उसी दिन दवाखाना

जाने की सोची, पर निर्मल के घोर आपत्ति करने पर कहीं नहीं निकले। निर्मल की किताबवाली ताक़ पर से ज़िल्द फटी 'पिक्-विक पेपर्स' पढ़ने लगे। निर्मल का क्लास देर से है। कॉलेज जाये कि नहीं, सोच रहा था। सुबोध डॉक्टर ने कहा, "घोंतू क्या कहेगा! मैं कहता हूँ, आइ ऐम ऑल राइट।" ज़रा रुककर बोले, "अगर कुछ होना होगा, तो कोई कुछ नहीं कर सकेगा। तू जा।"

आजकल दोपहर में भी ट्राम खाली नहीं रहती। पर उस रोज़ दैवयोग से एक सीट मिल गयी। उसपर बैठकर निर्मल ने सन्तोष की साँस ली। हृदययन्त्र की प्रक्रिया यद्यपि दुर्ज्ञेय है, फिर भी सवेरे पिता का चेहरा देखकर उसकी चिन्ता कुछ कम हुई है। और फ़ौरन उसे यह सोचते हुए अचम्भा हुआ कि कई दिनों से वह एक किसी के अचानक आविर्भाव की प्रतीक्षा में था। अपने चारों ओर का वास्तव इतना जीवन्त है कि चिट्ठी की मानसी के सम्बन्ध में उसकी अनुभूतियाँ शौक़ीन-सी ही तो लगीं। देश के लिए उसके बाप को जैसी निराशा है, ताऊजी को जैसी महत्त्वाकांक्षा है, उनके परिप्रेक्ष्य में अपनी अशरीरी मानसी की प्रतीक्षा फीकी नहीं लगती? आत्मग्लानि से अधीर होकर निर्मल ने सोचा, इस प्रतीक्षा से गौतम की कल्चरल सब-कमिटी में डूबे रहना भी अच्छा है।

ट्राम से बड़े धीमे-धीमे उतरा निर्मल। वह फिर शब्दों की भट्ठी खोल बैठा। एक-एक चुक्कड़ शेली का पैन्थिज्म, कीट् का हेलेनिज़म लड़कों के सामने रखा और विलियम शेक्सपियर की वाणी भी बाँटी। बंगाल ने शेक्सपियर के लिए क्यों इतनी उथल-पुथल की, यह प्रश्न आजकल निर्मल को बड़ा चुभता रहता है। साहित्य या अँगरेज़ी साहित्य का अर्थ ही है—"शेक्सपियर की कुछ नाटकीय पंक्तियाँ। उसके बाद उछलकर बंगाली पाठक चला आता है वड्सवर्थ पर, कुछ-कुछ शेली पर और जो बहुत आधुनिक हैं, वे येट्स-इलियट पर। यों असंलग्न भाव से साहित्य पढ़ना और पढ़ाना बहुत वाहियात लगता है निर्मल को। ऐसा योग-सूत्र मन में पिरोने की कोई चेष्टा नहीं है, जिससे भिन्न-भिन्न मिज़ाज के लेखकों को समझने में सुविधा हो।

लेकिन निर्मल को सुमति आयी है। इन विपद्जनक बातों का संकेत वह अब अपने लेकचर में नहीं देता। उस दिन भी लगातार दो क्लासों में बातों के पटाखे छोड़कर अवसाद से वह टीचर्स रूम में गुमसुम बैठा था। फिर गौतम का विद्रूप-भरा तीखा मुँह दिख गया। "फ़ोन पर फ़ेमिनिन वॉयस।....इसके पहले भी किया था। नाम नहीं बताया।" फिर वही ऊपरवालों-जैसी हँसी गौतम की।

और, ट्राम से आते हुए निर्मल अब तक जिस आत्मग्लानि से भर उठा था, जिस ग्लानि से एकाएक स्यालदा से खिसक पड़ा था, वह ग्लानि उसको कहाँ तो उड़ गयी। गौतम की निगाह पर दृष्टि डाले बिना ही वह प्रायः दौड़कर बग़ल के

कमरे में चला गया।

"हलो, कौन ?"

"मैं, राजू," वही मुखरा स्वर।

निर्मल चुप रहा। चिट्ठी में अशरीरी लगती थी, पर अब और भी अस्वाभाविक लगा इतना अधिक गाढ़ स्वर।

"मैं उस रोज...." निर्मल स्यालदा से भाग आने का वृत्तान्त सुनाना चाह रहा था, पर अपने निकट ही हास्यकर लगने लगा।

"कहने की जरूरत नहीं . .समझ सकती हूँ। लेकिन यहीं आयी होती, तो समझ नहीं पाती कि मामला कैसा एब्सर्ड है।....हम परसों सवेरे चले जा रहे हैं।"

"ठहरी कहाँ हो ?"

"होटल में।" राजू ने स्यालदा के एक होटल का नाम लिया। नाम सुनकर निर्मल जरा चौंका। नारीघटित मामले में कई दिन पहले अखबार में 'कानून-अदालत' कॉलम में यह नाम उसने कई बार देखा है।

"वहीं क्यों ?"

"ग्रैण्ड में ठहरने के पैसे नहीं हैं।"

निर्मल फिर चुप हो गया। एक बार सोचा, अगर आमने-सामने बैठे होते, तो क्या राजू इस तरह से बोल सकती!

फिर जैसे बोलने को कुछ नहीं रहने पर लोग कहते हैं, "क्या खबर है ?' वैसे ही पूछा, "आज सवेरे कहाँ गयी थी ?"

"थाना।"

"अरे!"

"जानते नहीं थे ? मैं भी बहुत कुछ नहीं जानती थी।....यह कहानी लिखने-जैसी बात हुई। इतना काण्ड करा-कराके आयी। आकर देखती हूँ जैसे कुछ भी नहीं!"

निर्मल को अभी तक जो लग रहा था, वह अब उसे ठीक से समझ सकता है। उन दोनों का यह पहला परिचय है, ऐसा नहीं लग रहा था उसे। फ़ोन के माध्यम पर रहना, यह मानो उनकी चिट्ठियों की ही और एक चिट्ठी है। इसके लिए, बल्कि राजू की ओर से प्रथम परिचय की जड़ता नहीं है। वह उसे मन के आनन्द से और एक चिट्ठी लिख रही है, आत्मविश्लेषण कर रही है।

"अभी मेरा क्लास नहीं है। अभी रहोगी ?"

"अभी ? नहीं-नहीं, हम अभी बैंक जा रहे हैं।"

निर्मल विह्वल होकर चुप रहा।

"थाना, बैंक—बड़ा पहेली-सा लग रहा है, न ? थाने गयी थी हाज़िरी देने। हिन्दुस्तान के लोग जब हमारे यहाँ जाते हैं तो उन्हें भी ऐसी हाज़िरी देनी पड़ती है। और, साथ में सिर्फ़ पचास ही रुपये लाने दिये। दीदी के एक मित्र बैंक लिये जा रहे हैं। कहीं और कुछ रुपये मिल जायें।"

"साँझ को ?"

"छोड़ो न, चिट्ठी और फ़ोन—यही करके लौट जायें तो नहीं होगा ?"

उधर से कट्-कट् आवाज़ आयी। एक अनचीन्हा स्वर भी सुनाई पड़ा। निर्मल को सन्देह हुआ, कोई कान लगाये हुए है। वह झट बोला, "ठीक है। मैं शाम को छह बजे आऊँगा। रहना लेकिन।" उधर की सम्मति को इन्तज़ार किये बिना ही उसने रिसीवर रख दिया।

फ़ोन रखकर चुप बैठा रहा निर्मल। राजू मानो क़दम-क़दम उसकी ओर बढ़ती आ रही है। अभी भी वह वायवीय है, अदृश्य। पर उसकी बात कानों में आकर गूँजती रही है। और, चिट्ठी में उसका जैसा दो प्रकार का मिज़ाज है, फ़ोन में भी उसका परिचय मिला। राजू की अन्तिम बात—"चिट्ठी और फ़ोन करके ही लौट जायें तो नहीं होगा ?" निर्मल के कानों में गूँजती रही। कुछ देर पहले उसके आसपास का परिवेश जैसा जीता-जागता लग रहा था, वैसा अब नहीं लग रहा। वास्तव में और भी एक प्रत्यक्ष जीवन्त सत्य स्यालदा के उस बदनाम होटल में और भी दो दिन के लिए है।

छह बजे से पहले निर्मल ने उस दिन क्या किया था, यह उसे याद नहीं। एक क्लास में वह प्रायः आँख बन्द करके विलियम शेक्सपियर की सर्वत्रगामी प्रतिभा पर कमाल का बोल गया, क्योंकि उसमें आत्मसचेतनता का दंशन नहीं था। वह उस समय शेक्सपियर के समालोचकों द्वारा दिखायी गयी सारी ही अली-गली में विचरण का अभ्यस्त था। ऐसा कि दो-तीन उस्ताद छोकरे, जो उसके पीछे पलटते ही 'निर्मल ने कैसा मंझा दिया, देख' ऐसा मन्तव्य देने के अभ्यस्त हैं, उनके ध्यान को भी उसने खींचा। वह प्रायः गौतम के आत्मविश्वास से क्लास लेता है। असल में निर्मल अपनी एक और सत्ता को अभी विश्राम देना चाहता है। पहाड़ पार करना होगा, इसलिए लोग जैसे समतल भूमि पर आहिस्ते-आहिस्ते हलके-हलके चलते हैं, वैसे ही निर्मल भी बँधी-बँधायी सड़क से निकलने का परिश्रम नहीं करता। इसलिए उसका लेक्चर सुबोध और लोकप्रिय होता है।

क्लास लेने के बाद टीचर्स रूम में कुछ देर बैठा था। वहाँ गौतम और सुव्रत में एक तर्क हो गया। उस उत्तेजित चीत्कार में कुछ शब्द बार-बार घूम-फिरकर आने लगे। 'क्लास कोलेबोरेशन', 'डोग्मेटिक ऐप्रोच', 'रिविज़निस्ट

मेण्टलिटी' या 'पार्लमेण्टरी सोसाइटी क्या टैक्टिकल' है ? या 'स्ट्रगल विदीन, स्ट्रगल विदाउट', 'इम्पीरियलिज्म इन न्यू रोप', 'बोर्जुआ एथिक्स'—इस तरह के अँगरेजी शब्द कभी गुस्से से, कभी उत्त से, कभी मायूसी से बोले जाते रहे। उग उत्तिप्त बात की चरखी एक-एक बार निर्मल को छूती, फिर चली जाती। निर्मल कान खड़े करके अपने दो मित्रों की नाम्न्य भाषा सुनता रहा। कुछ-कुछ समझ नहीं रहा था, ऐसी बात नहीं। उसके बाद उसे लगने लगा, ये शब्द, जो प्राणहीन शब्दों के लक्षण हैं, यानी 'थिंग इन इट्सेल्फ' या ऐसे एक स्वयम्भू रूप में रूपान्तरित हुए हैं कि वे सब पत्थर-युग के मनुष्य के कुठार या छुरी-जैसे सजाकर रखने के योग्य हैं, व्यवहार नहीं किया जा सकता उनका।

और कभी-कभी उसे यह धारणा होने लगती कि शायद उनका पूरा साम्प्रतिक काल ही इन शब्दों से परिणय के सूत्र में आबद्ध है। इसलिए जो भी कुछ सोचना चाहते हैं, उन्हें ही इन सब शब्दों का सहारा लेना पड़ता है। उसके बाद इन सब शब्दों की धाम में बेकार के गांठों से खुद ही उलझ जाते हैं। ठीक जैसा कि सुव्रत की बात से लगता है, वह बातों के इस आवर्त से बचने की चेष्टा करता है, मानो गौतम से कुछ बातों में तात्त्विक मेल होते हुए भी छोटी-मोटी बातों में बहुत अन्तर है। इस भाव को सुव्रत जितनी ही बार सामने रखने की कोशिश करता है, गौतम के हमले को रोकने के लिए वह उतनी ही बार अपने जोरदार शब्दों के बहाव में बह जाता है। उनके विरोध और उत्तेजना का बहुत कुछ समझ नहीं पाने पर भी निर्मल हर बार जो उपसंहार देखता आया है, उसी की पुनरावृत्ति होती है यानी गौतम अनुप्राणित कण्ठ से ज्ञान देता रहता है और सुव्रत ऊबा हुआ-सा सुनता जाता है।

निर्मल को एक-एक बार सन्देह होने लगा, उससे राजू का पत्राचार भी शायद ऐसी ही कोई शब्दों की चरखी है, जिससे रोज के सवेरे-साँझ-रात का बड़ा अन्तर है। बातों से बहुत चमक की सृष्टि की जा सकती है, पर मनुष्य का जीवन जो बहुत कुछ चमकहीन है और इस चमकहीन गल्प के सम्पूर्ण निरवच्छिन्नता के लिए ही न वह ऐसी अद्भुत है—इसने चैलेंज की सम्भवता है, उसके सामने खड़े होने में। और, जितना ही समय बीतने लगा, उतना ही मर्द स्यालदा के उस रद्दी होटल के लिए दुर्दम आकर्षण का बोध करने लगा। यह मानो उसका सिर्फ़ व्यक्तिगत मामला नहीं, लगभग एक तात्त्विक चैलेंज है। जहाँ बातों की इतनी बहार है, वहाँ वास्तव का चेहरा कैसा ?

आखिर शाम के छह बजे और उसी समय या उसके दो-चार मिनट पहले निर्मल स्यालदा के उस होटल की सीढ़ी पर ठिठका खड़ा। ऐसे ढंग से म[illegible] मकान बना है कि एक ही नजर में समझ में आ जाता है कि एक बार में म[illegible]

रह-रहकर ठीक कोई प्लान किये बिना उसे बनाया गया है। ऊपर की ओर क्रमशः सँकरा, कबूतर का दरबा। मकान में सीढ़ी भी दो-तीन। एक ग़लत सीढ़ी से उतरकर पसीना-पसीना होकर निर्मल दूसरी के दुमंजिले में चढ़ने के मोड़ पर क़दम बढ़ाकर ही ठिठक गया। पान की पीक से दीवान का कोना लाल टकटक। कोने पर जमादार खड़ा। बायें हाथ के कनस्तर में राख और अण्डे के छिलके और दायें हाथ के झाड़ू से टप्-टप् गन्दा पानी टपक रहा था।

दृष्टि उठाकर निर्मल ने ऊपर ताका कि सीढ़ी के मुँह पर दो महिलाएँ दीखीं। शायद वे दोनों भी उसी की तरह सीढ़ी पर ठिठकी खड़ी थीं उतरने के लिए। दोनों महिलाएँ बिलकुल दो ढंग की। पहली तीसेक साल की, साँवला रंग, उम्र की तुलना में भारी-भारी चेहरा। और दूसरी कम उम्र की, पतली, फीका गोरा रंग, ज़रा रुग्ण सफ़ेद—ताँत की प्याजी साड़ी पर बादामी बालों की वेणी। आँखें खासी बड़ी ही, पर निर्मल को देखकर आतंक से वे आँखें और भी बड़ी दिखीं। वह लड़की 'सों' करके कमरे में चली गयी। दीवार से सटकर पीठ पर दीवार की सफ़ेदी लगाते हुए निर्मल ऊपर चढ़ा। सामने दरवाज़े के ऊपर अलकतरे से लिखे कमरे के नम्बर को देखकर टूटे स्वर से प्रायः अपने तईं ही उसने कहा, "राजू यहाँ है?"

महिला ने अप्रसन्न होकर निर्मल की ओर ताका। "ओ, आप....निर्मल बाबू, आइए।" कमरे से लड़की का स्वर सुनाई पड़ा, "कहाँ आयें, हम लोग अभी निकल रहे हैं।" भद्र महिला ने डाँटकर ही लड़की को क्या तो कहा। निर्मल भोंदू-सा सीढ़ी पर खड़ा रहा। मिनट-भर बाद कमरे से महिला ने आवाज़ दी, "कहाँ, आये नहीं?"

निर्मल कमरे में गया। दरवाजा नीचा था। सर झुकाकर जाना पड़ा। कमरे में सच पूछिए, तो एक चौकी के अलावा और कुछ भी नहीं। अमकाठ की धूल-भरी एक मेज पर और भी धूल-भरी एक फूलदानी में दो डण्ठल अधसूखी रजनीगन्धा। एक दीवार पर रामकृष्ण और एक दीवार पर स्नान करती हुई सुन्दरी क़िस्म की लगभग विवसना एक नारी, नीचे अनधुले कप-प्याले, प्लेट में अण्डा चिट्-चिट् कर रहा है।

निर्मल चौकी के एक किनारे बैठ गया। आँखें झुकाते ही देखा, पैर के नीचे जहाँ-तहाँ फटी तेलचीकट दरी। महिला ने कहा, "पूछिए मत, चारों ओर ऐसा गन्दा है, जल्दी में और कहीं जगह नहीं मिली।"

पिछले कई साल से निर्मल जिसकी चिट्ठियाँ पढ़कर आलोड़ित हुआ था, वह सर झुकाये खिड़की के नीचे कार्निश पर बैठी। बड़े ध्यान से अपने जूते की फाँस के बकलस से उलझती हुई।

"मैं उस रोज स्टेशन गया था, मगर गाड़ी इतनी लेट थी...."

"ओ, उस रोज ! लगभग पाँच घण्टे लेट। कलकत्ता आ ही नहीं रहा था !"

जरा चुप रहकर महिला बोलीं, "नहीं आती तो अच्छा था, समझे ? महज कुछ दिन के लिए। रुपया-पैसा नहीं लाने देगा। बताइए, आने से क्या लाभ ?"

निर्मल समझ गया, यह महिला ही मँझदार में उसका किनारा है। उसने एक बार तिरछी नजर से कार्निस पर बैठी उस लड़की की ओर देखा। शायद जमीन में धँस जाती, तो उसके लिए अच्छा था।

महिला ने कहा, "और बुरा क्या लगता है, जानते हैं—बचपन में जिन जगहों में रही, वे जगहें बुरी तरह बदल गयी हैं। आज सवेरे पार्क सर्कस गयी थी। एक रिश्तेदार रहते हैं वहाँ। जाकर देखा, बस वही भले आदमी हैं, और कोई नहीं।" उसके बाद अचानक राजू की ओर देखकर बोली, "तू जो मुझे इतना तंग करके ले आयी। अब क्या है यह ? बात-बात कर।"

उधर से वह लड़की बोली, "आज नहीं गयी, तो तुम्हारा अब दुकान जाना नहीं होगा, मैं कहे देती हूँ।'

"दुकान ! इन के रुपयों में कुछ होगा ! जो भी लेने जाती हूँ, इतना दाम !'

उस लड़की ने शून्य की ओर देखकर कहा, "और एक दिन बाद आते तो नहीं होता ?"

निर्मल क्या कहे, समझ नहीं सका। हँसने की कोशिश की। इतने में दुबला, छरहरा-सा एक साँवला युवक कमरे में आया। चश्मे के अन्दर से एक बार स्थिर दृष्टि से निर्मल की तरफ़ देखकर नमस्कार किया। बड़ा ठण्डा चेहरा। निर्मल से कहा, "आपके बारे में बहुत सुना है।"

निर्मल समझ गया, राजू और उसमें सम्पर्क चाहे जितना वायवीय हो, उसे एक भीत देने के लिए राजू को कोशिश करनी पड़ी है, कलकत्ता आने के लिए।

राजू की दीदी ने कहा, "तुम्हारा घूमना इतने में ही हो गया ? कहाँ गये ?'

"चिंगड़ी[1] का कटलेट। सांगुवेली, जहाँ हम खाते थे। हूबहू वही टेस्ट।" उस युवक ने कहा।

दीदी ने कहा, "तो तुम मेरे साथ चलो। कमलालय स्टोर्स जाऊँगी.... ....और।"

"मैं भी जाऊँगी।" राजू के स्वर में आर्तनाद।

यों ही उम्र कम। तिस पर और कम लगती है। कैशोर का वह चोखा बच-

---

१. झींगुर मछली।

काना भाव अभी भी यौवन के लालित्य में धँसा नहीं है। या यह उसकी रुग्णता से वाढ़ की कमी हो। ठीक समझ नहीं पाने पर भी निर्मल को एक प्रबल ममता-सी हुई इस अपरिचित लड़की के लिए। वह उठ खड़ा हुआ। बोला, "खैर, न हो तो मैं कल आऊँगा, अभी आप लोग जाइए।"

राजू की दीदी अचम्भे से अपनी वहन और निर्मल की ओर ताकने लगी। राजू ने अब आँखें उठायीं। आँखें उठाकर ग़ौर से निर्मल को देखा। और उसकी तसवीर से बिलकुल जुदा एक पगली-सी जोत उसकी आँखों में कौंधी। अपनी दीदी की ओर देखकर बोली, "अच्छा, तुम लोग जाओ। मैं इतनी तैयारी करके निर्मल बाबू से मिलने आयी हूँ।'

राजू की दीदी ने जाने से पहले भी एक बार आगा-पीछा किया, "क्यों राजू, चलूं कि तू भी जायेगी ?"

"नहीं-नहीं, तुम लोग जाओ।" असहिष्णु-सी होकर राजू ने सिर हिलाया।

और दीदी तथा उस छोकरे के चले जाने के बाद वह कैसी तो बुझी-बुझी होकर बैठी रही। प्रयासपूर्वक बोलने के ढंग से बोली, "दीदी को साड़ी की कोर ही पसन्द नहीं आ रही है। आज भी वह ठीक लौट आयेगी। मैं जाती तो जबरन कोई खरीदवा देती।"

"बड़ा बुरा लग रहा है, न ?" निर्मल पहली बातचीत के बहुत-से धापों को पार करके बात करना चाहता है। आज और कल, बस, दो दिन। अप्रासंगिक बातों में वह इन दो दिनों को नष्ट नहीं करना चाहता।

राजू ने उसपर कान न देकर कहा, "मुन्ने बाबू को खाने का जो शौक़ है।"

"मुन्ने बाबू कौन ?"

"वही, जो दीदी के साथ गया। चिंगड़ी का कटलेट, मांस की करी, दही-मछली, कबाब, यह-वह—राक्षस है, राक्षस।" राजू अब बहुत-कुछ स्वच्छन्दता से हँस उठी।

"तुम्हारे कलकत्ता आने की बात पर मैंने जो उत्साह दिखलाया था, उस समय यह नहीं सोचा था कि तुम्हें इतनी दिक़्क़त उठानी होगी।"

"गीत-वीत जानते हैं ? यही रवीन्द्रनाथ ?" राजू ने ऐसे हलके भाव से भाववाच्य में प्रश्न को रखा कि निर्मल ठीक समझ नहीं पाया कि उसका मतलब क्या है। ज़रा अप्रतिभ होकर बोला, "बाथरूम में गीत गाता हूँ।"

"हो एकाध, हो....," राजू के पूरे चेहरे पर दबा व्यंग्य।

सुचित्रा मित्र या राजेश्वरी दत्त या वैसे ही किसी के रेकर्ड में गाये गीत को गाने की निर्मल ने चेष्टा की। खूब अच्छा तो नहीं सुनने में लग रहा था, पर बिलकुल न सुनने योग्य भी नहीं था। लेकिन बीच राह में आकर निर्मल ने

समझा, राजू को गीत सुनने की कोई इच्छा नहीं है। असल में जो विषय उसे खींचता है, जिस भावना से वह आलोड़ित है, उसे ढँकने के लिए किसी प्रकार ता-ना-ना-ना करके समय काट देना चाहती है। एक बार घड़ी भी देखी। निर्मल जी-जान से गाता रहा, जैसे जी-जान से वह क्लास लेता है। उसके बाद गाना बन्द करके कहा, "अब हम लोग स्वाभाविक भाव से बात कर सकते हैं। क्यों राजू?"....उसके बाद मानो झकझोरकर राजू की मानो नींद तोड़ने के लिए कहा, "तुमने चिट्ठी में बार-बार जिसके लिए हाथ बढ़ाया है, वही मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। भाग क्यों रही हो?"

निर्मल के बोलते-बोलते ही लड़की की दृष्टि कोमल हो उठी। स्थिर दृष्टि से जब उसने निर्मल की ओर देखा, तब उसने फ़ोटोग्राफ की वह सीधी-सादी कौतूहल भरी दृष्टि देखी, जिसने उसे खींचा था।

निर्मल फिर बाँध तोड़ने के वेग से कहने लगा, "हम लोगों के हाथ में समय कम है। इतने में ही परस्पर एक-दूसरे को पहचान लेना जरूरी है।"

"क्यों?" तीखे स्वर से राजू ने कहा।

"जरूरत नहीं है?"

"नहीं, कोई जरूरत नहीं।... मैं जरा शान्ति चाहती हूँ। बचपन से अपने चारों ओर सिर्फ अशान्ति ही देखती आयी हूँ।"

निर्मल ने व्यग्र होकर कहा, "तो फिर व्यर्थ ही आयी क्यों राजू?"

"तुम्हारा समय नष्ट हो रहा है।"

निर्मल हतोत्साह नहीं हुआ। बोला, "तुम्हारा भी। और तुमने जो यह कष्ट सहा, उसी से हमारा दाय और बढ़ नहीं जाता है?"

राजू ने कपाल पर हाथ रखकर कहा, "आज दोपहर से सर दुख रहा है। जरा चाय ले आने को कह दूँ।"

फटे मोटे प्याले में चाय पीते-पीते निर्मल ने लड़की की ओर ताका। चाय शायद विशेष रूप से उन्हीं लोगों के लिए बनायी गयी थी। ऐसा गोबर घुली काली-काली-सी गाढ़ी चाय उसने बहुत दिन से नहीं पी है।

आधी चाय पिये प्याले को खिसकाकर राजू ने कहा, "मेरा एक मित्र है—फूलू। वह मेरा आइडियल है।"

"अच्छा! लेकिन चिट्ठी में...." चिट्ठी की पंक्तियाँ निर्मल को साफ याद आयीं।

"चिट्ठी में तो आदमी कितना कुछ लिखता है।" फिर पगली-पगली-सी दृष्टि से वह निर्मल की ओर ताकने लगी।

"मैंने लेकिन जो लिखा, उसपर विश्वास करता हूँ।"

"मैं महान् लोगों से डरती हूँ।"

निर्मल ने अप्रसन्न होकर कहा, "व्यंग्य कर रही हो ?"

"फूलू बड़ा साधारण है। साधारण भाव से संसार-यात्रा करके जीवन विताया। मैंने सोचकर देखा है, वही अच्छा है। असाधारण होने की क्षमता मुझमें नहीं है।....जिसके लिए मुझे दीदी अच्छी लगती है। उसके जैसी हो सकूँ तो मुझे खुशी होगी।"

और, चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते निर्मल को जैसा लगता रहा था कि वातों की ओट में वह अपने को ढँक रही है, वैसे ही इस घड़ी वह समझ नहीं पा रहा है कि यही ठीक उसके मन की बात है या नहीं। बोला, "तुम्हारी चिट्ठी के बारे में मैंने अपने एक मित्र से कहा था।"

"वाह !"

"उसने क्या कहा, पता है ?"

"पागल कहा होगा, न ?"

"न्युरोटिक।"

राजू ने ताली पीटकर कहा, "वण्डरफ़ुल ! मुझे ये शब्द इतने अच्छे लगते हैं, उह् ! न्युरोटिक, सेण्टिमेण्टल, एक्सेण्ट्रिक।—ये कई लेबिल मैं कपाल पर साटूँगी।"

"मैं लेबिल में विश्वास नहीं करता।"

"अरे ! ग़ज़ब है ! आदमी ऐसा कभी कर सकता है ? आदमी की शक्ति कितनी है !"

"सच राजू। यही तुम्हारे सबसे बड़े आकर्षण की बात है। तुम्हारी उस चिट्ठी के ज़ोरदार शब्दों के पीछे क्या है, यही जानने की इच्छा है।"

"वाह्, ठीक नायक-जैसी बात। मैं लेकिन नायिका की तरह नहीं बोल पाती। बिलकुल मिसफ़िट्। मुझे बेतरह हँसी आ जाती है।"

कुछ देर चुप रहकर हठात् अनमनी-सी राजू बोली, "तुम तो हिन्दू हो, मैं मुसलमान। है न ?"

"हाँ, तुम लोग पिछुआ खोंसे बग़ैर धोती पहनती हो, हम पिछुआ खोंसकर पहनते हैं। तुम लोग दाढ़ी नहीं बनाती, हम दाढ़ी बनाते हैं। तुम लोग...."

"बस, बस।" कौतुक से राजू की आँखें दमक उठीं। और फ़ौरन दप्प से बुझ गयीं। धीरे-धीरे बोली, "मतीन को जानते थे ? यशोर के एक ही स्कूल के थे न ? बीच में वह बड़ा कम्युनिस्ट हो गया। बाँगला भाषा के आन्दोलन में पागल हो उठा।"

निर्मल के मन में एक धुंधली छाया उतर आयी। भोरी-सी। एक स्मृति अभी भी खो नहीं गयी है, इसपर वह अवाक् हुआ। मतीन रोज हाफ़पैंट की जेब में अपने बग़ीचे के नारियली बेर लाया करता था।

"न्यूज एजेंसी में था न?" ऐसी एक खबर निर्मल ने सुनी थी।

"अब वह जर्मनी में सेट्ल कर गया है।"

"सेट्ल कर गया!"

"समझने में खूब कष्ट होता है, न?" राजू के स्वर में व्यंग्य नहीं था। स्थिर स्वर में बोली, "हमें अब देश-वेश नाम की कोई चीज नहीं। बचपन का वह हिन्दू-मुसलमानों का विराट् भारतवर्ष कहीं खो गया! दरजा चार का एक भूगोल अभी भी मेरे पास है। मैप की तरफ़ बीच-बीच में ताका करती हूं।"

राजू अब बातों में अपने को ढँक नहीं रही है, निर्मल को लगा। लेकिन बंगाल के बँटवारे के पीछे जैसा एक दुःख है, वैसी ही एक हताशा भी है। उस हताशा का और उस हताशा से जान दिये-सा सिर पीटते अपने पिता को देखा है। और भी अच्छी तरह से देखा है पिछले दो-तीन दिन की घटनाओं में। यह हताशा निर्मल पसन्द नहीं करता। वह नहीं चाहता कि राजू का अवलम्बन करके उसके मन में जो सपना खड़ा हुआ है, उसपर इस हताशा की छाया पड़े। सावधानी से बोला, "उसके लिए सोचने से अब क्या लाभ? होना था सो हुआ।"

निर्मल की बात राजू के कानों तक नहीं पहुँची। वह अपने तईं-सी बोली, "कलकत्ते में क़दम रखकर तो और भी लग रहा है कि हमारा कोई देश नहीं है। कहीं नहीं! आख़िरकार मतीन की तरह ही हमें देश से दूर होना होगा।"

फिर वही मायूसी, जो उसकी चिट्ठी की सजीवता के बग़ल-बग़ल चल रही है, उसी मायूसी में आच्छन्न होकर वह लड़की बैठी रही।

"हम अगर अपने जी को कड़ा करके पास-पास खड़े हों...."

"कोई और एक गोत हो जाये, तो कैसा रहे?"

फिर भाँपने लगी राजू। फिर ना-ना-ना करके समय काटने की ताक में है। फिर वही अनचीन्ही पगली-सी चमक उसकी आँखों में खेलने लगी। बोली, "ढाका में हिन्दू-मुसलमान की कई शादियाँ हुई। इस पर साहित्य भी लिखा जा रहा है।"

राजू की दृष्टि के सामने निर्मल सिकुड़ गया। "तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर लेकिन लगा था...." कहते-कहते रुक गया।

राजू का चेहरा फिर स्वाभाविक लगने लगा। उसने कोमल दृष्टि से निर्मल को ताका, "बड़ा खराब लग रहा है, न ? जैसा सोचा था, वैसा नहीं है—क्यों; ठीक नहीं कहा ?....क्या पता, मैं बड़ी जल्दी बूढ़ी हो गयी हूं। इतनी अच्छी-अच्छी बातें सुनीं, इतने घर टूटते देखे।....इतना तोड़-जोड़ करके न आना ही अच्छा था।"

उसके बाद निर्मल को एक कनसोलेशन प्राइज देने के ढंग से बोली, "वह साइकिल, अभी भी है ?"

असल में बचपन में पड़ोसिन लड़की को साइकिल में दो-एक बार चढ़ाना इतना अप्रासंगिक था कि निर्मल अप्रतिभ हुआ। बोला, "नहीं, वह बहुत दिन पहले चोरी हो चुकी है।"

राजू ज़रा चुप रहकर बोली, "इसके बाद भी अगर कल आने की इच्छा हो...."

"कल सवेरे मेरा क्लास नहीं है। आऊँगा।" निर्मल ने उसकी बात को लपकते हुए कहा। उसके बाद उठ पड़ा। उठने के समय उसे लगा, वह एक अपटु नट है, जो किसी तरह से रंगमंच में घुस आया है, पर कैसे निकला जाये, यह नहीं जानता।

दूसरे दिन सवेरे नहा-धोकर बन-सँवरकर निर्मल निकला। नौ बजते-बजते स्यालदा के होटल में पहुँच गया। दुतल्ले के दरवाजे पर मोटा-सा ताला लटक रहा था। निर्मल उतर आया। धूप तेज हो आयी थी। नहा चुकने के कारण ही शायद, और भी तीखी लग रही थी। एक मामूली-से रेस्तराँ में चाय के प्याले से घूँट लेते हुए उसने अपने-आपसे प्रश्न किया, 'यह क्या माजरा है ? उनका यह सम्पर्क प्रेम है या कौतूहल, जिस कौतूहल में लोग जासूसी उपन्यास पढ़ते हैं ?'

उस दिन दोपहर में फिर अपनी चिट्ठी की मानसी को खोजने के अभियान में निर्मल ने थकावट महसूस की। जासूसी उपन्यास पढ़ने का कौतूहल जाता रहा। पानी की तरह साफ़ हो गया कि कौन आसामी है और कैसे पकड़ा जायेगा। साफ़ है कि वे दोनों और दो साँझ की बातों की फुलझड़ी जलाकर फिर अपने-अपने अँधेरे में बसेरा लेंगे। बात कभी अचूक निशाने में सहायक नहीं होने की। यह नहीं समझने देगी कि वह लड़की इसके बारे में क्या चाहती है और उस लड़की के बारे में उसी का क्या कौतूहल है। लड़की की आँखों में कामना की विशेष छाप नहीं है और छाती भी उसकी बिलकुल मर्लिन मनरो-जैसी नहीं। लगभग यह कहा जा सकता है कि ऐसी एक लड़की ने, जिसके जवानी नहीं आयी, अपने मिज़ाज की स्वाभाविक सजीवता से उसे आकर्षित किया है और

कलकत्ते आकर अपनी स्वाभाविक वितृष्णा से सिकुड़ गयी है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

पर, तीसरा पहर होते न होते निर्मल ने अस्थिरता महसूस की। एक भवितव्य की नाईं उस गन्दे होटल ने फिर उसे खींचा। सीढ़ी के मुँह पर ही राजू की दीदी का स्वर सुनाई पड़ा। "वह पत्ते-पत्ते-सी जँगला कहीं नहीं मिली।"

"वही पेल् पीले पर सैरी तो?" राजू का स्वर।

"एक और पसन्द आयी थी। नीले पर व्हाइट येलो। मगर जो क़ीमत!"

"क़ीमत सब जगह है।"

निर्मल अन्दर जाये कि न जाये, सोच रहा था। दीदी ने कहा, "मुन्ना फिर निकला?"

"हाँ। पागल की तरह घूम रहा है। पार्क सर्कस, बालीगंज, श्यामबाजार, मानिकतल्ला। लौटकर एक लम्बी सूची पेश करेगा। सुनने में बड़ी ऊब लगती है मुझे।"

"निर्मल?"

"नहीं जानती। शायद हो कि अब नहीं आये।" जरा चुप रहने के बाद और भी धीमे स्वर से राजू बोली, "नहीं ही आये तो अच्छा।"

निर्मल ने दो बार खाँसा। दीदी ने बाहर निकलकर कहा, "हाय राम, आइए, आइए। आप ही की बात हो रही थी।"

"कैसा नाछोड़ बन्दा हूँ मैं, देख रही हैं न!" निर्मल ने हँसने की कोशिश की।

"नहीं-नहीं, यह क्या कह रहे हैं आप। राजू, चाय मँगवा।"

"आज सवेरे....?"

"रुपये के फ़िराक़ में," कर्कश स्वर से राजू ने जवाब दिया।

राजू उठकर चाय के लिए कहने को गयी, तो दीदी ने अफ़सोस किया, "हम सभी बहनें एक ही-सी हैं। यह बिलकुल अलग है। क्या सोचती है, क्या करती है, समझ में नहीं आता। इसकी हमें सदा चिन्ता रहती है।"

लौटकर राजू ने भाववाच्य में कहा, "जीवन-पात्र छलकाकर माधुरी की है दान—यह गीत जानते हैं?"

"गाना तो मैं नहीं जानता।"

"अरे, मुन्ने बाबू रहा होता तो कैसे मजे में गीत सुना जाता।"

निर्मल साफ़ समझ गया कि उसका आज का अभियान बेकार हुआ। कल एक-एक बार लगा था कि यह लड़की केंचुल उतार रही है। परन्तु आज वैसा

सोचने का कारण नहीं। शायद आगे के चौबीस घण्टे इसी तरह चलायेगी।

"करीम ने व्याह-शादी नहीं की ?" राजू की निस्पृहता के कठोर आवरण को छेदने की निर्मल ने जी-जान से कोशिश की।

"कहाँ, लिली बटलर से तो व्याह नहीं हुआ।" उसके बाद निर्मल की जिज्ञासु आँखों की ओर देखकर बोली, "आस्ट्रेलियन। कोलम्बो प्लान में भैया सिड्नी घूम आया न! वहाँ टेनिस खेलने में परिचय हुआ। उसके बाद फिर व्याह नहीं किया।....सब फ़िजूल है न ? पॉलिटिक्स, प्रेम---किसी का भी कोई मतलब नहीं होता।"

निर्मल को लगा, एक उजड़े परती खेत में वह निड़ाने बैठा है। चिगड़ी के कटलेट की गन्ध आयी। उसके साथ उड़ती आयी स्यालदा से इंजन की लगातार सीटी। खुल रही है शायद। रास्ते से बहुत-से लोगों के गले की आवाज़ एक ही साथ आने लगी। शायद कोई लोकल गाड़ी आयी। निर्मल जड़वत् बैठा रहा। राजू की दीदी क्या-क्या कहती रहीं। शायद सामानों के दाम बढ़ने की बात। या उसकी बहन के दिमाग़ में छींट हैं, इसकी दो-एक घटना---इतने में उनका चचेरा भाई मुन्ने बाबू धड़ाम् से दरवाज़ा खोलकर अन्दर आया। वह कलकत्ते के कितने दर्शनीय स्थानों को देख चुका, उसकी झाँकी बताने लगा।

निर्मल चौकी से उठ खड़ा हुआ, "आज चलता हूँ।"

राजू ने चकित आँखों से ताका। फिर बोली, "मुन्नेबाबू का गाना नहीं सुना जायेगा ? उससे ताल की ग़लती नहीं होती।"

बग़ल के पतले पार्टीशन से एक भारी मदालस नारी स्वर सुनाई पड़ा, "यों बिगड़कर मत ताको।"

निर्मल चौंककर राजू की दीदी को एक अधूरा नमस्कार ठोंककर वहाँ से निकल आया।

आठ

आज अन्तिम रात। उन दोनों में से किसी ने नहीं सोचा था कि अकेले में यों आमने-सामने बैठने का सुयोग मिलेगा। कलकत्ते में राजू वग़ैरह के तीन दिन रहते दो दिन जैसे बीत गये, और एक दिन भी वैसे ही बीत जायेगा। यानी असंख्य पत्ते, कढ़ी जो मुर्शिदाबादी जँगला साड़ी चली है, उसका स्टाक समाप्त

अच्छी पटकन देगी। मेरे अन्दर प्राण का संचार हो रहा है। बचपने से नाराज़ न होना। वादा करती हूँ, तुम पर कोई भार नहीं लाद दूँगी। केवल यह जताये बिना नहीं रह सकती कि मैं मानो फिर से जी उठ रही हूँ। कैसा बुद्धू-बुद्धू-सा लगता है यह जीना! जानती हूँ, तुम्हारी भौंहें सिकुड़ गयी हैं, जानती हूँ, जीवन को अपमानित करना तुम्हें सह्य नहीं होगा। इस क्षण सब माफ़ करना होगा। मुझपर गुस्सा होना अन्याय होगा।

तुम्हारी चिट्ठी असह्य आनन्द ढोकर लायी है, वह समझाना चाहती हूँ, समझे?

घर जाने का अधिक उत्साह नहीं हो रहा। परीक्षा सामने है। तुम्हें देखने को जी चाहता है—डर भी लगता है। नाना कारण से। सब बताऊँगी, धीरे-धीरे। डर लग रहा है, देश लौटकर अगर कलकत्ता नहीं जा पाऊँ। और, कलकत्ता जाने में भी डर लगता है।

अतीत के बहुतेरे निकम्मे पौधे मेरे शरीर से लिपटे हैं, तुम्हारे बदन में वे काँटे-से चुभ सकते हैं। मुझे प्रश्रय देना समीचीन है या नहीं, इसके निर्णय का भार तुम पर रहा। मेरे लोभ से तुम मुझे बचाओ।

तुमसे इतना पाया जायेगा, आशा नहीं की थी। स्वार्थी की नाईं स्वतःस्फूर्त उत्तर भी भेजा है। यह नहीं सोचा कि तुम पर अन्याय हुआ या नहीं। नये सिरे से जीवन को गढ़ने की इच्छा है। तुम्हारे माथे पर कुल्हाड़ी मारे बिना वैसा कर सकूँगी?

तुम्हें पाया तो बहुत क़रीब है, रख तो सकूँगी? यह मुँहजली ज़िन्दगी रखने देगी तो? बड़ा डर लगता है। लगता है, यह अतिरिक्त लाभ है। कुछ भी छोड़ नहीं पा रही हूँ। सौ हाथ बढ़ाकर जीवन को चाट-चूटकर खा रही हूँ और उसे कोस भी रही हूँ, गाली भी दे रही हूँ।

तुम्हारे-जैसा मानसिक स्वास्थ्य मेरा नहीं है। इतना याद रखो तो मेरी इस बकवास को माफ़ कर सकोगे।

—रा.

पु. :—तुम इतने थोड़े में वक्तव्य ख़त्म करते हो, कैसे मुझे सिखाओगे।

कमरे में जाकर निर्मल चौंक उठा। राजू ने ऐसा तेज़ लिपिस्टिक लगाया है, बालों में साबुन लगाकर फुलाया है और तीखे-तीखे उसकी ओर ताक रही है, कि इस मूर्ति से उसकी चिट्ठी की उस खुले दिल स्वच्छ बुद्धि की दीप्ति से दमकती लड़की का कोई मेल नहीं है। यह सिंगार उसने शायद जानकर किया है, जिससे निर्मल उखड़ जाये। वह जिसमें हलकी लगे, इसके लिए वह तत्पर है,

जिससे चिट्ठी की राजू का अवयव एकबारगी लिप-पुत जाये निर्मल के मन से और ता-ना-ना-ना करके और चौबीस घण्टे काट दिये जायें।

"अपनी एक गोल्ड फ़्लेक दो तो।" फटे गले से राजू बोली।

"क्यों ?"

"क्यों क्या ?"

राजू ने निर्मल के हाथ से लगभग छीन ली सिगरेट की डिबिया। उसके बाद हाथ में लेते हुए दो-तीन सिगरेट मचका दी। उन्हीं में से एक को उठाकर बोली, "जला दो।" फों-फों करके जलती सिगरेट में कश लगाकर भर मुँह धुआँ छोड़कर खाँसती रही। खाँसते-खाँसते बोली, "लेकिन आदत है मुझे। कॉलेज से लेकर कितनी पी है। दिमाग़ साफ़ रहता है।"

"दीदी कहाँ है ?"

"दीदी मुर्शिदाबादी, कांजीवरम् ..."

"और तुम ?"

"और मैं ?" राजू ने हठात् दृष्टि उठाकर निर्मल की ओर ताका। और निर्मल ने देखा, उन आँखों की तीव्रता सहसा बुझ गयी। निर्मल की ओर देख रही हैं दो अकुलायी आँखें, कुछ ममता और कुछ अवसाद-भरी।

"मैं सोच रही हूँ, दीदी के साथ आना ही अच्छा था," फिर धुआँ छोड़ा। ...."यही तो ठीक है। झूठे स्वर्ग की रचना क्यों करूँ निर्मल ?"

आहत विस्मय से निर्मल देखता रहा। राजू ने कहा, "यही ठीक है। यह हिन्दुस्तान-पाकिस्तान। यह धर्म के नाम पर दो देशों के बड़े-बूढ़े लोगों का बन्दर-नाच।....कल दीदी मेरे बारे में क्या कह रही थी ? कह नहीं रही थी कि मेरे दिमाग़ में चोट है ?" हँसी वो एक पागल-सी, बेचैन करनेवाली नज़र से राजू ने निर्मल को देखा। और निर्मल ठीक समझ नहीं सका कि उसका यह चेहरा होंठों पर रंग मलने-जैसी ठाठ है या सच ही कुछ !

"एक्सेण्ट्रिक नहीं होती तो क्या जी सकती निर्मल ! एक्सेण्ट्रिक नहीं होती तो क्या इतनी बाधाएँ लाँघकर तुम्हारे पास दौड़ी आ पाती ! [illegible] नहीं होती, तो दादा ने जैसा कहा था, चौदह साल में मेरी शादी हो जाती।....[illegible] ही होता। दीदी की तरह चार-पाँच बच्चों को पालती। या फिर फूलू होती। फूलू का दुल्हा मेरे चाचा का लड़का है। अभी बॉन में [illegible] का डायरेक्टर है....उनकी बीवी-जैसी होती। फूलू बड़ी अच्छी है। फूलू से सब प्यार करते हैं। और सुना है, विदेश में डिप्लोमेटिक सर्विस में काफ़ी नाम कमा आयी है। लेकिन फूलू अब देश आती है और उससे ड्राइंगरूम के बारे में बेकार हम बात करती हैं, तो मुझे लगता है, ऐसे सजे-सजाये कमरे में [illegible]

ख़ेत ही ठीक है।"

धीरे-धीरे उसकी वह दृष्टि बदल गयी और उसकी बुद्धिदीप्त दृष्टि लौट आयी।

"अब साड़ी की बात न करो, हमारे हाथ में अब सिर्फ़ कुछ घण्टे हैं।"

"कहीं चलोगे निर्मल? जब से कलकत्ते आयी हूँ, घिन और ऊब से क़ै करती रही। इस गन्दे होटल की सीढ़ी पर हाथ में झाड़ू लिये जमादार खड़ा रहता है, फिर थाने पर हाज़िरी देना। तुम कभी गये हो पाकिस्तान? मत जाना। इतना ह्यूमिलिएटिंग—सिर्फ़ पचास रुपया लाने देता है। आज दिन-भर रुपये की फ़िक्र में मैं और दीदी दोनों घूमती रही हैं। उसमें निर्मल, तुम्हारी कल्पना नहीं की। ....अभी गंगा किनारे नहीं जाया जा सकता?"

निर्मल स्थिर दृष्टि से उसे देखता रहा। और उसकी चिट्ठी की एक-एक पंक्ति उसके मन में आने लगी—"अतीत के बहुतेरे निकम्मे पौधे मेरे सारे बदन से लिपटे हैं। सहन कर सकोगे न?"

"गंगा के किनारे? न-न, कहाँ चलोगी!"

निर्मल दरअसल कहना चाह रहा था, कहाँ भागोगी। समूचा देश ही बदल गया है। गंगा का किनारा भी बदल गया है। परन्तु ये बातें उसकी ज़बान पर नहीं आयीं। निर्मल को पहले कभी भी ऐसा नहीं लगा था कि देश और काल इतना लम्बा हाथ बढ़ाकर उन दोनों के सम्पर्क के बीच में खड़ा हो सकता है। देश और काल का मामला मानो सुव्रत या गौतम का मामला है, राजनीति अथवा समाजनीति में ही वह लागू हो सकता है। चिट्ठियों से कम से कम यही लगता था। चिट्ठी में निर्मल ने राजू को बार-बार सख़्त होने के लिए कहा है, उसका अपना अनुरोध अपने लिए ठीक व्यंग्य नहीं होते हुए भी कुछ अर्थहीन-सा उसके कानों गूँजा किया है—"हम दोनों यदि सख़्त होकर खड़े हो सकें तो कोई भी बाधा बहुत बड़ी नहीं हो पायेगी।" उस समय क्या उसने यह सोचा था कि राजू को थाना जाना पड़ेगा, इस गन्दे होटल में ठहरना पड़ेगा, कुछ रुपयों के लिए परेशाँ-हाल होकर पुराने मित्रों को टटोलना होगा! ढाका जाने से उसकी हालत भी तो ठीक यही होती। राजू के शब्द में यही ह्यूमिलिएशन। राजू ने जब आने की बात लिखी थी, तो निर्मल ने सोचा था, उनके प्रेम के भुवन में दो ही जने रहेंगे, बाक़ी सब छोटे हो जायेंगे। लेकिन उनके बीच दूसरे लोग इस तरह सिर ऊँचा किये हुए हैं और रहेंगे, इसका उसने विचार नहीं किया था। विचार किया होता—निर्मल अभी सोचता है—तो इस लड़की को शायद इतनी तकलीफ़, इतनी असुविधा से वह मुक्ति दे सकता था।

राजू दोनों हाथों से मुँह ढँके बैठी रही। और, उसकी नीली साड़ी में लिपटे हलके शरीर को देखते-देखते निर्मल में एक प्रबल ममता जागी। होटल में कल

राजू की दीदी की वे आकुल बातें उसे याद आयी, "वह बिलकुल अधपगली है। वह हममें से किसी-जैसी नहीं हुई। सभी बातों में ऐसी ही लापरवाह। हम तो हिन्दू-घरों से भी कितना मिले हैं। वह किसी घर-जैसी नहीं है। आप अपनी तरह चलती है। मुझे क्या डर है, जानते हैं? शायद हो कि उसका दिमाग़ ही बिलकुल खराब हो जाये।"

निर्मल का कलेजा बैठ गया था। राजू को अवलम्बन करके अवश्य ही उसका एक व्यक्तिगत स्वप्न था। वह सपना चोट खाकर आहत हुआ। लेकिन अभी यह बात स्पष्ट होने लगी कि राजू के अधपगली होने के अलावा उपाय नहीं। चारों ओर की दीवारों के बीच से कोई यदि आवाज को दीवारों के उस पार पहुँचाने के लिए चिल्लाये, तो वह उन्न का कारण हो सकता है, उसे अस्वाभाविक कैसे कहा जाये।

"और दो घण्टे बिता दो निर्मल। गाना-वाना गाओ या अण्ट-शण्ट बोलो। कल सवेरे गाड़ी है।"

निर्मल प्रबल कौतूहल से ताकने लगा। वह भयंकर रूप से प्रेम से अभिभूत हो पड़ा है, तुरत खप् से राजू से लिपट जाने का जी कर रहा है उसका, या कि वह उसके सिर को अपने सीने पर खींचकर यह कहेगा, 'तुम मेरी हो, तुम मेरी हो'....लेकिन ठीक ऐसा निर्मल को नहीं लग रहा था। हालांकि ऐसा होने के अनुकूल प्रतिवेश था। राजू की दीदी कम से कम दो घण्टे तक तो कांजीवरम के साथ ब्लाउज पीस ठीक मैच किया या नहीं, यह देखेंगी, उसके बाद अपने एक आत्मीय के यहाँ न्योते पर पार्क सर्कस जायेंगी। जिसे सघन परिवेश कहते हैं, उसका सारा माल-मसाला मौजूद। लेकिन निर्मल को लग रहा था, यह समय उसके लिए बहुत क़ीमती है, क्योंकि उसे इस लड़की के बारे में अपने बोध को जाँचने का अवसर मिला है।

निर्मल ने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। नः, गंगा का किनारा नहीं—यही गन्दा होटल, यह नोना लगी दीवारें, दीवारों पर अधनंगी औरतों की तसवीरें, डग-डग करती कुरसियाँ, चौकी, एक ओर पड़े साँझ के जूठे पिर्च-प्याले, नीचे धूल से भरी दरी—यही उसके प्रेम का पीठस्थान है। इस तरह से वे लोग खड़े हैं—यही बहुत बड़ा सत्य है। मिट्टी के सत्य से शायद हो कि यह कर्कश है। परन्तु इस सत्य का सौन्दर्य उसे स्पर्श करे।

प्रेम का पीठस्थान? बात निर्मल के अपने कानों को ही खट् से लगी। वह अपने मानसिक आलस्य से शब्दों को बलपूर्वक नहीं बिठा दे रहा है? पिछले तीन साल के पारस्परिक पत्राचार के बीच-बीच में ही उसने अपने आपसे पूछा लिया है—यह निरा बचपना है कि सीरियस कुछ है? उस प्रश्न को हल करने

में असमर्थ होकर वह प्रेम शब्द को जकड़कर पकड़ नहीं रहा है ?

"तुम्हारी चिट्ठी में...." निर्मल ने चिट्ठी का प्रसंग उठाना चाहा। अनधोये काँच के डिशों को और तेल-चीकट दरी की ओर देख-देखकर वह स्वर्ग-नरक के बीच सेतु बाँधना चाहता है !

"छोड़ो उसे। चिट्ठियाँ जब लिखी थीं, तब बहुत सारी बातें सोची नहीं थीं। और शायद बहुत बातें सोचीं नहीं, जभी इतने ज़ोर के साथ—इतने ज़ोर के साथ तुम्हारे पास आने का साहस पाया है। उस समय नहीं सोचा था कि थाने के डग-डग करते स्टूल पर बैठकर इतना समय बिताना होगा। और बोर्डर चेकपोस्ट पर लोगों की क्या दुर्दशा !"

राजू अपने रूखे बालों के नीचे अपनी बड़ी-बड़ी आँखों और नुकीली ठुड्डी उठाकर कुछ देर निर्मल की ओर देखती रही। "और भी कितना कुछ देखा। तुम्हारे पास आने में हमारे प्राण का भीतर इस क़दर सूख जायेगा, मैंने यह सोचा नहीं था। पहले मैंने सोचा था, मुझमें बड़ा जोर है। लेकिन अब सारा ज़ोर ढीला पड़ गया है।....तुम तो खासे बन-सँवरकर आ रहे हो मुझसे मिलने। मगर तुम कल्पना भी नहीं कर सकोगे कि कैसी पहाड़-जैसी बाधा को ठेलकर मैं तुम्हारे पास आ खड़ी हुई हूँ। और, खड़ी-खड़ी हाँफ रही हूँ। सोच रही हूँ, लौट जाऊँ।"

"तुम्हारी इस ग्लानि में मैं भी हाथ बटाऊँगा।"

"प्लीज़ ! कहानी-जैसी बात मत बोलो। ये बातें सुनने में बड़ी अच्छी लगती हैं। मगर वास्तविकता क्या है, जानते हो—पिछले कई दिनों से सिर्फ़ तुम्हारी बातें सुनती और व्यर्थ की बक-बक करती रही हूँ। सिर्फ़ यही लगता रहा कि मैं तुमसे ज्यादा बूढ़ी हो गयी हूँ।....हँस रहे हो तुम। लेकिन पिछले कुछ सालों से अपने चारों ओर इतना कुछ देखा, जिन चीज़ों को सबसे क़ीमती समझती थी, वे सब एकाएक निकम्मी साबित हो गयीं। यह कलकत्ता—बचपन का सपना। यहाँ रहकर कॉलेज में पढ़ूँगी। तब तक एक ही झपट्टे में देश का बँटवारा। तिनकों की तरह हम सब जानें कौन कहाँ बिखर गये।....दर्शना चेकपोस्ट पर हमारे एक सहयात्री हिन्दू भले आदमी की विसा-पासपोर्ट के लिए कैसी दुर्गति ! एक डिब्बी सिगरेट, पान, पाँच रुपये की माँग हुई। मैंने खूब डाँट बतायी। उससे कस्टम्स का वह आदमी सकपका गया। उसने पासपोर्ट देखने को माँगा। मेरा पाकिस्तानी काग़ज़-पत्तर देखकर उसकी आँखें कपाल पर चढ़ गयीं। शायद ऐसा विरोध उसने अधिक देखा नहीं था। दीदी ने मुझे खूब डाँटा।"

निर्मल ने अपने हाथ की मुट्ठी बाँधकर कहा, "यह तो हम लोगों के लिए

चैलेंज है राजू ! हम इस चैलेंज के सामने खड़े नहीं होंगे ?"

राजू हँस उठी। क्षण-भर के लिए उसकी आँखों में वही पगली-सी जोत कौंध गयी। "नाराज न होना। एक बात कहूँ....बचपन में हमारे टोले में एक प्ले होता था—ललितादित्य। बड़ी ज़ोरदार भूमिका। उफ़्, कितना अच्छा लगता था मुझे ! उसमें लड़ाई के मैदान में ललितादित्य से रानी का मिलन मुझे याद है। कहूँ ?"

उस कौतूहल-भरे चेहरे की ओर निहारकर निर्मल सिटपिटा गया। हँसने की कोशिश करते हुए कहा, "कहो।"

राजू तड़ाक से उछल पड़ी। और दो हाथ बढ़ाकर उसने आवृत्ति की, "शस्त्रों की झंकार में मिलन के मंगलवाद्य बज उठे, मरे हुओं के आर्तनाद में मिलनमंत्र गूँजे। और हम दोनों लाशों के लगे अम्बार के बीच अपने अरमानों का कोहबर रचें।" 'अरमानों का कोहबर' पर राजू ने ऐसा बल डाला कि दोनों ज़ोर से हँस पड़े। हँसते-हँसते राजू ने कहा, "तुम्हारी बात, निर्मल, मुझे बचपन के प्यार के ललितादित्य की तरह लगती है।"

निर्मल ने गम्भीर होकर कहा, "मेलोड्रामा से मुझे आपत्ति नहीं है राजू, बशर्ते वह मेलोड्रामा सच हो।....मैंने बहुतेरे चालाक आदमी देखे हैं। चालाक रहा होता, तो मैं, तुमने जो मेरी तरफ अपने दो हाथ बढ़ाये थे, उसकी ओर नहीं ताकता। कहता, सेण्टिमेण्टल या और भी सटीक कहता, न्यूरोटिक। परन्तु इस घेरे को लाँघने के लिए मैं सच ही मन ही मन तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ।"

उसके बाद निर्मल उच्छ्वसित होकर कहता गया, "आज तुमसे बातें करना बड़ा अच्छा लग रहा है राजू।....बहुत दिनों के बाद आज लग रहा है, बातों के द्वारा मैं वास्तव में किसी प्रयोजनीय वस्तु को पकड़ रहा हूँ। अधिकतर बातें तो डालडा का विज्ञापन ही हैं। तुम्हें ऐसा नहीं लगता है राजू, तुम्हारे पिता या मेरे ताऊ मान लो, मतलब कि जो कामयाब लोग हैं, जिनका नाम-धाम है, जिनके बारे में रोज नमक-मिर्च लगाकर अखबारों में छपा करता है, उन सबने वास्तव में शब्द के अर्थ का गला घोंट दिया है। जैसे कि मेरे ताऊजी का मन्त्र है, स्टैण्डर्ड ऑव लिविंग को बढ़ाना होगा...."

"या पिताजी का इस्लामी गणतन्त्र," राजू ने उत्साह से साथ दिया।

"इन शब्दों के जाल से वे अपने को बेहतर ढंग से सजाते हैं और दूसरों को फुसलाते हैं। तुम्हें ऐसा नहीं लगता है कि इस हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में सिर्फ़ कुछ निर्जीव स्लोगनों द्वारा लोगों को सुलाकर रखा गया है ? और हिन्दुस्तान-पाकिस्तान ही क्यों, बहुतेरी जगहों में...."

"बस, और नहीं।" राजू ने गीली आँखों से निर्मल की ओर ताका।

"मेरे पास बैठो।"

और निर्मल इसी आह्वान की प्रतीक्षा में था। निर्मल और राजू, चित्रलिखे-से अगल-बग़ल बैठ गये। उनकी आँखें एक-दूसरे पर नहीं, बल्कि पास-पास बैठकर मानो अपने-आपको ही देखती रहीं। या बग़ल में बैठे हुए आदमी की नज़र से अपने को देखती रहीं। इस स्थिति में कुछ क्षण गुज़र गये। और, निर्मल ने बहुत देर बाद भी सोची थी इन उज्ज्वल क्षणों की बात, मानो ये जीवन के चित्रकल्प होकर रह जायेंगे।

उसके मन को एक बार भी यह नहीं हुआ कि गम्भीर आलिंगन में आबद्ध हो, बल्कि उसने ऐसे गहरे सान्निध्य में रहते हुए भी अपनी-अपनी भावना के स्वातन्त्र्य को रखने, अपने को मिटाये बिना भी अपने को दे देने की सोची थी—यह अनुभव क्या बहुत क़ीमती नहीं है?

सुध नहीं रही कि वे कब तक इस तरह बैठे रहे। हठात् पतले पार्टीशन के उस पार की तीखी हँसी के साथ चीत्कार से वे दोनों जैसे नींद से जागे। 'नहीं-नहीं, वैसे नहीं, वैसे नहीं।' उस चपल नारीकण्ठ का संकेत उनके कानों नहीं पहुँचा। उसके बाद पार्टीशन के उस पार से दो स्त्री-पुरुष की संगम-वासना की चरितार्थता के लिए जो सब अनुयोग-दुलार-भर्त्सना के स्वर तैरते आये, उनके कानों तक कुछ भी नहीं पहुँचा। वे दोनों मन्दिर-गात्र में पास-पास खुदे दो किन्नर-किन्नरी-से हो चित्रार्पित। चित्रार्पित अपने अन्तर के सौन्दर्य से। चारों ओर के सहज ही नष्ट होनेवाले असौन्दर्य के दबाव से अपने को हटाकर उन्होंने अभी एक ऐसी जगह में प्रवेश किया, जहाँ से कोई उन्हें डिगा नहीं सकता। पन्द्रह पावर की पीली रोशनी में वह नीली साड़ी और पीले कुरते में ये दो मूर्तियाँ उस समय भारतवर्ष-पाकिस्तान उपमहादेश के पाप के प्रायश्चित्त थीं। चारों ओर के इस अविश्वास, सन्देह और जलती हुई घृणा के बीच एक रतजगी यात्रा के जमे-से परिवेश में वे एक पुराने नाटक की नयी नायिका और नायक हैं। बग़ल में ही दृष्टि जाने से शायद दिखाई दे कि असंख्य लाशों का स्तूप, लाखों-लाख जले घरों की राख उड़ रही है।

बड़ी देर के बाद निर्मल ने धीरे से कहा, "उस दिन गला फाड़कर ब्लेक की कविता क्लास में समझाने की चेष्टा कर रहा था। इस समय कविता का अर्थ और भी साफ़ हो गया है।"

उसके बाद उसने कविता की पहली पंक्ति, 'O Rose, thou art sick' जैसे ही कही कि राजू चिल्ला उठी, "चुप रहो, चुप रहो। कविता मत पढ़ो। गीत मत गाओ। मुझे यह समझने दो कि कविता से क्या सभी सत्य को पकड़ा जा सकता है? आदमी आप ही अपनी व्याख्या है।....और फिर मैं सिक्

नहीं हूँ, सिर्फ थी। कुछ सत्य, कुछ झूठे दुश्मन अपने चारों ओर खड़ा करके मानसिक द्वन्द्व में अपने को सदा क्षत-विक्षत किया है मैंने।....इलेक्ट्रा की कविता मैंने नहीं पढ़ी है। परन्तु यह मैं समझ रही हूँ कि तुम प्रेम के रोग की बात कह रहे हो। मेरी दशा ठीक उल्टी है। यहाँ पहली बार लग रहा है कि स्वस्थ हो रही हूँ।"

पार्टीशन के उस पार से जंजीर खींचने और हड़बड़ाकर बाथरूम के पानी की आवाज आयी। तौलिये से शायद किसी मर्दमूरत के हाथ-पाँव पोंछने के साथ 'आः आः'। अकस्मात् खामोशी, उसके बाद निम्न स्वर के कथोपकथन, मर्द के स्वर में डाँट। हठात् स्त्री की आवाज, "चटर्जी से मेरे बारे में कह देना जी।" पर पार्टीशन के इधर राजू या निर्मल के कानों तक उस अधम चपला स्त्री का स्वर नहीं पहुँचा। निर्मल सोच रहा था, एकबारगी एक वायवीय व्यापार, जिसका कोई आधार नहीं, जो केवल बोर्डर चेकपोस्ट, असंख्य सन्देह, अपार दुविधा को फाँद-फाँदकर आने में बिलकुल असमर्थ है, वह अभी शक्तिमान् होकर सामने खड़ा है। यह लगभग कविता-जैसा अलौकिक है। गौतम सेन के शब्दों में शायद 'सेण्टिमेण्टल नानसेन्स'। इसका रहस्य क्या है, वह नहीं जानता। निर्मल के मन ही मन चिट्ठियों के आदान-प्रदान के भीतर-भीतर सम्प्रति राजू को आश्रय करके जो अठपहरी सपना बन गया है, उस सपने की शायद कोई भीत नहीं। जिस सपने को कहने से राजू हँसी उड़ायेगी, ललितादित्य कहकर मजाक करेगी। लेकिन इसी तरह अगर घेरे को फाँद-फाँदकर राजू आये और उसके मन में ऐसा ही उत्ताप पैदा करे, तो वही क्या कम लाभ है?

निर्मल ठीक समझ नहीं सका, यही उसके मन की बात है या नहीं। बाद में सोचकर देखा था, यह उसके मन की बात नहीं है। बल्कि अपने मानसिक आवेग का वह एक निश्चित पैटर्न या नक्शा चाहता है। वह जानना चाहता है, वह कहाँ खड़ा है। यही बात उसके मुँह से अचानक निकल पड़ी, "मैं जानना चाहता हूँ कि हम लोग कहाँ खड़े हैं," खाँसकर निर्मल ने कहा।

राजू एकाएक धड़फड़ाकर सीधी बैठ गयी। अपने अनजानते ही उसने आँखें मलीं। अब तक जिस नाव पर वह पाल खोलकर नीले पानी में घूम रही थी, वह नाव अचानक चौर में अटक गयी। उसकी आँखों की सजल और दीर्घ दृष्टि खो गयी। उसकी जगह वहाँ फिर से वही पगली-सी जोत खेलने लगी। उसके छोटे सुगठित माथे से उसके मुँह का फैलाव जरा बेमेल-सा बड़ा लगने लगा।

"तुम जानना चाहते हो? मैं नहीं चाहती।" राजू ने कहा।

निर्मल समझ गया, उसकी चाल में चूक हुई है। मगर वह तो बातों को

सँवार करके बोलने यहाँ नहीं आया। वह जो अब तक खुले मैदान की हवा में बैठा है, उसका तो एकमात्र कारण यही है कि शब्दों को सजा-गुजाकर उन्होंने एक-दूसरे को भुलाया नहीं है। इससे अगर उनके परिवेश का मन्त्र कट जाये, तो भी निर्मल यह बात कहेगा। वह बरसों इस वायवीय उपस्थिति का दबाव कलेजे में लिये घूम-फिर नहीं सकता। और फिर उनके बीच बाधा किस बात की है? धर्म की? उसपर दोनों ही जने विश्वास नहीं करते। दोनों ही तो यह विश्वास करते हैं कि प्राथमिक बोध में उनकी आस्था, उसकी खिड़की सारे देश-काल के लिए खुली है।

निर्मल ने अधीर होकर कहा, "सच ही, मैं जानना चाहता कि हम कहाँ खड़े हैं। वह हमारा मानसिक विलास है या और कुछ? उसे स्थायी किसी सुदृढ़ नींव पर खड़ा नहीं किया जा सकता?"

अपनी पगली-सी दृष्टि से राजू ने निर्मल की ओर ताका। बोली, "तो क्या तुम शब्दों की बहार से बहुत डरते हो? ज़रा देर पहले तुमने कहा नहीं कि हमारे आत्मीय-स्वजन, बन्धु-बान्धव, राजनीतिक दल के लोग शब्दों का कैसा सजा-सजाया बग़ीचा तैयार कर रहे हैं! और तुम ही कह रहे हो कठोर, सुदृढ़ नींव....यह सजाया हुआ बग़ीचा नहीं है? नहीं-नहीं निर्मल, कोई बात न कहो। अब बहुत कम समय है। दीदी वग़ैरह का पार्क सर्कस का खाना-पीना ज़रूर खत्म हो चुका होगा। बस, मुन्ने बाबू आ ही चला। अभी बस चिगड़ी मछली की मलाई करी, काँजीवरम शुरू हो जायेगी। प्लीज़ निर्मल, आओ, हम लोग जैसे बैठे थे, वैसे ही बैठे रहें।"

राजू ने इस बार अलगछ्रू निर्मल के बदन का सहारा लिया। फिर धीरे-धीरे बोली, "कठोर-सुदृढ़ नींव—मैं अगर तुम्हारी तरह कठोर-सुदृढ़ होती तो जरूर कहती कि अब लौटकर पाकिस्तान जाऊँगी ही नहीं। पर मैं वह नहीं कहती। मेरे लिए वह कहना दूसरा एक सजा-सजाया बग़ीचा है, यही न निर्मल? और फिर मैं ठीक-ठीक जानती नहीं कि तुम्हारी शक्ति कितनी है। अपना समूचा भार तुम्हारे कन्धों रख देने में मेरे आत्मसम्मान को लगेगा। इतनी जल्दी क्यों निर्मल? हमारी ज़िन्दगी तो सामने पड़ी है!'

फिर दोनों चुप। और उस गन्दी दरी बिछी लड़बड़ चौकी पर उनका चुपचाप यों अगल-बग़ल बैठना गहरा तात्पर्यपूर्ण लगा—वे वास्तव में एक ग़ज़ब के सजीव मेलोड्रामा हैं, वही बचपन में अच्छा लगा ललितादित्य नाटक। या कहा जा सकता है, वे बंगाल के पाप के प्रायश्चित्त हैं। उस तद्गत परिवेश में वे दोनों अपने देश और काल के विराट् वैपरीत्य को क्षण-भर के लिए भी नहीं भूले। हालाँ कि वे घूमते रहे उस कालहीन नीलाभ चिदम्बर में, जहाँ सारा

अनेक्य सुसंहत हैं। गंगा के किनारे ठीक ऐसा नहीं होता। गंगा के किनारे ये होते केवल प्रेमियों का जोड़ा। किन्तु अपने इस परस्पर तद्‌गत, पर बिल्कुल अलग भंगी में बैठने में ये मानो दो टुकड़ों में बँटे बंगाल के ही अस्तित्व की घोषणा कर रहे हैं चुपचाप। एक बार भी ये दृढ़ आलिंगन में आबद्ध नहीं हुए या चुम्बन से अधीर नहीं हुए। क्योंकि आलिंगन इस स्थिति में अवास्तव है, चुम्बन अधीरता की पहचान। ये मानो इसी तरह चारों ओर के गन्दे परिवेश के बीच अपने मिलन के लिए युगों प्रतीक्षा करेंगे। उससे पहले सारे शब्द सजायी हुई प्रतिश्रुति हैं। यह शायद समूचे बंगाल की प्रतीक्षा है। इसमें देश के दोनों हिस्सों में रक्तपात होगा। अल्पसंख्यक लोगों के घड़ अन्धकार में, शून्य में चीत्कार करते हुए दौड़ेंगे, उनके घर की राख हवा में उड़ेगी और इसी के बीच दोनों बंगाल अपने 'अरमानों के कोहबर' की रचना का स्वप्न देखेंगे, अगल-बग़ल बैठकर।

सीढ़ियों पर पैरों की आहट। "समझ रहे हो निर्मल, हम लोग कहाँ खड़े हैं?" राजू ने निर्मल का हाथ पकड़कर पूछा।

"समझ रहा हूँ।" निर्मल ने राजू की हथेली को जरा दबाया।



पार्क स्ट्रीट

एक

सुबोध डॉक्टर बुझ रहे हैं। बागजोला कैम्प से लौटने के बाद प्रायः पाँच महीने होने को आये। उनमें बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है, बाहर से यह पता नहीं चलता। निर्मल तो बहुत बार समझ ही नहीं पाता। कभी-कभी यह भी सोचता है कि बाबूजी और भी चार-पाँच साल सबेरे हाथ में बाजार का झोला लेकर निकला करेंगे, शाम को दवाखाने में बैठेंगे। मगर जरा ग़ौर से देखने पर उनकी आँखों के दोनों ओर की गहरी काली छाप, सूखे चेहरे की रुक्षता और उसके बीच बड़ी-बड़ी आँखों में रह-रहकर स्थिर दृष्टि आँखों से छिपी नहीं रहती।

और इन कई महीनों में बाप-बेटे का बन्धन मानो पहले से और दृढ़ हुआ है। विदा होते हुए अतिथि से बातचीत जैसे चौकठ पर खड़े होकर और जमती है, वैसे ही दिल के रोगी होने के बाद निर्मल से उनके पिता की घनिष्ठता बढ़ी है। निर्मल अवश्य अपने पिता के क्षोभ और हताशा को प्रश्रय नहीं देता। देश के बँटवारे की बात उठती तो निर्मल बार-बार कहता है, "सो जब दो देश हो ही गये, तो उसके लिए सिर पीटने से क्या लाभ ?" पहले जैसा होता था, वैसे यह खुद अब उत्तेजित नहीं होता।

कॉलेज के बाद अड्डेबाजी करके शाम को जब लौटता है, तो सुबोध डॉक्टर लड़के से कहते हैं, अपनी आरामकुरसी पर लेटे-लेटे ही, "क्यों रे, क्या सोच रहा है ?"

"सोच रहा हूँ पैसों की कमी," लाइब्रेरी से लायी हुई फ़िल्म सम्बन्धी पुस्तक के पन्ने उलटते हुए निर्मल ने कहा। इन दिनों शहर के संस्कृतिसेवियों में इस पुस्तक को पढ़ने की मार-धाड़-सी मची है।

"ट्युशन करेगा ?" कोचिंग क्लास ? प्रणय बोस के साथ स्कूल में पढ़ता था। उसने ट्युटोरियल होम खोला है। बिलकुल गारण्टी। परीक्षा में आनेवाले तीन चौथाई प्रश्नों के उत्तर लड़कों को रटा देता है।"

"मैं अब उसमें नहीं जाने का बाबूजी।" निर्मल ने हँसकर कहा।

सुबोध डॉक्टर ने उद्विग्नता से कहा, "तेरे ताऊजी ने तुझसे फिर कुछ कहा तो नहीं है न ?"

"नहीं-नहीं, ताऊजी ने कुछ नहीं कहा है। और कहें तो दोष क्या? मेरे तो आप-जैसा कोई आदर्श नहीं है। पॉलिटिक्स भी नहीं समझता। मैं मामूली आदमी हूँ।"

"यानी ओपोरच्युनिस्ट।"

"इन शब्दों के अर्थ मैं नहीं समझता। यह सब सुव्रत से कहिएगा, वह समझेगा।"

"इसलिए कि सुव्रत के प्रिंसिपल हैं, तुम्हारा नहीं है।"

"शायद।" निर्मल ने अनमने भाव से कहा।

इस पर क्या तर्क हो। लम्बा निःश्वास छोड़कर सुबोध डॉक्टर ने कहा, "खैर, ऐसे कुछ लड़के अभी हैं। देश अभी मरा नहीं है।" उसके बाद अपने भतीजे के बारे में जिज्ञासा की, "सुव्रत कहीं किसी गाँव में गया था?"

"हाँ। बाँकुड़ा। कई दिन मजे में था। गाँव से लौटने के बाद फिर वही। तर्क—ओपोरचुनिस्ट, रिविजनिस्ट, रिफॉरमिस्ट।"

"तर्क तो होगा ही। इसका मतलब कि वह सोचता है।"

"नहीं जानता। मुझे लगता है, हम सभी शब्दों के जाल में फँस गये हैं। आप, ताऊजी, सुव्रत, हमारे कॉलेज का पण्डा गौतम—सभी।"

"सिर्फ़ तू ही इससे परे है, है न? तू इन सबसे अलग होकर खूब मुखियागिरी कर रहा है।"

"शायद।" निर्मल ने म्लान होकर कहा। उसके बाद सहसा उत्तेजित होकर कहने लगा, "बात, बात, बात। विप्लव, प्रेम, देश, काल, कम्युनिज़्म, जो कहिए, सब बातों के वेग में बह रहे हैं।"

लड़के की उत्तेजना से सुबोध डॉक्टर हँस दिये। यह उत्तेजना उन्हें बुरी नहीं लगती। सिर हिलाकर कहा, "मैंने जो सुना है, सब बात नहीं है रे।"

"हो सकता है।"....पिता की रातजगी आँखों पर हठात् निर्मल की दृष्टि पड़ी। बोला, "इस बेला भूख लगी है? एक कप हारलिक्स पिएँगे?"

"नहीं-नहीं, वह सब रहने दो। बोलो, बात बोलो। बात एक-एक हथियार है।"

"सुव्रत, गौतम भी यही कहते हैं।" उसके बाद जरा हँसकर बोला, "लेकिन इतनी तरह की बातों के हथियार निकले हैं कि लड़ाई में कोई किसी से पार नहीं पा रहा है। काटाकाटी हो जाती है शून्य में। अन्त में सभी हार जाते हैं।"

जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, निर्मल को लगने लगा कि और जो भी कुछ है, सो सब थोथी आवाज है, सत्य है केवल बाऊजी का प्रस्ताव। सर्व धर्म परित्याग कर उस एक ही लक्ष्य को धारण लेने की घटना उसके चारों ओर से तैयार होने लगी। और वह मानो मन ही मन जानता है कि इस प्रस्ताव पर वह राजी हो जायेगा, सिर्फ़ अपना दाम बढ़ाने के लिए कुछ देरी लगा रहा है।

वास्तव में कॉलिज में मन लगाकर अँगरेजी साहित्य पढ़ाना धीरे-धीरे सिर्फ़ एक रूपकथा के राज्य में घूमने-फिरने-जैसा होता जा रहा है। रूपकथा का यह धोखा किसी प्रकार से उन्हीं के लिए ढँक जाता है, जो साहित्य चर्चा के नाम पर एक बार विलायत-अमरीका से घूम आते हैं। एक फिरंगी आबोहवा से एकात्मता का अनुभव करते हैं, या और कुछ नीचे स्तर पर थीसिस तैयार करके या कोचिंग क्लास खोलकर अँगरेजी साहित्य का एक हथियार के रूप में व्यवहार करते हैं। लेकिन साहित्य जो कहता है, जिस वस्तु का ध्यान करता है, उसे दिन-प्रतिदिन के दाल-भात खाकर समझना-समझाना, इसके बोध की अनुप्रेरणा नहीं रहने के कारण संयबद्ध साहित्य-पाठ या उसकी चर्चा दरअसल लोगों के मन को साहित्य से बहुत दूर हटा देने का ही नामान्तर है। इलियट, रिचर्ड्स इत्यादि को पढ़कर या पढ़ाकर मस्तिष्क की स्नायुओं को सुदृढ़ करना बुरा नहीं, लेकिन उसके बाद? हाथ में एक शक्तिशाली यन्त्र देने का क्या लाभ अगर उसमें ताला पड़ा हो?

निर्मल ने यह बहुत बार सोचा है, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चर्चा से साहित्य-पाठ और चर्चा की यह दिशा हटायी जा सकती है या नहीं। लेकिन इसमें वह कुछ तय नहीं कर पाया है। पहली बात तो यह कि रवीन्द्रनाथ को ऋषि-किसी बहुकर ऐसी किस्से की स्थिति हो गयी है कि पाठकों को उन्हें अपना समझने में कठिनाई होती है। इसके सिवाय देश के स्वाधीन होने के कुछ पहले से आज तक देश का चेहरा ऐसा बदल गया है कि निर्मल को लगता है, रवीन्द्रनाथ के साहित्य अथवा मिजाज का छायापथ बंगाल के साहित्य या मिजाज में अब प्रतिभासित नहीं होता। वह मानो विद्यासागर की नाईं एक अथवा अकेले ही एक उपाख्यान है। उनपर सभा-सम्मेलन किया जा सकता है, परन्तु [illegible]

नराश्य के अँधेरे से मुँह फिराने में अब वह मदद नहीं करते। कुछ गीत बुरे नहीं लगते, बस यहीं तक। वास्तव में रवीन्द्रनाथ की रचना उसके ताऊजी के एसेम्बली-भाषण-जैसी, गौतम के समाजतात्त्विक विश्लेषण-जैसी या उसके पिता के हताशा और उत्तेजना की ताड़ना के व्याख्यान-जैसी हैं—शब्दों का सम्भार। और शब्दों के पीछे की रीढ़ कहाँ ग़ायब हो गयी है, इसलिए विराट् शब्दों का चेहरा मांस के एक बहुत बड़े लोंदे-सा थल-थल कादो है, जिसे पीट-पीटकर जैसा अवयव देना चाहो, उसी अवयव में ढाला जा सकता है। शब्दों के इस अत्याचार से विशुद्ध सत्ता के गर्व से दूर खड़ा नहीं रहकर सबके साथ हाथ मिलाकर मांस के इस विराट् लोंदे को पीटने से कैसा हो? वैसे में तो शब्द को पुनरुज्जीवित करने का व्रत मन के पीछे नहीं रहेगा, क्या सत्य है, क्या मिथ्या—इस पुराने प्रश्न का दबाव नहीं रहेगा। इस नकारात्मक द्रष्टा के बदले गौतम की भाषा में वह भी जीवन का सहभागी होगा। वह भी मेरुदण्डविहीन शब्दों की संसार-व्यापी काया को पीट-पीटकर जी-जान से फुलाने-बढ़ाने के लिए सबके साथ भीड़ में जायेगा।

पिछले पाँच-छह महीनों से निर्मल कॉलेज में अच्छी प्रतिष्ठा पाने लगा है। साहित्य समझाऊँगा—ऐसे डॉनक्विकसॉटी इरादे को छोड़ देने से वह आजकल फर्राटे के साथ पढ़ाता है। यहाँ तक कि वह गौतम का भी प्रिय हो गया है, प्रिंसिपल कुछ अधिक स्नेह करते हैं, छात्रों में से कोई-कोई घर पर आने लगा है और उनमें से कोई खप् से पाँव पर हाथ रखकर प्रणाम कर लेता है। डॉक्टरेट करके अभी-अभी स्थापित हुए किसी विश्वविद्यालय में 'रीडर' बना जा सकता है या नहीं, यह इच्छा भी उसके मन में ताक-झाँक करने लगी है।

और अगर रीडर होना ही लक्ष्य हो, तो फिर ताऊजी के प्रस्ताव के अनुसार पब्लिसिटी फ़र्म में ही क्यों नहीं? दूसरे में और भी अधिक पैसा है। इस मामले में निर्मल का मस्तिष्क स्वाधीनता के बाद के मुनाफ़े से फूले हुए भारतीय व्यवसायियों के मस्तिष्क की तरह काम करता है। किसमें रुपये को लगायें—अखबार में या सीमेन्ट के कारखाने में?

तीन

ढाका

निर्मल,

किसी के मन पर हाथ नहीं डाला जा सकता—अब यह बात क्यों लिख रहे हो ? जरा समझा देना।

तुम्हें देखने को जी चाहता है, लेकिन मुझसे भेंट हो, यह मैं नही चाहती। इसलिए कि देखकर जी भरे, मुझमें अब वैसा कुछ नही है। मुझे जरा भी समझ नही सके। देखो न, मेरा अपना कोई ढंग नही, कोई भंगी नही। मैं इमोशन की दासी हूँ। ऐसी स्थिति में मैं अच्छी नही लगती, यह तो हर समय खूब स्पष्ट था तुम्हारी चिट्ठियों में, बातों में। मैंने ही बल्कि अपने को यह कहकर ठगा किया कि तुम व्यंग्य पसन्द करते हो।

आश्चर्य है, प्रियजनों से बात करते पर मेरे साथ अँगरेजी आ ही जाती है। कह सकते हो, यह breeding का दोष है। मैं मगर लाचार हूँ। यहाँ अँगरेजी की कोई तरक्की न हो चाहे, बँगला दिन-दिन भाड़ में जा रही है। बिलकुल पूरी तरह से hybrid हो गयी। कलकत्ते आकर 'जल' कहने में झिझकती हूँ, यहाँ 'अल्ला' कहने में हिचक होती है। देश के बँटवारे के बाद देशहीनता का भाव और तीखा हो गया है। अन्दर यह खच्-खच् गड़ता रहता है, *Where do I belong ? कहाँ ?* आज भी इसका निपटारा नही हुआ।

एक उजलता हुआ sentence तो अब तक नजर में ही नही आया। तुम जानना चाहते हो, तुम कहाँ खड़े हो। दूर से अपने मनोभाव की बात लिख चुकी हूँ, निकट से तुमने देखा, उसके बाद भी लिखा—अब एक सार्वजनीन sentence में मैं स्पष्ट प्रश्न या स्पष्ट उत्तर दूँ कैसे ? मैं खूब समझ रही हूँ, मेरे काण्ड से व्यंग्य के प्रति तुम्हारा आकर्षण और भी बढ़ा जा रहा है। लेकिन तुम्हारा व्यंग्य बढ़ाने के अलावा कोई उपाय नही देख रही हूँ।

हो सकता है, तुम्हारे मन में हो रहा है, यों रह-रहकर तुम्हें इस ढंग से मेरे चिट्ठी लिखने का कोई मतलब नही होता। पर, केवल विशेष ढंग से प्यार की भित्ति पर हम लोगों का चिट्ठी लिखना शुरू नही हुआ है। मेरी

ओर से अगर उस विशेष प्रकार के प्रेम की धारा और भी सूखने को आये, तो उससे चिट्ठी लिखना बन्द कर देने की आवश्यकता पड़ गयी, यह मैंने नहीं सोचा।

आश्चर्य है, पिछले एक साल में जो कुछ हुआ है, जाने क्यों तो लगता है कि सब मेरे अकेले का लाभ है, अकेले की क्षति है। जिन कई दिनों के लिए तुमने जो मुझे जीवन की चोटी पर चढ़ा दिया था—वह भी, उसके बाद मेरा प्राण-मन जो सूख गया, वह भी। लगता है, सब मेरा अकेले का है। तुमने हर वक़्त ऐसा एक निर्वैयक्तिक सुर बनाये रखा था या मैं crude हूँ कि तुम्हारे प्रकाश की क्षीण धारा को सब समय आँखों-आँखों नहीं रख सकी। अपने आवेग में अपने को सेंका किया, जलाया किया।

कम तो पहले भी खाया है, सात-आठ रात के बाद-बाद सोयी हूँ। पर ऐसा नहीं हुआ। शायद हो कि अब पूरा पागलपन मुझपर सवार हो जाये, निर्मल, तब तुम सबसे कहना कि मैं सदा ऐसी नहीं थी। लेकिन तुम कह सकोगे क्या? तुमने तो मुझे स्वाभाविक रूप में हँसते नहीं देखा है। तुमने जब मेरा साहचर्य चाहा था, तो लगा था, पृथ्वी पर मेरा एक स्थान हुआ। वह कैसे इस तरह खो गया? कैसे उत्साह से भर गया था मन-प्राण! अपने कलेजे की धड़कन में तुम्हारी सख्त मुट्ठी का आभास पाती थी। असल में ग़लती हुई थी। मैं essentially पूर्वी बंगाल के imotion की ग़ुलाम हूँ, तुम composure के। इस व्याख्या की अगर कोई निष्पत्ति होती! और, मैं निष्पत्ति भी नहीं चाहती। जरूरत हो तो तुम, तुम व्यवस्था करना, मुझे सहयोग देना होगा।

मैं तुम्हें disgust का drug पिला रही हूँ थोड़ा-थोड़ा करके, इसमें मुझे उमंग नहीं है। I can't help my nature, तो भी मैं खूब अच्छी तरह से जानती हूँ कि अपनी चिट्ठी में तुम अपने चारों ओर के लोग-बाग के बारे में जैसा व्यंग्य करते हुए लिखते हो, मन ही मन मुझे भी वैसे ही एक टाइप के चरित्र में खड़ा करते हो, हँसते हो, दया करते हो भगवान् की तरह। And to be sure, I hate God for this very reason.

चार

रोज रात के अन्तिम प्रहर में पसीना देकर नींद टूटती है सुबोध डॉक्टर की। अन्तिम रात्रिप्रहर यानी रात के तीन बजे। कभी तीन बजे, कभी तीन बजकर दस मिनट पर। बिल्कुल बँधा-बँधाया नियम। माथे के ऊपर सबसे ऊँची चोटी पर पता चलता है और वह कुलकुलाकर पसीजते हैं। टेम्परेचर उतरता है, शायद छियानबे। रास्ते की रोशनी से कमरे का भीतर साफ़ झलकता है, बगल में सोयी प्रमदा के बालों की लटें पंखे की हवा में उड़ती हैं। यही क्या उनका दुनिया से विदा होने का परिवेश है? सुबोध डॉक्टर इस प्रश्न को मन में लाते रहे।

ठीक जरा देर के बाद ही गंगा से जहाज ने भोंपू बजाया और कुछ चौंके हुए कौए कांव-कांय करके चुप हो गये। निर्मल बगल के कमरे में नींद में बुदबुदाया, प्रमदा बेख़बर सोयी हुई। और, सुबोध डॉक्टर के मन में बचपन में पढ़ा हुआ युधिष्ठिर का वह बहुत पुराना प्रश्न आया। सबसे आश्चर्य-घटना क्या है?—सबसे आश्चर्य-घटना है—चारों ओर निश्चित मृत्यु को देखकर भी यह विस्मरण कि मनुष्य मरणशील है। ये चिन्ताएँ उन्हें पहले कभी नहीं आयीं। परलोक के लिए उन्होंने कभी माथा-पच्ची नहीं की।

हठात् सुबोध डॉक्टर तकिये के नीचे एक हाथ डालकर टटोलने लगे। उसके बाद जानें क्या नहीं पाकर अवसाद से हाँफने लगे। तकिये पर सिर झुकाकर फिर कुछ देर विश्राम किया। पता चला कि कान के पास पसीना जमा है। दो बार हल्की डकार ली। गले के पास कफ़ जैसा कुछ जमा है, जिसे उतारने की कई बार कोशिश की, पर वह मानो गला और छाती में कसकर बैठ गया। वह उठकर बैठे। एक बार सोचा, स्त्री को जगा दें क्या! पर दिन-भर चूल्हा-चक्की सम्हाल कर, पैसे की तंगी में तमाम दिन की होड़ से थकी हुई प्रमदा को जगाने का जी न हुआ। सहसा जाँघ के पास छोटा आईना-सा लगा। उन्होंने आईने को उठाकर आँखों के सामने रखा। रोशनी-बुझे कमरे में भी गजब का साफ़ दीखा उनका चेहरा। इस चेहरे से दीवार में टँगी महज दस साल पहले की तस्वीरवाले चेहरे की कोई समानता नहीं। न:, यह अब निर्मल के उस नुकीली दाढ़ीवाले रिमलेस चश्मा धारी काठियावाड़ स्पेशलिस्ट के बूते की बात नहीं।

आश्चर्य है, कफ़ उतर गया ! सुबोध डॉक्टर ने आराम से आँखें मूँद लीं, हलके से तकिये पर पीठ को टिकाया। तो, कफ़ साइकोलॉजिकल है, जैसे कि हँफनी भी साइकोलॉजिकल है। आजकल कोई-कोई चर्मरोग को भी साइकोलॉजिकल कहते हैं। बायें हाथ से वह पेट को दबाने लगे। लीवर पर हाथ पड़ा, यह भी क्या साइकोलॉजिकल है ?

इस लीवर के लिए ही कार्डियक स्पेशलिस्ट से ठनी। लीवर पाँच इंच बढ़ने पर दवा से नहीं ठीक होता—उस नुकीली दाढ़ीवाले से यह बात कहने पर उसने उन्हें माडर्न साइन्स के बारे में समझाया। सुबोध डॉक्टर पहले की भाँति चिल्ला नहीं सकते, वह घायल जन्तु की नाईं आँखें बड़ी-बड़ी करके वह भाषण सुनते रहे थे।

भोंपू बजा। कौए पहले की तरह बोल उठे। पिछले तीन महीने से उनींदे रहकर सुबोध डॉक्टर को इस पृथ्वी-परम्परा के प्रति एक प्रबल आकर्षण हो गया है। आजीवन वह इस परम्परा के विरुद्ध लड़ते आये हैं। जो रोज़ घटता है, उन्हें लगता रहा है, वह घटना नहीं है। जो आम तौर से घटता नहीं, वही घटना लगती है। अब यों रातों के निःशब्दता और शब्दों के आदान-प्रदान से, अन्धकार और प्रकाश के इस सह-अस्तित्व से वह जो कुछ रोज़ घटित होता है, उसके लिए वह उत्सुक बने रहते हैं। वास्तव में अभी अगर गंगा से भोंपू नहीं भी बजता, यदि चौंके हुए कौए बोल नहीं उठते, निर्मल नींद में नहीं बुदबुदाता या पंखे की हवा में प्रमदा के बालों की छोटी-छोटी लटें खड़ी नहीं हो उठतीं, तो मानो वह वंचित होते। नाटकहीन ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं को जोड़कर ही क्या जीवन है ?

सुव्रत कल आया था। सुबोध डॉक्टर को देखकर उसे कुछ तकलीफ़ ही हुई। पहले नहीं होती थी। पहले सुव्रत का लक्ष्य खूब स्पष्ट था, अब ठीक लक्ष्यभ्रष्ट नहीं होते हुए भी नाना प्रकार की बाधा-विपत्ति की बात ही उसने कही। उसकी पार्टी में किस बुरी तरह मनमुटाव आ गया है। शायद हो कि पार्टी टूट जाये। ऐसी बातें। जबतक रहा, बोलता ही गया। बोला, "आपके समय में अँगरेज थे, इसलिए अँगरेजों को भगाना ही प्रधान लक्ष्य था। वही सबको मिलाता था।" सुबोध डॉक्टर ने कुछ कहा नहीं। स्पेशलिस्ट की बात, भतीजे की बात सुनते ही गये। वह भतीजे को कैसे समझायें कि ऐसी आइडियोलॉजी के नाम पर दल-उपदल का कलह वह आजीवन देखते आये हैं—वही सी. आर. दास, जे. एम. सेनगुप्त के जमाने से। अब शायद अन्तर्राष्ट्रीय बातें बहुत आ जाती हैं, लेकिन कलह के मानो आखिर कलह ही है, सो वह देश-प्रेम के लिए हो या समाजतन्त्र के लिए ही हो, यह बात मृत्यु के सामने खड़े होकर उन्हें पानी की

तरह साफ दिखाई दे रही है।

नींद में निर्मल ने करवट बदली। बेटे की ओर देखकर सुबोध डॉक्टर हल्के से हँसे। निर्मल मानो अपने पिता के प्रति वीतराग का प्रायश्चित्त करने के लिए दौड़-धूप में लग गया है। स्पेशलिस्ट को बुलाने का कारण भी यही है। बार-बार खाने के लिए उन्हें तंग करने के पीछे भी शायद यही मनोभाव है। निर्मल मन ही मन अपने ताऊ को अपने पिता से ज्यादा श्रद्धा करता है, इसे सुबोध डॉक्टर समझ गये हैं, इसीलिए इतने विलम्ब से बेटे का उनके लिए ऐसा करने से उन्हें खीज होती है। निर्मल ने कॉलेज स्ट्रीट के अपने साँझ के अड्डे में जाना छोड़ दिया है। घर आते ही चिल्ल-पों करता है। तापमान लो, दही खाओ, डाभ का पानी पीओ। स्पेशलिस्ट की नुकीली दाढ़ी और बातचीत ने उसे प्रभावित किया है। उसने भी विश्वास कर लिया है कि लीवर के पाँच इंच, बढ़ने से भी भूख लगेगी, कै नहीं होगी, शारीरिक क्रिया पहले की अक्षुण्ण रहेगी। यह नहीं होता, नहीं होता—सुबोध डॉक्टर ने हाथ ढीला करके आईने को बिस्तर पर फेंक दिया।

बड़ी देर तक आवाज करके मित्तिर के घर के सामने के पेट्रोल पम्प से वग निकली। बड़े रास्ते पर ट्राम चलने की आवाज। अब प्रचण्ड शब्द करके मुहल्ले को कँपाते हुए सरकारी दूध की गाड़ी गयी। कल से झर-झर पानी गिरने की आवाज। नाप मिल जाती जरा तो अच्छा होता। भोर की हवा में प्रमदा सिकुड़-सिकुड़कर सोयी थी। सुबोध डॉक्टर के कपाल पर फिर पसीना जमने लगा। उनकी दृष्टि की तरह चिन्ता-शक्ति एक जगह खड़ी हो गयी। भोर के प्रकाश में बिस्तर पर उकडूँ बैठी किसी मूर्ति की तरह सुबोध डॉक्टर बैठे रहे। कान के पास के बालों का लम्बा गुच्छा पंखे की हवा में एक बार उठने, एक बार गिरने लगा।

कुछ देर के बाद बरामदे से आते हुए पिता की ओर देखकर निर्मल चौंक उठा। प्रमदा देवी सो ही रही हैं। निर्मल दौड़कर पिता के पास गया। साँस चल रही है। पिता को लिटाकर वह फोन करने के लिए नीचे दौड़ा।

ग्यारह बजे स्पेशलिस्ट आये। बहुत से जरूरी केस हाथ में हैं—बोले, बैसा होने पर भी आये हैं। रोगी के होश हुआ था। एक सुई दी गयी—उसके पहले अवश्य तीक्ष्ण दृष्टि डालकर स्टेथिस्कोप से बड़ी देर तक जाँच की स्पेशलिस्ट ने। मायूस प्रमदा देवी की ओर देखकर बोले, "चिन्ता मत कीजिए, ठीक हो जायेंगे। इनसे भी ज्यादा सीरियस केस आज-कल अच्छे हो रहे हैं। मेडिकल कॉलेज में भर्ती करा दिया जाता तो अच्छा होता।"

"जो होना है, यहीं हो।" प्रमदा देवी ने डरते-डरते कहा।

छोकरा डॉक्टर मीठा हँसे। "डॉक्टर के घर में ऐसा सुपरस्टिशन होना ठीक नहीं।" निर्मल की ओर ताककर बोले।

सीढ़ी से जब उतरने लगे, तो निर्मल ने कुछ विह्वल भाव से ही पूछा, "कोई दवा नहीं बढ़ेगी ?"

स्पेशलिस्ट फिर हँसे। "दवा ?" भवें सिकोड़ीं, मानो अनधिकार चरचा हो रही है। उसके बाद निर्मल शायद ठीक समझ नहीं सका, पर बहुत कुछ यों सुना: "पहले क्या दिया है ?....पेनासिरिन ?....अच्छा अब टेनासिरिन ट्राई कीजिए। यह पहले के नुस्खे में ही है। एक बार ट्राई कीजिए।"

"ट्राई करूँ ?" निर्मल की स्वगतोक्ति।

"हाँ-हाँ, ट्राइ, ट्राइ, ट्राइएगेन !" उसके उतरने की आवाज़ के साथ उत्तर खो गया।

पाँच

लक्ष्मीपुर से लौटने के बाद सुव्रत को धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि उम्र बहुत बढ़ गयी है।

लक्ष्मीपुर में कृषि-अफ़सर के 'टेरस कल्टिवेशन' शब्द के व्यवहार पर उसे आपत्ति थी, पर जिस पार्टी के कार्ड पर उसने कैशोर और जवानी को गिरवी रखा है, वह कार्ड क्या और भी अनगिनती विवाह-नववर्ष-बड़े दिन के कार्ड से एकाकार नहीं हो जाता है ? उसकी भी पार्टी और-और राजनीतिक पार्टियों की तरह आखिरकार कुछ थोथे शब्दों की सृष्टि में मदद नहीं कर रही है ?

इस तरह के विचार ने लेकिन सुव्रत को, उसके भाई निर्मल की तरह राजनीतिविरोधी नहीं बनाया है। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीत रहे हैं, राजनीति के इन असंख्य प्राणहीन वाक्यजालों से उसकी पार्टी कभी निकल सकेगी या नहीं, इस सम्बन्ध में वह सन्देहालु हो उठा है। और अगर यह नहीं होता है, तो भारतवर्ष-जैसे ग़रीब देश में वह जो बहुतों की तरह एक प्रगतिवादी समाज-तन्त्र की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आ रहा है, वह स्वप्न खड़ा कहाँ होगा ? वैसे में जीना होगा निर्मल की तरह केवल दर्शक होकर और सिर्फ़ दर्शक होकर रहा नहीं जा सकता, सुव्रत इस दर्शन पर से विश्वास खो नहीं सका है।

बच्चे झगड़कर एक-दूसरे का बाल पकड़कर लटक जाते हैं, यहाँ तक कि

उँगली काट खाते हैं। पर आगे चलकर फिर मेल हो जाता है। फिर सब खेलते हैं। पिछले पाँच-छह महीने में सुव्रत की पार्टी का भीतरी झगड़ा-झंझट झोटा-झोटी, काटा-काटी में बदल गया है। बच्चों के झगड़े से एक जगह अन्तर है—बड़ों का यह झगड़ा वास्तविक समाजतन्त्र के नाम पर, मार्क्स के नाम पर या लेनिन के नाम पर आत्मसमालोचना है। लेकिन आर्डर दी हुई ऐसी आत्मसमालोचना से कुछ होता नहीं, विरोध बढ़ता है। जो दो लोग बीस साल तक एक साथ पास-पास काम करते आये हैं, जेल गये हैं, वे दोनों ही दोनों को असह्य नये-नये काल्पनिक तिरस्कार से धिक्कारते हैं। वह सब तिरस्कार अधिकतर अँगरेजी में—ये सब शब्द शुरू-शुरू में तीर की तरह बदन में बिंधते हैं, उनके व्यवहार में अकसर इनकी धार भोथरी हो जाती है। और, इस तीर का जो क्षत है, उसमें लहू नहीं निकलता, मन छिन्न-भिन्न होता है।

मिर्जापुर के मेसवाले सुव्रत के डेरे में आजकल कुछ विह्वल लोग आ-जा रहे हैं। वे लोग साँझ को चौकी पर मुढ़ी की पार्टी करते हैं। उनमें एक उम्र-वाले प्रेस के फोटोग्राफ़र, अध्यापक, छात्र, ट्राम के बहुत दिनों के ट्रेडयुनियन कार्यकर्ता भीड़ लगाते हैं। फ़ोटोग्राफ़र—जिनके बारे में यह कहा जाता है कि पार्टी का रुपया मार लिया है और जो कहते हैं, पार्टी ने उनका सत्यानाश कर दिया है—कहते हैं, "और क्यों भैया, बिसात उठाओ। काफ़ी दिन तो हुआ। अभी भी उम्र है। नौकरी-चाकरी करके घर-गिरस्ती बसा सकोगे। हमारी उम्र हो चुकी है। पड़े रहेंगे। हम लोगों की तो और कोई गति नहीं है। मगर तुम सब क्यों भैया! कोई नौकरी करो। दूसरे लोगों की तरह शादी-ब्याह करके घर बसाओ। न हो तो पाँच-छह रुपये उस लड़के को देना, जो स्कूल की फीस नहीं दे सकता है। गरीब रिश्तेदारों के ब्याह में न हो तो कुछ मदद करना। उस मदद का मतलब है। उसमें एक गरीब लड़का पढ़ तो सकेगा। एक गरीब लड़की की शादी-वादी होगी। पर यहाँ? कह सकते हो, यह आत्मत्याग किस लिए? मेरा लड़का टी. बी. का शिकार होकर अस्पताल में पड़ा था—पार्टी से कोई देखने के लिए गया था? मगर जहाँ जाने को है, वहाँ ठीक ही दौड़ा जायेगा। यह सभी पॉलिटिक्स एक ही है भैया—झूठ को किस तरह से दवा दे सकते हो—यही तो पॉलिटिक्स है?"

"तुम्हारी बात मान नहीं पा रहा हूँ अपूर्व-दा," मन्द हँसकर सुव्रत ने कहा, "रास्ते पर चलने में धूल लगानी ही होगी।"

"तुम भी ऐसी मन को धोखा देने की बात करते हो?" अपूर्व प्रायः बिगड़ उठा।

—ढ़े के भीतर में

"दस साल पहले ये बातें मन में क्यों नहीं आती थीं ? आज यह सब क्या
रही है ?" सुव्रत के प्रश्न से ज़रा अकचकाकर अपूर्व ने कहा, "दस साल
पहले पार्टी में इतनी बदमाशी नहीं थी।"

"बदमाश भले, इन्हीं सब लोगों से है आदमी। इन्हीं से है पार्टी। पार्टी
का जब जोर रहता है—जैसा दस साल पहले था—तो इन सबको ठेल-ठालकर
आगे बढ़ जाती है। और जब ज़ोर कम हो आता है, तो बदमाशी बढ़ जाती
है। तब हम सभी तुम्हारी तरह ग्रैम्बल् करते हैं। पॉलिटिक्स को वाहियात
कहते हैं।...कौन-सा अच्छा है, यह तो कहो दादा ? परिवार का पालन-पोषण,
दूसरे की भरसक मदद—क्या इसी से देश चलेगा ?"

"देश की नहीं जानता। इतना दायित्व अब सह्य नहीं होता है भाई। मेरा-
तुम्हारा चले, बस हो गया।"

सुव्रत ने गरम होकर कहा, "मेरा नहीं चलेगा। पॉलिटिक्स के सिवा मेरा
अस्तित्व नहीं, उस अस्तित्व पर मैं विश्वास नहीं करता। पॉलिटिक्स हमारा
मेरुदण्ड है। उसी के चलते पैतृक घर को छोड़ दिया है। इसीलिए तुमसे बात
करता हूँ दादा। अब यों गण्डुप क्यों करूँ ? क्या हुआ है ? पॉलिटिक्स का
मतलब कुछ आदमी तो नहीं—डांगे, ज्योति बसु, नम्बूद्रीपाद नहीं; स्तालिन,
ख्रुश्चेव, माओत्से तुंग नहीं। मैं जिसे पॉलि... —है उसको छोड़कर
अपने देश, अपने भवि...

निर्मल के बदन में अँगरेजी शब्दों का एक तेलचिट्टा फर-फर करके बैठने लगा—थाउट ऑव साइट, आउट ऑव माइण्ड।

निर्मल का सोचना यों आगे बढ़ा। वह लड़की विश्वविद्यालय की अपनी पढ़ाई अगर कलकत्ते में कर पाती, अगर चिट्ठी के निरवयव आदान-प्रदान में भी स्यालदा के उस गन्दे होटल की विलक्षण साँझ जैसी और भी कुछ साँझें उनके जीवन में आतीं, तो शायद हो कि वह जो प्रस्ताव करता आया है, राजू उसपर राजी हो जाती। उससे क्या होता, वह नहीं जानता। बीच-बीच में जी में आता है, बल्कि यही अच्छा है, इस भाव से याद फीकी होते-होते स्यालदा की वह दमकती साँझ धुल-पुँछ जायेगी। और उसका वह आत्मविश्वास, 'सारी ज़िन्दगी तो सामने पड़ी है' निर्मल में नहीं है। निर्मल समझ रहा है (फिर अँगरेजी शब्द का एक तेलचिट्टा फरफरा उठता है) वह एक क्रॉस रोड पर आ खड़ा हुआ है। उसे यह तै करना है कि उसे किधर जाना है, सारी ज़िन्दगी उसकी सामने नहीं पड़ी है। कई साल भी नहीं, शायद कई महीने, या कि वह भी नहीं। उसे निश्चय करना है, वह कौन-सा रास्ता अपनाये?—राजू के लिए अनिश्चित प्रतीक्षा, कॉलिज की दीवार पर खटमल का दाग़, कॉलिज स्ट्रीट के अड्डे पर जम्हाई से दबी बातचीत, कौन किसे भजकर अमरीका या विलायत गया—इस बात से सामयिक विमर्षता, घर लौटने पर तमाम दिन की हड्डीतोड़ मिहनत से परेशान माँ की साँस, इन्हीं सबके बीच-बीच में डॉन क्विक्सोटी उच्छ्वास से साहित्य समझाने की चेष्टा में लड़कों का टेबिल की मच-मच, जूतों की खस-खस, बीच-बीच में बालीगंज प्लेस में ताऊजी की दबी भर्त्सना और देशी-विदेशी विदग्ध सिनेमा में समय काटना है (निर्मल ऐसे एक सिनेमा क्लब का सदस्य है), प्रायः बचपन से चटकाये आइजेन्स्टाइन पुडवोकिन आदि सिनेमा-पण्डितों की प्राणहीन पूजा, या विदेशी अख़बार-जर्नल में किसी पुस्तक को 'मार क्लास, दे बार्बी' कहने पर हुलमुक करके उस पुस्तक को जुटा कर पढ़ने का सन्तोष—इस विराट वृत्त में राजू कितना छोटा बिन्दु है?

और जीवन कोई बस नहीं कि जहाँ जी चाहे उसी स्टाप पर उतर पड़े, निर्मल धीरे-धीरे यह बात समझ रहा है। जैसे, रवीन्द्रनाथ का कोई गीत बीस साल पहले जैसा लगा है, तीस साल में भी वैसा ही लगेगा, ऐसी कोई बात नहीं, यह अधिकांश क्षेत्रों में ही लागू नहीं होता। दो पुरुष-नारी का तन्मयता में अगल-बगल बैठना दो साल बाद नहीं भी घट सकता है। उसके इस जगत् को राजू जकड़े भी रहे, वह जकड़े नहीं रह सकता। उसे यह जगत् छोड़ जाना होगा। और विदाई की घड़ी में मन जैसे पीड़ा से भर उठता है, निर्मल का चित्त भी वैसे ही अतीत से हट आने में विह्वलता से आच्छन्न होता है। आधी

"दस साल पहले ये बातें मन में क्यों नहीं आती थीं ? आज यह सब क्यों आ रही हैं ?" सुव्रत के प्रश्न से ज़रा अकचकाकर अपूर्व ने कहा, "दस साल पहले पार्टी में इतनी बदमाशी नहीं थी।"

"बदमाश भले, इन्हीं सब लोगों से है आदमी। इन्हीं से है पार्टी। पार्टी का जब ज़ोर रहता है—जैसा दस साल पहले था—तो इन सबको ठेल-ठालकर आगे बढ़ जाती है। और जब ज़ोर कम हो आता है, तो बदमाशी बढ़ जाती है। तब हम सभी तुम्हारी तरह ग्रैम्बल् करते हैं। पॉलिटिक्स को वाहियात कहते हैं।....कौन-सा अच्छा है, यह तो कहो दादा ? परिवार का पालन-पोषण, दूसरे की भरसक मदद—क्या इसी से देश चलेगा ?"

"देश की नहीं जानता। इतना दायित्व अब सह्य नहीं होता है भाई। मेरा-तुम्हारा चले, बस हो गया।"

सुव्रत ने गरम होकर कहा, "मेरा नहीं चलेगा। पॉलिटिक्स के सिवा मेरा अस्तित्व नहीं, उस अस्तित्व पर मैं विश्वास नहीं करता। पॉलिटिक्स हमारा मेरुदण्ड है। उसी के चलते पैतृक घर को छोड़ दिया है। इसीलिए तुमसे बात करता हूँ दादा। अब यों गण्डुप क्यों करूँ ? क्या हुआ है ? पॉलिटिक्स का मतलब कुछ आदमी तो नहीं—डांगे, ज्योति बसु, नम्बूद्रीपाद नहीं; स्तालिन, ख्रुश्चेव, माओत्से तुंग नहीं। मैं जिसे पॉलिटिक्स समझता हूँ, उसको छोड़कर अपने देश, अपने भविष्य की नहीं सोच सकता।"

"मरो, मरो।" मूढ़ी चबाते-चबाते अपूर्व ने कहा।

कई साल पहले अँगरेज कवि स्टीफ़ेन स्पेण्डर ने भारत आने पर एक छोटी-सी सभा में कहा था कि बहरहाल अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत ने जो सुनाम किया है, उसका श्रेय परराष्ट्रनीति को नहीं, इस देश के नेताओं का अँगरेज़ी पर अधिकार ही इसकी सफलता का कारण है। शायद कॉलेज मास्टरों की किसी सभा में ही बेझिझक कहा था स्पेण्डर ने। सुनकर निर्मल के बदन में आग लगी थी। परन्तु बाद में सोचकर उसने देखा, यह बात शायद कवि की अन्तर्दृष्टि से ही कही गयी। क्योंकि सफलता या असफलता जो भी हो, स्वाधीनता के बाद इस देश की प्रगति के पथ पर अँगरेज़ी भाषा की विजय-पताका है। एक भाषा पर अधिकार करने की कोशिश में अपना जीव-यौवन देने की आत्मग्लानि की बात छोड़ भी दें तो दैनन्दिन विचार के पैटर्न पर अँगरेज़ी भाषा मानो आधा अंश घेरे हुए है। राजनीति या समाज-चिन्ता क्यों, हमारे रोज़ के उठने-बैठने में क्या अँगरेज़ी शब्दों के कुछ फारमूलों का जाल हमें एड़ी-चोटी बाँधे हुए नहीं है ? राजू की चिट्ठी में 'पिछले एक साल में जो कुछ हुआ है, लगता है, वह सब मेरा अकेले का लाभ है, मेरा अकेले की क्षति'—इस पंक्ति को पढ़ते-पढ़ते ही

रग रहा है और अब सैनिक शासन हो जाने के बाद से वह मानो इत्ता-सा हो गया है। बचपन से लहूसना पूर्व-बंगाल का यह मायामय साँवला परिवेश अब उसे पकडकर नही रख पा रहा है। इसके सिवा निर्मल से पत्राचार की तरह ही उसके इर्दगिर्द के पाकिस्तानी युवासमाज का गणतन्त्र के लिए सिर ठोंकनेवाला आन्दोलन उसके बल-बूते से बाहर चला जा रहा है, ऐसा लगता है। उनके साथ मानसिक एकात्मकता का अनुभव करते हुए भी लगातार बरसों यह अनिश्चित आन्दोलन, यह जुलूस और जेल (जिस अवस्था से उसके परिचित बहुतेरे लोग ही गुजर रहे हैं) उसके लिए कष्टकर और प्रायः असहनीय हो उठे। राजू भी निर्मल की भाँति अपने अतीत से विदा लेना चाहती है। अतीत के लिए इतना दाय उसे नही झेला जाता। इसीलिए राजू अपने परिचित कुछ-कुछ लोगबाग की तरह समस्या से किनारा काट जाना चाहती है, जिससे कलेजे का भार बने इस परिवेश को छोडकर मुक्त परिवेश में लोगों से सहज भाव से मिलना सम्भव हो।

सात

उस दिन सवेरे आठ-दस जने से अधिक प्रार्थी प्रबोध सेन के बैठके में नहीं आये। प्रबोध बाबू ने बड़े आग्रह से उन लोगों की बात सुनी, अँगरेजी में आम तौर से जिसे सिम्पैथेटिक कनसिडर करना कहते है। देश का काम करते हुए इन कुछ वर्षों में उन्होंने समझ लिया है कि भगवान् के लिए जैसे भक्त, पब्लिक मैन के लिए वैसे ही है प्रार्थी। बीच-बीच में बैठके में जब लोग-बाग कम आते हैं, तो वह चैन की साँस लेने की बजाय बेचैन हो उठते है। उनकी शंका बढ जाती है कि शायद वह फ़ालतू लोगों में गिने जाने लगे है।

उस दिन प्रबोध सेन का कभी का सहकर्मी कृष्णनगर का भवनाथ उन्हें इम्प्रेस करने की चेष्टा में नेहरू की पुस्तक 'डिस्कवरी ऑव इण्डिया' का पूरा एक पन्ना जबानी कहता जा रहा था, तो प्रबोध बाबू फ़ट् से बोल उठे, "तुम्हारी लड़की को मेडिकलवाली सीट मिल जायेगी भवो!" चकमक करती लाल गंजी खोपड़ी, सिल्क की चादर, विद्यासागरी चट्टी—भवनाथ सेन दूसरे ही क्षण नेहरू को भूलकर चिल्ला पड़े, "जीते रहो।" उसके बाद "तुम्हारा समय अधिक नष्ट नही करूँगा।" कहकर निकल पड़े।

प्रबोध सेन के चेहरे पर दबी हँसी खेल गयी। बोले, "यह भवो बस वही

रात को नींद टूट जाने पर बगल के कमरे में खाट पर पिता को सीधा बैठे देखता है। पिता जैसे रोज़ अँधेरे में इस पृथ्वी से धीरे-धीरे विदाई ले रहे हैं, वह भी वैसे ही थोड़ा-थोड़ा करके अपने वर्तमान से विदाई ले रहा है।

निर्मल ने राजू को चिट्ठी लिखी।

तुम शायद खीजोगी। परन्तु मैं फिर एक बार जानना चाहता हूँ कि हम कहाँ खड़े हैं। परीक्षा में पास होने की खबर तुमने पिछली एक चिट्ठी में लिखी थी। इसके बाद क्या करोगी ? तुमने लिखा था, मुझे विदेश जाने की इच्छा है, तुम्हें वैसी इच्छा है या नहीं। पहले मुझे नहीं थी, अब है। लेकिन ऐसे अनिश्चित होकर हम कबतक रहेंगे ?

तुम ज़रा ठण्डे दिमाग़ से उत्तर देना। मुझे उसी हिसाब से प्लान करना होगा। मैं टप्प से कुछ कर नहीं पाता। योजना बना लेनी पड़ती है। हम अगर कलकत्ता या ढाका में नहीं मिल सकते, तो क्या विलायत के आकाश के नीचे मिल सकेंगे ? तुम्हारे अन्तिम पत्र की हताशा मुझे अच्छी नहीं लगी। हमारे मिलन के पथ में (ब्याह लिखना निर्मल को वाहियात लगा) क्या रुकावट है और उसे कैसे दूर किया जा सकता है, इस सम्बन्ध में तुमने ठीक सोचा नहीं है। मैं सोचने का अनुरोध करता हूँ।

इस चिट्ठी का जवाब निर्मल को नहीं मिला। सोचा था, शायद राजू को चिट्ठी मिली नहीं। क्योंकि पत्र को डाक में डालने के दो-एक दिन बाद ही निर्मल ने अखबार में पढ़ा, राजू के मशहूर पिता के घर खानातलाशी हुई है। पूर्व पाकिस्तान के सद्यःप्रतिष्ठित सैनिक शासन ने उनके अस्तित्व की कैफ़ियत के हिसाब से धर-पकड़ शुरू की है। परन्तु क़ानून के इस्पात में गैरक़ानूनी छेद भी कुछ-कुछ रह जाता है। बहुत सारा कागज़-पत्तर पुलिस के हाथ लग जाने के बावजूद किसी तरह निर्मल की चिट्ठी राजू के हाथ पहुँच गयी थी। और चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते राजू की आँखों में वही बेहूदी जोत खेल गयी थी। प्लान बनाने की बात पर वह जोर से हँसकर थमक गयी। उसके बाद टपाटप सारिडन की दो गोलियाँ निगलकर फ़ौरन अपनी मित्र फुलू के यहाँ दौड़ी। वहाँ, फुलू जैसी बातों को आदी है, यानी पुरुष मात्र ही स्वार्थी है, इस क़िस्म की चर्चा में मशग़ूल हो गयी। कई दिनों तक अपने डॉक्टर बहनोई के यहाँ रहकर दीदी के पाँच-छह बच्चे-कच्चों की चें-भों में अपने को डुबाकर देखने की कोशिश की। लेकिन विशेष सुविधा नहीं हुई। उसके बाद लगभग डेढ़ेक महीने डगडग लाल लिपस्टिक होंठों में पोतकर रेडियो पाकिस्तान में नौकरी। वहाँ उसके लिए रवीन्द्र संगीत गाने वाले एक छोकरे और प्रोग्राम-असिस्टेण्ट में मार-पीट होने की स्थिति आने से पहले ही वह वहाँ से खिसक पड़ी। देश के बँटवारे के बाद से देश उसे छोटा

लग रहा है और अब सैनिक शासन हो जाने के बाद से वह मानो इत्ता-सा हो गया है। बचपन से लहूसना पूर्व-बंगाल का यह मायामय साँवला परिवेश अब उसे पकड़कर नहीं रख पा रहा है। इसके सिवा निर्मल से पत्राचार की तरह ही उसके इर्दगिर्द के पाकिस्तानी युवासमाज का गणतन्त्र के लिए सिर ठोंकनेवाला आन्दोलन उसके बल-बूते से बाहर चला जा रहा है, ऐसा लगता है। उनके साथ मानसिक एकात्मकता का अनुभव करते हुए भी लगातार बरसों यह अनिश्चित आन्दोलन, यह जुलूस और जेल (जिस अवस्था से उसके परिचित बहुतेरे लोग ही गुजर रहे हैं) उसके लिए कष्टकर और प्रायः असहनीय हो उठे। राजू भी निर्मल की भाँति अपने अतीत से विदा लेना चाहती है। अतीत के लिए इतना दाय उसे नहीं झेला जाता। इसीलिए राजू अपने परिचित कुछ-कुछ लोगबाग की तरह समस्या से किनारा काट जाना चाहती है, जिससे कलेजे का भार बने इस परिवेश को छोड़कर मुक्त परिवेश में लोगों से सहज भाव से मिलना सम्भव हो।

सात

उस दिन सवेरे आठ-दस जने से अधिक प्रार्थी प्रबोध सेन के बैठके में नहीं आये। प्रबोध बाबू ने बड़े आग्रह से उन लोगों की बात सुनी, अँगरेजी में आम तौर से जिसे सिम्पैथेटिक कन्सिडर करना कहते हैं। देश का काम करते हुए इन कुछ वर्षों में उन्होंने समझ लिया है कि भगवान् के लिए जैसे भक्त, पब्लिक मैन के लिए वैसे ही हैं प्रार्थी। बीच-बीच में बैठके में जब लोग-बाग कम आते हैं, तो वह चैन की साँस लेने की बजाय बेचैन हो उठते हैं। उनकी शंका बढ़ जाती है कि शायद यह फ़ालतू लोगों में गिने जाने लगे हैं।

उस दिन प्रबोध सेन का कभी का सहकर्मी कृष्णनगर का भवनाथ उन्हें खुश करने की चेष्टा में नेहरू की पुस्तक 'डिस्कवरी ऑव इण्डिया' का पूरा एक पन्ना जबानी कहता जा रहा था, तो प्रबोध बाबू धम् से बोल उठे, "तुम्हारी लड़की को मेडिकलवाली सीट मिल जायेगी भवो!" चकमक करती लाल गंजी खोपड़ी, सिल्क की चादर, विद्यासागरी चट्टी—भवनाथ सेन दूसरे ही क्षण नेहरू को भूलकर चिल्ला पड़े, "जीते रहो।" उसके बाद "तुम्हारा समय अधिक नष्ट नहीं करूँगा।" कहकर निकल पड़े।

प्रबोध सेन के चेहरे पर दबी हँसी खेल गयी। बोले, "यह भवो बस वही

एक-सा ही रह गया।" उसके बाद उनके दोस्त का लड़का, जो शायद बड़ा ब्रिलिएण्ट है और जो सरकारी कॉलेज की नौकरी में झाड़ग्राम कॉलेज में बदली होने की सुनकर रुआँसा-सा हो दौड़ा आया है, उसकी ओर स्नेहभरी दृष्टि डाल-कर बोले, "हम और क्या कर सकते हैं, कहो ! हमारा कहा किसी ने माना, किसी ने नहीं माना। आखिर कोशिश ही तो है।"

यह कहकर उन्होंने एक चुरुट सुलगाकर चुरुट के डब्बे को सामने सरका दिया। छोकरे ने लज्जित भाव से जीभ काटी। प्रबोध सेन ने कहा, "सर्वत्र एक ही बात। एसेन्शियल वही डिमाण्ड और सप्लाई का कन्सेप्ट। मछली का बाज़ार, चावल का बाज़ार इंजीनियरिंग, डॉक्टरी में घुसने का बाज़ार—सब जगह एक ही तसवीर। इंगलैण्ड में भी यही। तुमसे क्या बताऊँ, भोंदू को बेलिओल कॉलेज में दाखिल कराने में पसीना छूट गया। आखिरकार आइ हैड टु ऐप्रोच इन्दिरा।"

छोकरे के पास बैठे सज्जन एक अनाहारी वकील हैं। देश के बँटवारे के बहुत पहले ही पूर्व बंगाल से सपरिवार चले आये हैं। अब रिफ़्यूजी होने के बहाने बेटे के नाम से एक टैक्सी के परमिट के लिए आये हैं। अपने मामले के लिए उन्हें मानो पर्याप्त आत्मविश्वास नहीं है। बैल-चोर की नाईं कैसे तो सामने की ओर ताक रहे हैं। उधर कनखियों से ताककर प्रबोध बाबू ने भवेन गांगुली से पूछा, "बाहर कितने लोग हैं ? आज ज़रा निर्मल के यहाँ...."

भवेन ने कहा, "पाँच-सात जने हैं। एक टी. वी., दो हाउस बिल्डिंग लोन, रतन बाबू का एक्सटेन्सन, आर. सिंह आया है।"

प्रबोध बाबू ने भँवों पर बल डाला, "सिंह यहाँ क्यों आया, दफ़्तर में आने को कह दो। वह रिश्वत-विश्वत की बात हमारे यहाँ नहीं।" फिर जाने क्या सोचकर बोले, "आस्क हिम टु कम।"

छह फ़ुट चार इंच लम्बा, घी रंग का सूट, टुकटुक लाल टाई, पगड़ी, चेहरे पर अकृत्रिम श्रद्धा और विनय—सिंह ने अन्दर आते ही कहा, "अगले मंगलवार को रोटरी क्लब की लंच-मीटिंग में अगर आप 'इण्डियाज़ प्लान्ड डेवलपमेण्ट' के बारे में कुछ बोलने की कृपा करें।" अपनी बात को मानो महत्त्व देने के लिए कहा, "आस्टर भी आ रहे हैं।"

आस्टर यानी अमरीकन कौंसल जेनरल—औचक ही यह बात मन में कौंध जाने पर भी वह एक क्षण के लिए मोहाच्छन्न-से बैठे रहे। अँगरेज़ी में जिसे ब्रास कहते हैं, वह हठकारिता कहाँ तक जा सकती है, इसका सबूत प्रबोध बाबू को इसी क्षण मिला। सिंह पार्क-स्ट्रीट के एक गुद्दार रेस्तराँ का मालिक है। पिछले एक साल से बार-लाइसेंस के लिए वह जी-जान से कोशिश कर रहा है। अन्ततः

सरकार उसे लाइसेंस देगी भी, इस बात को प्रबोध बाबू स्वतः सिद्ध ही मानते हैं। लेकिन केन्द्रीय सरकार की किसी एक कमिटी ने भारत में शराबखोरी के बारे में एक जबरदस्त रिपोर्ट दी है और अखबारों में उसके लिए हो-हल्ला हो रहा है, इसलिए प्रादेशिक सरकार मामले को जरा लटकाये हुए है।

"तुम रोटरी क्लब में कब से घुसे?"

सिंह मानो इस सवाल के लिए तैयार ही था। बोला, "नाइनटीन फ़ोर्टी सिक्स से सर। सेण्ट जेवियर्स में डिबेट करता था। उसके बाद बिज़नेस में आया। लेकिन सम सॉर्ट ऑव कोऑपरेटिव लाइफ़ ऑलवेज ऐट्रैक्टेड मी।" थोड़ी हँसी, भरमुँह काली दाढ़ी के अन्दर से उसकी भीगी-भीगी आँखें, उन आँखों को बड़ी-बड़ी करके सिंह ने कहा, "आपकी तरह हम लोग सर, देश आदमी के लिए ठोस कुछ कर नहीं सकेंगे। परन्तु दे ऑलसो सर्व हू स्टैण्ड ऐण्ड वेट।" सिंह ने जरा मिल्टन की बुकनी दी।

बग़ल का छोकरा मानो नींद में से बुदबुदा उठा, "मेरा केस सर!" उसकी शकल देखकर लगा, झाड़ग्राम की झाड़ी उसे खदेड़ती आ रही है।

प्रबोधसेन उसकी ओर न ताककर मुग्ध दृष्टि से सिंह की ओर निहारते रहे। उन्हें लगने लगा, मानो सिंह ही नये भारतवर्ष का कर्मठ पुरुष है, जो सारी बाधाओं की परवाह न करके मनुष्यत्व-सिद्धि का पथ मुक्त कराता है। सिंह के आस-पास उन्हें अपने बेटे, अपने भतीजे का अस्तित्व बड़ा अवान्तर लगा। सारी धरती तुम्हारे पैरों तले है, सिर्फ़ सिंह की तरह बलिष्ठ पाँव बढ़ाना होगा (विवेकानन्द की कुछ पंक्तियाँ अस्पष्ट भाव से मन में आयीं)। अपने कई साल की अर्थनीति और वाणिज्य दफ़्तर की अभिज्ञता से वह इस विषय में बिलकुल स्थिर मत हैं कि उनके लड़के इस दुनिया में मिसफ़िट हैं। गान्धी-नेहरू के भक्त यह भी हैं, पर उस भक्ति से सारे संसार की आर्थिक-नीति की जो धारा है, उसे नकारा तो नहीं जा सकता। और इस अर्थनीति से लाइसेंस निकालने के लिए षड्यन्त्र का पण्डा बनना पड़ेगा, औरत जुटानी पड़ेगी। दिल्ली में, कलकत्ते में ऐसी घटनाएँ अक्सर घट रही हैं। उनके लड़के समझते हैं कि ये घटनाएँ व्यतिक्रम हैं और सिंह-जैसे लोग जीवन-युद्ध में उतरते ही मान लेते हैं कि यही नियम है। वास्तव में शराब, स्त्री, जनसम्पर्क, सिनेमा, अखबार—यही तो इण्डस्ट्रियल साइकोलॉजी है। भारत ने एक बार जब यह तय कर लिया है कि उसे इंगलैण्ड-अमरीका की तरह होना है, तो यह सब भी आयेगा। नाचने को उतरे तो घूँघट क्या डालना?

प्रबोधसेन ने घुस्ट मुस्काया। उसके बाद धीरे-धीरे बोले, "सिंह, तुम्हारा लाइसेंस जरा रुक क्यों रहा है, समझ रहे हो? यू आर इण्टेलिजेण्ट एनफ़।"

सिंह छिपी अन्तरंगता से हँसा। "मैं भी ले नहीं आया सर! आपके साउण्ड जजमेण्ट, प्रैक्टिकल सेन्स पर हम सभी की आस्था है।....आप लंच-मीटिंग में ज़रा बोलिएगा। आप लोगों के टैक्सेशन पर हम लोगों में से कोई शायद बोलेगा। आप उसे इग्नोर कर सकते हैं। हम एक-दूसरे को समझते हैं।"

सिंह के चले जाने के बाद उस छोकरे की रोनी-रोनी सूरत देखकर प्रबोध-सेन ने सान्त्वना दी, "मैंने कहा तो, मैं फ़ोन कर दूँगा।....और, दो साल झाड़-ग्राम ही घूम आये तो क्या! पेट की गड़बड़ी जाती रहेगी। भूख लगेगी।"

भवेन ने आकर कहा, "सर, आज आपका एक ही साथ अमरीका, रूस...."

"अरे!" प्रबोध बाबू के गले में कपट-आतंक।

"एक इण्डो-अमरीकी सोसाइटी—शाम के छह बजे। शाम सात बजे सोवियत यूथ डेलिगेशन-स्टुडेण्ट्स हॉल।"

"दमदम में तो कल कुछ नहीं है?" क्लान्त-से प्रबोध बाबू बोले।

"जी सर, सवेरे साढ़े आठ बजे युगोस्लाविया के वाइस प्रीमियर।"

"फिर सवेरे!" प्रबोध बाबू ने चेहरे को खुजलाया। उतने सवेरे पेट साफ़ करने की समस्या से वह इसी वक़्त विचलित दीखे। "बाग़-बाज़ार कब जाऊँगा?" ज़रा रुखाई से भवेन से पूछा।

"आज अब...."

"न:, आज ही जाना होगा। ड्यूटी फ़र्स्ट।" उसके बाद 'होबू' रिफ़्यूजी सज्जन की ओर मुखातिब होकर बोले, टैक्सी कीजिएगा? आपका लड़का टैक्सी चलायेगा?"

"जी सर, चलायेगा।" भले आदमी ने बैलचोर की नाई ताका।

"मैं रिकमेण्ड करता हूँ। देखिए, दो महीने के बाद फिर दूसरे आदमी को न ले आइएगा।" उसके बाद दस्तखत करते-करते बोले, "वही ओल्ड स्टोरी। यह टैक्सी सिंह लोगों के पास जायेगी। बंगाली ज़ात ने सिर्फ़ मक्खीमार किरानी होना सीखा है।" भले आदमी ने दस्तखत की हुई दरखास्त को दोनों हाथों से जकड़कर पकड़ा। जो दो-तीन जने बच गये, उनके बारे में भवेन को दो-चार बात बताकर वह राइटर्स बिल्डिंग जाने के लिए तैयार होने लगे।

उस दिन साँझ को पैण्ट पर प्रिन्सकोट चढ़ाकर प्रबोधसेन रूसी और अमरीकियों की सभाओं में गये। उन्होंने दोनों ही देश के स्त्री-पुरुषों से कहा, "आप लोगों का देश महान् है, हमारा देश भी महान् है। हमारी इन दो संस्कृतियों के बीच सेतु निर्माण की चेष्टा को और भी सुदृढ़ करना चाहिए।" उसके बाद विश्व के लोगों की आशा-आकांक्षा, शान्ति और प्रगति, और गान्धी-नेहरू के नेतृत्व में उस राह पर भारतवर्ष का मज़बूत क़दम—इस क़िस्म की

अंगरेजी बातें अखबारों में जिस तरह रोज फर्र-फर्र उड़ती हैं, वैसे ही टेलिचिट्ठी को छोड़ दिया। कलकतियों ने तो फिर भी कुछ परिचित अँगरेजी आवाज सुनी, पर जो सब रूसी नर्तक-नर्तकी महज दो-तीन दिन के लिए कलकत्ते आये थे—'भारतवर्ष से अपने देश के सांस्कृतिक बन्धन को और दृढ़ करने के लिए'—वे सुन्दर अर्थहीन मुसकराते चेहरे से ताकते रहे। और प्रयोजनवश जब काले कोट में कसे अपने शरीर को एक बार इधर और एक बार उधर झुकाकर 'मोर ग्रेट कण्ट्री, मोर ग्रेट कण्ट्री' कहते रहे, तो उस स्तब्ध जनता के सामने आवेग से हिलता हुआ वक्ता, तसवीर-सा लगने लगा, जो तसवीर रोज अखबार में छपती है और जिस तसवीर का कोई अर्थ नहीं।

आठ

शब्द के कँचुल से अर्थ को खींचकर निकालने की समस्या दो जनों के पास दो रूपों में आती। कम से कम निर्मल के सामने अभी यह समस्या नहीं है। राजू के कई बरसों की चिट्ठी को उलटते-पलटते कभी-कभी उसके किसी अंश की सरलता पर चमत्कृत होने पर भी वह सोचता रहता है कि असल में यह सब उन दोनों की जवानी के फालतू वक्त की उपज है। राजू ने उसे जिस प्रकार से लिखा है—किसी एक विशेष प्रकार के प्रेम की भित्ति पर उनकी चिट्ठी-पत्री नहीं शुरू हुई, इस बात का मतलब केवल ऐसा ही हो सकता है अर्थात् कम उम्र की ख्याली हवा में शब्दों की पतंग उड़ाना। उन दोनों ने ही यह पतंग उड़ायी है। हाँ, स्यालदा की शाम के बारे में वह इस तरह से नहीं सोच सकता, सोचने से अभी भी तकलीफ होती है। परन्तु उन कुछ क्षणों की स्तब्धता, जो ब्लेक की कविता की भाँति उसके जीवन में आयी थी, अनुभूति का हीरा शब्दों के बालू के भीतर से झकमका उठा था, उस क्षणस्थायी क्षण को क्या चारों ओर की दीर्घस्थायी विरक्ति के सामने रखा जा सकता है? उस शब्दहीन अनुभूति की अस्पष्ट मरीचिका के पीछे दौड़ने से क्या लाभ?

अँगरेजी शब्दों के टेलिचिट्ठी ने फिर उसकी अनुभूति की तीव्रता को अशुद्ध कर दिया। टु गुड फॉर ह्यूमन नेचर्स डेली फूड बड़ा मौजूं होकर उसके मन में आया। वह अब सोचना नहीं चाहता कि आदमी का रोज-रोज का खाद्य क्या है? या अनुभूति की शुद्धता क्या मनुष्य के रोज का खाद्य नहीं?

अनुभूति की शुद्धता आदमी को कितनी दूर ले जा सकती है ? निर्मल का प्रश्न उधर गया। उसके पिता ने अनुभूति की शुद्धता पर सारी जिन्दगी वितायी। अब उन्हें एक मुँहफट बूढ़ा समझा जा सकता है, पर अपने राजनीति से बहुत ही घिसे जीवन में उन्होंने जो सोचा, वही करने की कोशिश की। वह बिलकुल नाकामयाब आदमी हैं, पर अपने निकट उनका कोई झाँसा नहीं—यह बात निर्मल की खुली आँखों से पकड़ में आयी। परन्तु उसके बाद ही उसने अपने-आपसे कहा, उससे हुआ क्या ? एक ओर व्यर्थ निःसंग आदर्शवाद और दूसरी ओर सांगठनिक शैतानी—इसके सिवाय क्या रास्ता नहीं ?

उसने जिस तरह से अपने को तैयार किया है, उसमें वह बिलकुल बेक़ायदे पड़ जायेगा, यदि राजू अचानक अपना मत बदल दे। अगर वह हठात् कलकत्ता चली आये और निर्मल की ओर 'विशेष प्रेम की भित्ति पर' हाथ बढ़ाये। तो फिर क्या होगा ? हाँ, इस तरह की घटना घटने की सम्भावना मानो क्रमशः कम होती आ रही है। निर्मल और राजू की दूरी बढ़ जाने के साथ ताल मिलाते हुए गोया दोनों बंगाल के बीच विरोध इन दिनों और बढ़ रहा है फिर कुछ छिट-फुट दंगे, प्राण-हानि, बोर्डर पर झड़प, अखबारी शोर-शराबा दोनों स्थानों के रहनेवालों की तिक्तता को और बढ़ा दे रहे हैं। उसमें राजू के उस अजीब पत्र की पंक्तियाँ जानें कहाँ डूब जाती हैं। निर्मल उन्हें नहीं भूलता।

और सुव्रत रग-रग से समझता है कि सत्य की अर्थपूर्णता को शब्द किस प्रकार से ढँकते हैं। उसे भय हो आता है, कॉलेज में जतन से पढ़े अर्थशास्त्र के 'टर्म्‌स' भी दरअसल अर्थहीन हैं, बहुत ज़ोर तो कुछ अन्दाज़। और, अर्थ-नीति के क्षेत्र में इन शब्दों की जो थोड़ी-सी सत्यता है, राजनीति के जगत् में तो वे प्रायः थोथे हैं। गौतम से यहीं तो उसकी भिन्नता है। गौतम सोचता है, समाजवाद के बारे में जो बातें कही जाती हैं, वे सब सत्य हैं। प्रयोग के क्षेत्र में जो भयंकर अन्तर आ रहा है, उसे नहीं मानने को वह दृढ़प्रतिज्ञ है।

बहुत दिन पहले कलकत्ते की सड़कों पर क्रान्ति हो गयी है। पुलिस की लाठी और गोली से अस्सी आदमी मर गये। साँझ के बाद सड़कों पर रोशनी नहीं, बम की आवाज, राइफ़ल का शब्द। खाद्य-आन्दोलन के नाम से अभिहित इस रुलाई-भरे प्रहसन ने सुव्रत के मन को बिलकुल मुरझा दिया। आन्दोलन के शुरू में कॉलेज में टीचर्स रूम के सामने बढ़ते ही गौतम के गद्‌गद कण्ठस्वर से वह लकड़ी के पार्टीशन के पास ठिठक गया। गौतम ने पढ़ा :

Today you already know, the solitude and the cold.
While thousands of shells shatter your heart,
While scorpions with crime and poison

Approach to know your entrails, Stalingrad
Newyork dances, London thinks, and I say to you bite
For my heart cannot beat it and our hearts
Cannot bear it, cannot bear it
In ■ world which lets its heroes die alone.

निर्मल के सिवाय और कोई नहीं है। परन्तु गौतम की उधर नजर नहीं। चश्मे के भीतर जो उद्दीप्त आँखें हैं, उनके सामने जनारण्य है। गौतम ने शायद सुव्रत की उम्मीद नहीं की थी। वह अकचकाकर थम गया। उसके बाद अपने अप्रतिभ भाव को दबाने के लिए और भी जोर से बोला, "पावलो नेरुदा, कमाल का है न ? छात्रों की मीटिंग में बोलूँगा।"

"जिससे और भी अस्सी आदमी मरें।" बैठे-बैठे सुव्रत ने क्लान्त स्वर से कहा।

"यू आर ए रिविजनिस्ट, कावार्ड। मैं तुम्हारी राय नहीं चाहता," गौतम हठात् भौं-भौं कर उठा।

सुव्रत ने असहिष्णु होकर कहा, " 'ब्लोड टु स्टालिनग्राड' जोरदार कविता है। परन्तु छात्रों की सभा में क्यों ? ऐसी ज्यादती में तुम्हारे कितने दिन बीतेंगे ?"

निर्मल ने भी चौंककर सुव्रत की ओर ताका। इस तरह की भाषा साधारणतया गौतम को ही सोहती है। सुव्रत झुंझलाकर कहा, "यह कौन-सा आन्दोलन है, जिसका लक्ष्य नहीं, जहाँ कीड़ों की तरह दल के दल लोग मरते हैं ?"

"इसके लक्ष्य को तुम कैसे समझोगे ? यू आर ए कावार्ड।" उसके बाद रुँधे क्रोध से गौतम ने कहा, "तुम अब किसी भी बहाने पार्टी छोड़ना चाहते हो। डेमोक्रेटिक राइट्स के लिए लोग प्राण दे रहे हैं, जरूरत होगी, तो और देंगे। तुम लोग इस मामूली बात को भूल जाते हो।" फिर निर्मल की ओर देखकर बोला, "हम लोग प्रतिक्रिया के एक-एक किले को तोड़ दे रहे हैं।"

- "तुम क्या नजरुल को दुहरा रहे हो ? हम लोग विद्यार्थी नहीं हैं। यह सब नाटक क्यों कर रहे हो ?" सुव्रत ने कहा।

"शट् अप् कावार्ड, अवसरवादी !" गौतम लड़खड़ाकर चिल्ला उठा।

"यह क्या बचपना कर रहे हो तुम लोग ?" अबकी निर्मल बोला।

सुव्रत की ओर देखकर गौतम गरज उठा, "मैं देखता हूँ, तुम्हारा पार्टीकार्ड कैसे बचता है !"

सुव्रत सहमा चुप हो गया। वह क्लान्त भाव से बोला, "बस, एकमात्र यही तो कर सकते हो।"

निर्मल बड़ी देर से समझने की कोशिश कर रहा था कि इन दो जने का विरोध कहाँ है ? सुव्रत की राजनीति-चर्चा को वह नहीं समझता, पर सुव्रत गढ़े में लौटा हुआ खरहा नहीं है, इस मामले में वह निश्चिन्त है। उसने ज़रा उद्विग्न होकर ही गौतम से पूछा, "तुम लोग क्या सचमुच ही सुव्रत को पार्टी से निकाल दोगे ? किस बिना पर ?"

"एजेण्ट कहकर," गौतम के स्वर में इतनी देर के बाद उसका स्वाभाविक आत्मविश्वास आया।

"एजेण्ट, माने ?"

"एजेण्ट माने नहीं समझते ? जैसे यह समझो, दूसरी पार्टी का आदमी, यहाँ तक कि पुलिस का आदमी हमारी पार्टी में काम करता है, जो हमारी ताक़त को कमज़ोर करने की चेष्टा करता है।"

एक तीखी पीड़ा से अभिभूत होकर सुव्रत लाचार की नाईं बैठा रहा।

और उस ओर देखकर और भी उत्साहित होकर गौतम ने कहा, "जो लोग हमारी रिवोल्युशनरी पार्टी को रिफॉर्मिस्ट बनाना चाहते हैं, जो लोग वास्तव में ऐंगलो अमेरिकन इम्पीरियलिज्म को और शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, जो लोग...."

दम लेने के लिए गौतम रुका।

निर्मल के सामने मामला और साफ़ होने लगा। बोला, "सुव्रत के बारे में कोई सबूत है ?"

"डीकुमेण्ट ?"

सुव्रत के चेहरे पर एक अर्थहीन हँसी खेल गयी। गौतम ने कहा, "यह सब हमारी पार्टी की अन्दरूनी बातें हैं, बाहर बताना ठीक नहीं। मगर तुम उसके भाई हो, तुम्हें जानना ज़रूरी है। गाँव जाने से और पीपुल-पीपुल करने से ही तो क्रान्तिकारी नहीं हुआ जा सकता !"

"क्रान्तिकारी होने के लिए क्या करना होता है ?" निर्मल ने पूछा।

"क्रान्तिकारी होने के लिए कलेजा चाहिए।"

"कलेजा तुम दोनों को ही है।"

तुम यह सब नहीं समझोगे। तुम असल में बुरे नहीं हो, लेकिन नानपॉलिटि-कल टाईप हो।" उसके बाद मानो दयावश ही बोला, "अच्छा, तुम दोनों भाई गप-शप करो, मैं मीटिंग में जाता हूँ।"

निर्मल ने कहा, "तुम लोग आमने-सामने बात करके मामले को निबटा लो न। इस तरह रोज रास्ते-रास्ते में जुलूस, और गोली, और लाठी कब तक चलेगी ?"

"किससे बात करूँगा ? तुम्हारे ताऊजी से ? मेरे और उनके बीच अस्सी लाशों का व्यवधान है।"

"तुम पर आज कविता सवार है गौतम, तुम मीटिंग में जाओ।" सुव्रत के स्वर में अवसाद साफ़ झलक रहा था।

गौतम के चले जाने के बाद एकबारगी खामोशी। लगता है दोनों भाई हठात् बहुत क़रीब आ गये हैं। जैसे, कई वर्षों से उन दोनों का जगत् घूमते-घूमते ठीक इसी समय बहुत पास आ खड़ा हुआ है।

कुछ क्षण के बाद निर्मल ने कहा, "घर चलोगे अब ?"

"नहीं।"

"तो कहाँ जाओगे ?"

"आसनसोल। अपनी कोयलाखान के युनियन में।"

"वहाँ भी...."

"हाँ, वहाँ भी गौतम वग़ैरह हैं। लेकिन लगता है, अभी जो कर रहा हूँ, उससे कुछ काम किया जायेगा।"

फिर कुछ देर चुप्पी। बस की घरघराहट में पुरानी दीवालघड़ी की टक्-टक् दब जाती है, फिर जाग उठती है। बैरा फटे प्याले में चाय दे गया। चाय पीते-पीते सुव्रत ने निर्मल की ओर देखा, "और तुम यहीं ?"

"नः, एक विलायती पब्लिसिटी कम्पनी में जा रहा हूँ। इसी अप्रैल में ज्वॉइन करूँगा।"

नौ

सातेक दिन बाद तीसरे पहर निर्मल निस्पृह भाव से अपने पिता के बीते दिनों की कहानी सुन रहा था। वही, एक ही बात—वही बंगाल, वही आदर्श—वही जगत्, जो निर्मल के लिए लगभग रूपकथा ही है। और यन्त्र की नाईं मर्मातिसूचक उसका गरदन हिलाना सुबोध डॉक्टर के फटे गले के चिल्लाने से कब तक ताल मिलाकर चलता, कहा नहीं जा सकता। सहसा निर्मल को अपने मौसा के अड्डे की याद आ गयी। कॉलेज की नौकरी से इस्तीफ़ा देने के बाद इन दिनों वह उधर जाने-आने लगा है। नहाकर चाकलेटी टेरेलिन के पैण्ट पर घी रंग का बुशशर्ट चढ़ाकर हलके हाथों सिगरेट सुलगाकर जब वह सर-सर करके

सीढ़ी से उतरने लगा, तो वह खासा खिला हुआ लग रहा था। सीढ़ी के नीचे ही लेटर-बाक्स। उधर देखकर अचानक ठिठक गया वह। एक विलायती एयर लेटर पर पहचाने हाथ के हरूफ़ों में लिखा उसका नाम काँच के भीतर से पिटपिट करके ताक रहा था उसे। उसी पुरानी उष्णता से उसने लेटर बाक्स के ढक्कन को खोला। पीछे की ओर पता था—मिस आर. खान, ७५ पेन्सलेन, शाटन, वारविकशायर, इंगलैण्ड।

धीरे-धीरे फाड़कर चिट्ठी को निर्मल पढ़ने लगा :

बस पर जाते समय उस दिन एक विज्ञापन पर नजर पड़ी—Three Nuns Tobacco! तुम यह तम्बाकू पीते थे न? वही जो लिखा था?

यहाँ जो बहाना लेकर आयी हूँ, वह है अँगरेज़ी में एम. ए. करना। डॉक्टरेट के झमेले में जाने से थीसिस को जकड़े पड़ा रहना होता, इसीलिए इस सहज रास्ते को चुना था। गरमियों में एक परीक्षा दूँगी। उसके बाद कुछ दिन रहकर शायद 'देश' लौटना पड़ेगा। जो विराट् हिन्दू-मुसलमान-उत्तीर्ण भारतवर्ष हमारा देश था, उसके जाने के बाद से कई समस्याएँ और भी जटिल हो गयी हैं।

ड्राइडन की All for love के एण्टोनी की एक बात याद आती है: My whole life has been a golden dream of love and friendship. न केवल हलका होने के लिए, बल्कि जीवन को ऐश्वर्य से भर देने के लिए भी पृथ्वी के अनेक कोने के स्त्री और पुरुष—दोनों ही प्रकार के मित्रों को पाया है। किसी को एकान्त भाव से पाना चाहने पर पाया जा सकता है,—उससे शायद हो कि बहुत झमेले भी चुक जायें, पर जब अपने जीवन को बनाने का मौक़ा मिला है, तो सहज ही नकारूँगी नहीं।

बाबूजी ने चौदह साल की उम्र में शादी कर देना चाहा था—उसके बाद से अब तक बहुत-से लुभावने तरुण मेरी बेहूदगी से खिसक गये। त्रिपोली, लन्दन, ढाका, कराची और वाशिंगटन में मेरे लिए दिन गिनना छोड़कर जैसा जिसको हुआ वैसा ही अपना बसेरा सबने बना लिया। इसीलिए अब अबाध मुक्ति है।

सबसे बड़ी बात कि मनुष्य के साथ सम्पर्क के मामले में अपनी अकिंचनता से लज्जा पाकर मैंने इतना सीखा है कि अटूट स्वास्थ्य और स्नायु की शक्ति को छोड़कर ही निस्पृहता के विरुद्ध लोहा लेना पड़ेगा। चारों ओर से क्लान्ति दौड़ी आयी और मैं बोली नहीं, सिर नहीं उठाया। इस प्रकार से दैन्य का बोझा अब नहीं बढ़ाऊँगी। क्लान्ति और निस्पृहता से खोया ही कितना है—उसके अन्दर से भी तो बहुतों ने खोज लिया है

मुझे। लेकिन प्रत्येक क्षण को बड़ा करके चाहने पर उसकी एक दीनता भी बार-बार काँटे-सी गड़ती है। वैसा एक काँटा मेरे कलेजे में है—उसी एक स्थान पर मैं अपने निकट कैसी तो छोटी होकर रहती हूँ। दर असल शायद सब कुछ ही था शब्दों का पींजरा—मैं, तुम, कोई भी अन्त तक उसके अन्दर नहीं गये, यह बहुत बड़ा सौभाग्य है। लेकिन सब कुछ को आच्छादित करके सारी ग्लानि को धो लेने की ममता है। आज बड़ी ठण्ड है। ठीक रहना—

शब्दों का पींजरा—निर्मल ने मन ही मन कई बार दुहराया। और उस पींजरे के सींकचों के बाहर कौतूहल से दीस एक मुखड़े के अपने मन में जग उठने से पहले ही उसने पार्क स्ट्रीट के एक रेस्तराँ की ओर क़दम बढ़ा दिया।

उस दिन पान की मजलिस थी। रूस-चीन-विरोध पर कोने की दो टेबिलों पर एकबारगी सिर-फुटौवल। निर्मल पर दृष्टि पड़ते ही उसके एक मित्र ने ज़ोर से गाना शुरू किया :

आ गयी विपिन-सुधा
अब न पियो ग़लत दवा।

हमारे अन्य उपन्यास

छिन्नपत्र	सुरेश ह. जोशी	१२.००
बकुल-कथा	श्रीमती आशापूर्णा देवी	३५.००
स्वामी	रणजित् देसाई	३०.००
मूकज्जी (पुरस्कृत)	शिवराम कारन्त	२०.००
सुवर्णलता (द्वि. सं.)	आशापूर्णा देवी	३५.००
अवतार वरिष्ठाम	डॉ. विवेकरंजन भट्टाचार्य	१०.००
भ्रमभंग	डॉ. देवेश ठाकुर	१३.००
जय पराजय	सुमंगल प्रकाश	२६.००
मुट्ठी भर काँकर	जगदीशचन्द्र	१५.००
कगार की आग	हिमांशु जोशी	६.००
पुरुष पुराण	डॉ. विवेकीराय	८.००
माटीमटाल भाग १ (पुर., द्वि. सं.)	गोपीनाथ महान्ती	२०.००
माटीमटाल भाग २ (पुर., द्वि. सं.)	" "	२०.००
देवेश : एक जीवनी	सत्यपाल विद्यालंकार	१५.००
धूप और दरिया	जगजीत बराड़	६.५०
समुद्र संगम	डॉ. भोलाशंकर व्यास	१७.००
मृत्युंजय (नवीन संस्करण)	शिवाजी सावंत	३५.००
छाया मत छूना मन (द्वि. सं.)	हिमांशु जोशी	१२.००
पूर्णावतार (द्वि. सं.)	प्रमथनाथ बिशी	२५.००
बारूद और चिनगारी	सुमंगल प्रकाश	२०.००
दायरे आस्थाओं के	सं. लि. भैरप्पा	९.००
आधा पुल (द्वि. सं.)	जगदीशचन्द्र	१४.००
नमक का पुतला सागर में (द्वि. सं.)	धनंजय वैरागी	१८.००
तीसरा प्रसंग	लक्ष्मीकान्त वर्मा	१२.५०
टेराकोटा (द्वि. सं.)	लक्ष्मीकान्त वर्मा	
आईने अकेले हैं	कृश्नचन्दर	५.००

कहीं कुछ और	डॉ. गंगाप्रसाद विमल	७.००
मेरी आंखों में प्यास	वाणी राय	१०.००
विपात्र (च. सं.)	ग. मा. मुक्तिबोध	५.००
सहस्रफण (द्वि. सं.)	विश्वनाथ सत्यनारायण	१६.००
रणांगण	विश्राम बेडेकर	६.५०
कृष्णकली (पं. सं.)	शिवानी { पेपर बैक	१४.००
	लायब्रेरी सं०	१६.००
हँसली बांक की उपकथा (द्वि. सं.)	ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	२५.००
गणदेवता (पुर., पं. सं.)	"	३५.००
अस्तंगता (द्वि. सं.)	'भिक्खु'	९.००
महाश्रमण सुनें ! (द्वि. सं.)	"	४.००
अठारह सूरज के पौधे	रमेश बक्षी	४.५०
जुलूस (च. सं.)	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	६.००
जो (द्वि. सं.)	डॉ. प्रभाकर माचवे	४.००
गुनाहों का देवता (सत्रहवां सं.)	डॉ. धर्मवीर भारती	१४.००
सूरज का सातवां घोड़ा (नौवां सं.)	"	३.५०
पीले गुलाब की आत्मा (द्वि. सं.)	विश्वम्भर 'मानव'	६.००
अपने-अपने अजनबी (सातवां सं.)	'अज्ञेय'	३.५०
पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	५.००
ग्यारह सपनों का देश (द्वि. सं.)	सम्पा. : लक्ष्मीचन्द्र जैन	७.००
राजसी	देवेशदास, आई. सी. एस.	५.००
रक्त-राग (द्वि. सं.)	"	५.००
शतरंज के मोहरे (पुर., चौथा सं.)	अमृतलाल नागर	१२.००
तीसरा नेत्र (द्वि. सं.)	आनन्दप्रकाश जैन	४.५०
मुक्तिदूत (पुर., च. सं.)	वीरेन्द्रकुमार जैन	१३.००

□